वर्ष 37, अंक-2, मार्च-अप्रैल, 2014

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पाँच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पाँच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाये।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (ए.एच.)	:	23370228
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23379249
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249
निदेशक (सी एण्ड एस)	:	23379463
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379386
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

मार्च-अप्रैल, 2014

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

परामर्श मंडल

प्रो. अशोक चक्रधर, रत्नाकर पांडेय, रामदरश मिश्र, बालशौरि रेड्डी, दिनेश मिश्र, ममता कालिया, हरीश नवल, अनामिका

संपादक

अनवर हलीम
उप-महानिदेशक (ए.एच.)

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccrindia.net/gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक :	₹	500
	यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक :	₹	1200
	यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

लोक जीवन के सांस्कृतिक स्तंभ—लोकनृत्य 5
डॉ. भवानी सिंह

नाजी यातनाओं का गवाह आस्वित्ज 12
डॉ. परमानंद पांचाल

हिंदी भाषा के अप्रतिम योद्धा 15
उषा राजे सक्सेना

चित्रा मुद्गल की कहानियां और स्त्री-विमर्श 18
डॉ. रीता सिन्हा

जन जीवन की झांकी - पटना चित्रकला 23
डॉ. दिनेश चंद्र अग्रवाल

गुजरात में जैन धर्म का उत्कर्ष, जैन प्रबंधों के संदर्भ में 29
डॉ. वाहिद नसरू

भारत की जीवनदायिनी शक्ति : हिंदी 34
डॉ. केशव फाळके

विक्रमशिला महाविहार के आचार्य दीपांकर का बौद्ध दर्शन 37
कुमार कृष्णन

विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा-शिक्षण 41
डॉ. विमलेश कांति वर्मा

शांतिनिकेतन के संगीत-नृत्य की धारा 44
डॉ. सुमित वसु

विष्णु प्रभाकर का बाल साहित्य 48
डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

त्रिलोचन : धरती को दोनों ओर से थामे हुए 52
आचार्य सारथी रूमी

सार्थकता की तलाश में आज का हिंदी और नेपाली बाल-साहित्य 59
प्रो. डॉ. उषा ठाकुर

लोक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना 62
धीरा वर्मा

बाउल लोकगीत की अंतरराष्ट्रीय आध्यात्मिक संस्कृति 65
डॉ. शुभंकर बनर्जी

कहानी

आस्था (डोगरी) 68
नरसिंह देव जम्वाल

प्लीज टेक केयर 71
डॉ. कमल कुमार

सैकंड इनिंग 74
क्षमा शर्मा

पिंजरा 79
डॉ. करुणा शंकर दुबे

कविता, गीत, गजल

फूल को बिखराने वाली 43
डॉ. रमेश मिलन

रिश्तों की जरूरत होती है 64
सोनरूपा विशाल

रोज लगा लेते हैं मज्मा तारे नभ में रात को 70
रामअवतार बैरवा

तब और अब के गुरु 78
जयकिशन उन्नियाल

महानगरी / सफरनामा 82
ललित शेखर

विरज 83
सुरेश सक्सेना

समय है गुमशुम 83
राकेश चक्र

चल बेटा, चल 84
अशोक 'अंजुम'

खोज रहा जमाना तुझको 84
अरुण एस. भटनागर

नव वर्ष का इंतजार 85
निरुपमा भटनागर

बेटियां माहताब होती हैं/हमें मुट्ठियों में बंद मत करना 85
डॉ. प्रीति

शब्द 87
महीलाल कैन

पुस्तक-समीक्षा

कथाकार कमलेश्वर से परिचित करवाता मूल्यवान ग्रंथ 86
डॉ. आशा शर्मा

असुरक्षित मन को धैर्य देती पुस्तक 88
बल्लभ डोभाल

समाचार

खजुराहो नृत्य समारोह 89
शशिप्रभा तिवारी

'शब्द व्यापार बन गए' लोकार्पित 94
डॉ. विवेक गौतम

प्रकाशक की ओर से

भूमंडलीकरण के इस दौर में मनुष्य ने विकास के कितने ही प्रतिमान बनाए हों, लेकिन समाज का सर्वांगीण विकास केवल आधुनिकता के सहारे नहीं हो सकता। उसमें संस्कार और सभ्यता के स्नेहिल लेप का होना भी बहुत आवश्यक है। आगे बढ़ने की होड़ में कहीं हम अपने संस्कारों और मूल्यों को बिसरा न दें। इसी बात को ध्यान में रखकर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' अपने देश के स्वर्णिम पहलुओं और लोक जीवन से जुड़े पक्षों से पाठकों को समय-समय पर रू-ब-रू करवाती रहती है।

इस क्रम के अंतर्गत प्रस्तुत अंक में पाठकों को हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्यों के बारे में रोचक और विशद जानकारी तो मिलेगी ही, साथ ही गुजरात में जैन धर्म के उत्कर्ष और विकास पर सांगोपांग विश्लेषण भी पढ़ने को मिलेगा। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था लेख से पाठकों को हिंदी के बढ़ते फैलाव की रोचक और व्यापक जानकारी इस अंक में पढ़ने को मिलेगी।

इस अंक के साथ ही विक्रमी संवत् का नव वर्ष शुरू हो रहा है। यह नया साल आपके जीवन में सुख-शांति और समृद्धि लाए। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ आप सभी सुधी पाठकों को 'गगनांचल' परिवार की ओर से पुनश्च नव वर्ष की हार्दिक मंगल कामनाएं।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)

महानिदेशक

संपादक की ओर से

साहित्य समाज का सिर्फ दर्पण ही नहीं होता है, बल्कि वह उसे दिशा भी देता है। साहित्य लोगों की रुचि का परिष्कार कर समाज में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की स्थापना करता है। इन तीन तत्वों से मिलकर बना समाज ही अपने साथ-साथ दूसरों के गर्व का आधार बनता है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसके द्वारा किए गए समस्त कार्यों में सामूहिकता का बोध दृष्टिगोचर होता है। यही सामूहिकता की भावना उसे दूसरे प्राणियों से श्रेष्ठ बनाती है। उसकी यह यात्रा आज भी अनवरत रूप से जारी है। और साहित्य मनुष्य की इस मानसिक और सांस्कृतिक विकास यात्रा का महत्त्वपूर्ण पहलू है।

मनुष्य की सांस्कृतिक विकास यात्रा में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् अपनी द्वैमासिक पत्रिका 'गगनांचल' के माध्यम से महती भूमिका निभा रही है। हमारा हमेशा से यह प्रयास रहा है कि जहां एक ओर हम अपनी पत्रिका के माध्यम से भारतीय साहित्य और संस्कृति का परिचय अन्य देशों से करवाएं, वहीं दूसरी ओर अन्य देशों के साहित्य और संस्कृति से हम परिचित हो सकें। हम अपने इस प्रयास में कहां तक सफल हो रहे हैं, इसका उत्तर तो हमारे पाठक ही दे सकते हैं। बहरहाल, हमारी यह कोशिश 'गगनांचल' के मार्च-अप्रैल, 2014 अंक में भी जारी है। इस अंक में हमने लोक जीवन से लेकर साहित्य, संस्कृति और भाषा तक जीवन के अनेक पहलुओं पर विविध तरह की सामग्री देने का प्रयास किया है। आशा है हमारा यह विनम्र प्रयास आपकी उम्मीदों पर खरा उतरेगा।

आपकी प्रतिक्रिया का इंतजार रहेगा। आप सभी को नव संवत्सर की शुभकामनाएं।

(अनवर हलीम)

लोक जीवन के सांस्कृतिक स्तंभ—लोकनृत्य

डॉ. भवानी सिंह

भारत के समस्त प्रदेशों के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक त्योहार, उत्सव, मेले, देव-यज्ञ इत्यादि पुरातन काल से ही अत्यंत उल्लासपूर्वक मनाए जाते रहे हैं। प्रत्येक जाति, वर्ग, क्षेत्र एवं काल की सीमाओं के मध्य 'लोकनृत्य' की विविध परंपराएं चली आ रही हैं जिन्होंने विभिन्न संस्कृतियों के मेल से अपने स्वरूप को कहीं निखारा है तो कहीं मिश्रित किया है। लोकनृत्य सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिवेश से संबद्ध होते हैं। मानव मन की गहरी अनुभूति भरी उल्लासमयी लहरों का साकार रूप इनमें उभरता है। यह लोकनृत्य ही उत्सव, पर्व, विवाहादि जैसे उल्लासमयी अनुष्ठानों एवं सामाजिक चेतना एवं मानव मन के अटूट संबंधों आदि के परिचायक होते हैं। शुभ अवसरों पर सामाजिक मेल-मिलाप जैसे अवसरों को हर्षोल्लास से मनाने में लोकनृत्यों की प्राचीन काल से ही विशेष भूमिका रही है। संपूर्ण विश्व में लोकनृत्य आज भी अपने प्रभुत्व को कायम रखे हुए है। निस्संदेह हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति के श्रेष्ठतम साधन लोकसंगीत और लोकनृत्य ही हैं। लोकनृत्य में देश की कला, परंपरा, जनमानस की उमंगें तथा जीवन की मुस्कान निहित होती हैं।

''लोकनृत्य, लोकसंगीत रूपी इमारत का स्तंभ होता है और इसे लोकसंगीत से पृथक नहीं किया जा सकता। लोकनृत्यों का आयोजन सामाजिक उत्सवों की रंग-बिरंगी झांकी दिखाकर लोगों का मनोरंजन करवाने के लिए शिशु जन्म, विवाह, पर्व, त्योहार आदि अवसरों पर किया जाता है। इन लोकनृत्यों में अल्हड़, मनचले युवकों और यौवन की

लोक देवता

दहलीज पर कदम रखती युवतियों के थिरकते पैरों का जादू समाया होता है। प्रकृति के मुक्त प्रांगण में विचरण करने वाले लोगों में आनंद व उल्लास व्यक्त करने का एकमात्र साधन लोकनृत्य और लोकगीत हैं और सच कहा जाए तो आदिवासियों का जीवन रस उनके नृत्य और गीतों में ही समाहित होता है। वे भारी से भारी विपत्ति भी उनके माध्यम से भूल जाते हैं।"

लोकनृत्य आदि है और उसका अंत भी नहीं है। लोकनृत्य का सृजन तो स्वयं नृत्य ने ही किया है जो आंतरिक उल्लास और उमंगों में बसता है। लोकनृत्य स्वयंभू है। एक अबोध बालक प्रेम में, उल्लास में नाच उठता है। कूद-फांदकर मनोभाव को नृत्य का रूप देता है। कोई भी गांव, शहर, समाज ऐसा नहीं है जहां लोकनृत्य पर पांव न थिरकते हों। लोकनृत्य वह कला है जिसका प्रादुर्भाव अन्य सारी कलाओं से पहले हुआ है। वस्त्र पहनना बाद में सीखा इनसान ने, भाषा के द्वारा मनोभावों को प्रकट करना बाद में आया इनसान को जबकि नृत्य के द्वारा आंतरिक मनोवेगों से आनंद प्रकट करना उसने पहले सीखा। लोकनृत्य में परंपरा है, लोक संस्कृति है, एक सामूहिक आनंदोत्सव मनाने की भावना है, अंतरात्मा की पदचाप है और हृदय से निकला मौन संगीत है। लोकनृत्य में दर्शन होता है उस प्रांत की संस्कृति का क्योंकि वहां की मिट्टी की एक सौंधी महक उसमें समाई होती है तथा उस प्रांत का सामाजिक चरित्र उसमें बोलता है।

लोकनृत्यों का विकास—भारत का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जहां लोकनृत्यों का प्रचलन न हो। जिस प्रकार कुछ दूरी के अंतर पर ही

लोक देवता

भाषा एवं संस्कृति बदल जाती है, उसी प्रकार लोकनृत्यों की नृत्य विधा में भी परिवर्तन होता है, किंतु उल्लास और उमंग की अभिव्यक्ति सभी लोकनृत्यों में समान रूप से विद्यमान होती है। "लोकजीवन की प्रत्येक दिशा नृत्य से व्याप्त है। हवा के बवंडर भी यदा-कदा नाच उठते हैं। घर के बाहर और छतों पर मयूर नृत्य करते हैं। निर्जीव पदार्थ में नृत्य देखने में आता है। लोकजीवन में कठपुतली नाचती है। ये सभी प्रकार के नृत्य, लोकनृत्य के अंतर्गत आते हैं। लोकनृत्य जीवन की आत्मानुभूति है।"

लोकनृत्यों में मानव की ऐतिहासिकता एवं सामाजिक परंपरा तथा विकास के दर्शन निहित होते हैं। जनजातीय लोकजीवन के तो ये प्रमुख अंग हैं। उनके अभावग्रस्त एवं कटु जीवन को संगीत तथा नृत्य ही सरस, सुखद तथा मस्त बनाते हैं। नृत्य इनकी सहनशीलता, आमोद-प्रमोद तथा विनोदी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं । डॉ. श्याम परमार के अनुसार, लोकनृत्य और संगीत ऐसे माध्यम हैं जो आदिवासियों के निज मन को रंगीन बनाते हैं। कला और सौंदर्य का चोली दामन का साथ है। जैसे सागर में लहरें वायु का संपर्क पाकर लहराती हैं, वैसे ही प्रकृति से प्राप्त अनुभवों की सहायता से लोक कला का विकास होता है। उदाहरण के लिए जब मनुष्य ने हवा में पेड़-पौधों को हिलते और लहराते देखा तो वह भी आनंद विभोर होकर अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाने-डुलाने लगा। हिलाने-डुलाने की इस क्रिया ने धीरे-धीरे नृत्य का रूप धारण कर लिया और समय बीतने पर हम उसे लोकनृत्य कहने लगे। चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु-पक्षी और चाहे लता-बेल आदि, आनंद के क्षणों में सभी के तन-मन थिरकने लगते हैं। जो नृत्य तन-मन को आनंद दे, सारा लोकमानस जिसे देखकर प्रफुल्लित हो उठे उसे लोकनृत्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है! लोकनृत्य बनाए नहीं जाते, स्वयं बनते हैं। इनमें समानता, सरलता, स्थायित्व और रंजकत्व आदि प्रधान गुण ग्रहण किए जाते हैं। भारतीय लोकनृत्य की सादगी के विषय में कहा गया है— भारतीय लोकनृत्य सीधा-सादा, निष्कपट होता है। इसकी सादगी के पीछे संकल्पना की गहनता तथा प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति रहती है। इन दोनों का कलात्मक महत्त्व है।

हिमाचल प्रदेश लोकनृत्यों की धरती है। यहां के देवोत्सव, त्योहार, मेले एवं अन्य संस्कार आदि लोकनृत्यों एवं लोकगीतों तथा लोकसंगीत से संपन्न होते हैं। इन लोकनृत्यों में स्थानीय इतिहास, सांस्कृतिक परंपराएं एवं लौकिक मान्यताएं प्रतिबिंबित मिलती हैं। "लोकनृत्य किसी आदर्श अथवा परानुभूति को प्रकट न करते हुए मात्र लोकजीवन के उल्लास को ही व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि वे जीवन की गति के आदर्श प्रतीक हैं। इन्हीं लोकनृत्य ने आत्मसमर्पण कर शास्त्रीय नृत्य को जीवन देकर हमारी कला को सुरक्षित रखा तथा जीवन को सांस्कृतिक बना दिया है।" नृत्य का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितनी मनुष्य जाति का। वास्तव में नृत्य लोकजीवन से ही विकसित हुआ है। लोकनृत्य कला का एक अभिन्न अंग है, जो मानव जीवन में रची-बसी हुई है। कविता की तरह

किन्नौर का लोकनृत्य

लाहौल स्पीति का लोक नृत्य

दल लोकगीत की पंक्तियों को आरंभ में गाता है जबकि दूसरा दल उन्हें उसी ढंग से दोहरा देता है। यह नृत्य गांव के छोटे उत्सवों पर प्रायः रात को होते हैं। ऐसे लोकनृत्यों का प्रचलन अधिकतर शिमला, सिरमौर, सोलन तथा मंडी के ग्रामीण क्षेत्रों में है।

सामूहिक लोकनृत्य—ऐसे लोकनृत्यों का प्रदर्शन प्रत्येक बड़े उत्सव, मेलों पर होता है। यह प्रदेश के प्रत्येक भाग से बाहर भी अधिक लोकप्रिय हैं। ऐसे सामूहिक नृत्यों का परिचय विस्तार से यहां दिया जा रहा है। इन लोकनृत्यों का वर्गीकरण लिंग, जाति के आधार पर भी किया जा सकता है, यथा—

(1) **महिला लोकनृत्य**—ऐसे लोकनृत्यों में केवल स्त्रियां ही भाग लेती हैं। इन लोकनृत्यों में हिमाचल के अनेक नृत्य गिने जा सकते हैं। जैसे चंबा के घुरेही, डांगी और घौड़ायी लोकनृत्य, लाहौल-स्पीति का ज़ोमे लोक-नृत्य, कुल्लू का लालड़ी लोक नृत्य और शिमला का तुरिण नृत्य तथा कांगड़ा क्षेत्र के अनेक लोकनृत्य गिने जा सकते हैं।

(2) **पुरुष लोकनृत्य**—ऐसे लोकनृत्यों में केवल पुरुष ही नाचते हैं, जैसे सिरमौर और शिमला जनपदीय क्षेत्र के जोली, छट्टी घुगती, ठोडा नृत्य, कुल्लू के तलवार, करथी, हरण लोकनृत्य, लाहौल-स्पीति के मकर नृत्य

नृत्य भी हृदय को आनंदित एवं उद्वेलित करता है। लोकनृत्य की पृष्ठभूमि में भी वही भावना रहती है।

हिमाचल के लोकनृत्य—हिमाचल प्रदेश के हिमाच्छादित शिखरों, हरित वनों, मखमली चारागाहों, अबाध बहते नदी-नालों, हंसते-खेलते-नाचते पहाड़ी निवासियों के मध्य रह कर जो आत्मिक तृप्ति मिलती है, वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं। चिरकाल से इस पहाड़ी क्षेत्र के जनपद में जो नैसर्गिक आनंद, शांति, निष्कपटता, गरिमा और महिमा की छटा बसती है, उसमें आज भी कोई कमी नहीं आई है। गांव-गांव के अपने देवी-देवता, लोक-गीत, लोक-वाद्य, लोकनृत्य और लोक परंपराएं धीरे-धीरे मूल के महासागर में बहते चले जा रहे हैं। इसी रंग और रस से भरपूर थाती में से कुछ प्रमुख लोकनृत्यों का यहां परिचायत्मक स्वरूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की जा रही है। वैसे तो हिमाचल प्रदेश के किसी क्षेत्र के लोकनृत्य को किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता और न ही शास्त्रीय नृत्यों की तरह इन्हें किसी विशेष शैली या नियमों के बंधनों में जकड़ा जा सकता है। प्रधानतः हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्यों की संख्या भी उतनी ही अधिक है। जितने ग्राम, समुदाय और किंचित लोकनृत्यों का नामकरण भी ग्रामों के आधार पर हुआ है, वे निम्नवत हैं—

व्यक्तिगत नृत्य—ऐसे लोकनृत्यों में तुरिण और मुंजरा गिने जा सकते हैं। इन नृत्यों में एक या दो नर्तक नाचते हैं। लोकगायक, श्रोता और दर्शक उनको घेरकर बैठ जाते हैं। लोकगायक खंजरी, ढोलकी, गुज्जू, खड़ताल या तालियों से लोकगीत की धुन और लय उठाते हैं और नर्तक धीरे-धीरे उठते हुए चारों ओर घूम-घूमकर अपने शरीर के हर अंग को लोकगीत की लय पर नचाता है। कभी-कभी बड़े लोकगायकों के दो दल भी होते हैं। एक

नाटी नृत्य - थियोग

नाटी नृत्य - थियोग

के नाम लिए जा सकते हैं।

(3) **मिश्रित लोकनृत्य**—हिमाचल प्रदेश में ऐसे भी असंख्य लोकनृत्य हैं जिनमें स्त्री-पुरुष मिलकर नाचते हैं। इनमें किन्नौर के अनेक लोकनृत्य, कुल्लू के नाटी, सांगला, पेखा, चंबा के गद्दी, पंगवाल नृत्य, शिमला के नाटी, माला इत्यादि लोकनृत्य सम्मिलित हैं।

इन लोक-नृत्यों का वर्गीकरण अवसर के आधार पर भी किया जा सकता है, यथा—

(1) **धार्मिक लोकनृत्य**—धर्म हिमाचल प्रदेश की जनता के दैनिक जीवन का एक अंग है। इसलिए लोकनृत्य में भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन लोकनृत्यों में कांगड़ा क्षेत्र के रास, गुग्गा, भगत नृत्य, कुल्लू और शिमला क्षेत्र के देव खेल नृत्य, चंबा के सेन नृत्य तथा लाहौल स्पीति के मकर नृत्य शामिल हैं।

(2) **सामाजिक धार्मिक नृत्य**—प्रत्येक समाज के अपने-अपने मूल्य एवं आदर्श होते हैं। उनका समावेश वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कर लेता है। प्रत्येक जाति का जीवन इसी धुरी के इर्द-गिर्द घूमता है।

सामाजिक, धार्मिक लोकनृत्यों में प्रायः हिमाचल के सभी क्षेत्रों के सारे लोकनृत्य गिने जा सकते हैं। कोई मेला या उत्सव देवी-देवता की अर्चना के बिना पूरा नहीं समझा जाता और उनमें लोकनृत्य का न होना उसे नीरस बना देता है।

(3) **अवकाश या आनंद नृत्य**—ऐसे लोक-नृत्यों में फूकी नाटी प्रयाण नृत्य, ठोडा लोकनृत्य इत्यादि गिने जा सकते हैं। इन नृत्यों द्वारा मानव को आनंदमयी भावनाओं को यथेष्ठ प्रकटीकरण का अवसर प्राप्त होता है।

हिमाचल प्रदेश के सभी लोकनृत्यों की गिनती पहाड़ी लोकनृत्यों में भी की जा सकती है। पंजाब और हरियाणा की सीमा से लगे हुए थोड़े क्षेत्रों में कुछ मैदानी लोकनृत्य जैसे गिद्धा और भांगड़ा भी कभी-कभी प्रदर्शित होते रहे हैं। पर धीरे-धीरे पहाड़ी लोकनृत्य ही वहां अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। लोक कलाकार की प्रतिभा, कल्पना-शक्ति, सौंदर्य-प्रेम और आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक लोकनृत्य में परिवर्तन आते रहे हैं और आते रहेंगे। कई बार आधुनिक एवं पाश्चात्य वाद्यों के साथ लोकगीतों एवं लोकनृत्यों को जोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न किया जाता है जो नितांत निरर्थक एवं अनुपयुक्त होता है। लोकनृत्य में कलाकार भले ही स्वांत सुखायः काम करता हो, परंतु अपनी कला को जनता के सामने लोक-रुचि के अनुकूल रखना भी उसका सामाजिक कर्त्तव्य है। ये पहाड़ी लोकनृत्य लोकजीवन से संबंधित होकर कोई पृथक् सत्ता नहीं रखते। उनकी उपादेयता वहीं तक है, जहां तक वे लोक-जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करें। लोकनृत्य परंपरा

पहाड़ी लोकनृत्य

प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गांधी 26 जनवरी, 1970 गणतंत्र दिवस पर राजस्थानी लोक नर्तकों के साथ लोकनृत्य में भाग लेती हुई।

का आकर्षण, प्रभाव, शक्ति एवं सजीवता तब तक कायम रहेगी, जब तक वह अपनी मिट्टी की गंध और महिमा को अभिव्यक्ति देती रहेगी; जिसकी वह उपज है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार, ''हिमालय का प्रदेश ही गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास भूमि है। इनका समाज संभवतः उस स्तर पर था जिसे आजकल के पंडित मुनालुअन सोसाइटी कहते हैं। शायद इससे भी अधिक आदिम; परंतु वे नाच-गान में कुशल थे। इन्हीं जातियों के साथ किन्नरों का विस्तृत वर्णन मिलता है जो नृत्य और गायन विधा में दक्ष थे।'' यह तो इतिहासकारों की खोजबीन का विषय है कि इन जातियों में से कौन सी जातियां विशुद्ध रूप से हिमालय के इस क्षेत्र में अपनी परंपराएं कहां तक सुरक्षित रख पाई हैं। परंतु इतना आज भी स्पष्ट है कि हिमालय के आंचल स्थित हिमाचल प्रदेश में रहने वाले लोगों में अब भी लोकनृत्य अत्यंत लोकप्रिय हैं। जो अपने परंपरागत रूप में, प्रत्येक उत्सव, त्योहार और मेलों पर प्रदर्शित होते हैं। हिमाचल के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में प्रचलित नृत्य भी धार्मिक परंपराओं और कलात्मक गुणों का सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं। पहाड़ी लोकनृत्यों में जहां उनके लयात्मक गुणों और सौम्य स्वभाव के कारण आकर्षण है, वहीं उनमें प्रयुक्त बहुरंगी वस्त्राभूषण और सज्जा परिधानों ने इनके बाह्य कलेवर को अति कलात्मक और दैवीय बना दिया है। यहां प्रत्येक क्षेत्र के नृत्य के लिए अपना एक अलग पहनावा है जिसमें न केवल किसी नृत्य को स्थान विशेष के साथ पहचाना जा सकता है अपितु इसमें नृत्य के कलात्मक गुण और भी उभर आते हैं। नृत्य के लिए प्रयुक्त विभिन्न स्थानों के परिधानों को सहज ही अलग-अलग पहचाना जा सकता है। "लोकनृत्य सभी कलाओं में अति प्राचीन है। लोकनृत्य लोककला का ही विशिष्ट रूप है जिसमें ललित कलाओं के अनेक रूप समाए हुए हैं। लोकनृत्य एवं लोकसंगीत का परस्पर गहरा संबंध है। नृत्य और संगीत विश्व की आदिम कलाएं हैं।" मानव मन की गहरी अनुभूति भरी उल्लासमयी लहरों का साकार रूप इन लोकनृत्यों में उभरता है। परिवर्तित ऋतुचक्र से लोकनृत्य प्रदेशवादियों को कैसे प्रभावित करते हैं, यह सौंदर्य आयोजित-समायोजित लोकनृत्यों में ही दृष्टिगत होता है। भक्त ईष्ट देवता की आराधना करने के लिए पूजा का पात्र या मृदंग हाथ में ले, आत्म-विभोर हो झूमने लगता है। सारे वातावरण में भक्ति की एक लहर सी दौड़ जाती है। यही सत्य लोकनृत्य की प्रेरणा है। जैसे कवि अपनी कविता द्वारा, मूर्तिकार मूर्ति द्वारा, चित्रकार चित्र द्वारा सुंदर अभिव्यक्ति करते हैं, वैसे ही कुशल लोकनर्तक अपने शरीर के विभिन्न अंगों को थिरकन देकर अंतस्थल की भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। लोककला धरती से अंकुरित हुई कला है। यह मानव की मूल प्रवृत्तियों का स्मरण दिलाती है। लोककला में लोकनृत्य का सर्वोच्च स्थान है। सरलता, संवेदना, सहकारिता, स्फूर्ति, रंग, वैभव तथा शक्ति के इस संगम में कला संपूर्ण रूप से प्रस्फुटित होती है।

पहाड़ी लोकनृत्य

विभाग तथा खेल एवं युवा सेवा विभाग प्रत्येक वर्ष नृत्य प्रतियोगिता आयोजित करता है जिससे लोकनृत्य निरंतर विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वर्षभर में प्रत्येक उत्सवों, त्योहारों, मेलों एवं विवाहोत्सव के अवसर पर ढोल, नगाड़े, शहनाई, रणसिंघ, करताल, हुड़की आदि लोकवाद्यों की मधुर धुनों पर ये लोकनृत्य नर्तकों की भाव-भंगिमाओं द्वारा दर्शकों का मन मोह लेते हैं। अतः यही लोकनृत्य लोककला को आनंदमय बनाकर हमारी प्राचीन एवं समृद्ध लोकसंस्कृति को सुरक्षित रखने में अपनी अहम भूमिका निभा रहे हैं।

तीव्रगति से बढ़ते शिक्षा-प्रसार, विज्ञान और तकनीकी विकास के फलस्वरूप जो सामाजिक परिवर्तन हो रहा है, उसके कारण अन्य लोक मनोरंजन एवं परंपराओं के साथ लोकनृत्यों के स्वरूप, शैली और प्रदर्शन में भी परिवर्तन परिलक्षित होना स्वाभाविक ही है। परंतु इन लोकनृत्यों का वैभव, कला-सौष्ठव, सौंदर्यबोध एवं रंगमंचीय प्रभाव आज भी उतना ही गहरा है जितना युगों पहले था। इसलिए लोकनृत्यों की शारीरिक एवं

कर्टसाश ने ठीक ही कहा है—नृत्य कला की जननी है। संगीत एवं काव्य का अस्तित्व काल में है, चित्रकला और शिल्पकला शून्य में, परंतु नृत्य का अस्तित्व दोनों में है। निर्माता और निर्मित वस्तु कलाकार और कार्य एक और वही हैं यहां तक वे लोग जिनके पास निर्धनता के कारण अन्य कला के लिए कोई साधन नहीं है, वे अपने शरीरों में लयात्मक गति का प्रतिमान पा सकते हैं। इसलिए लोकमानस पर जितनी अधिक छाप लोकनृत्य और लोकसंगीत की है, उतनी अन्य किसी की नहीं। सुगठित शरीर, आत्मा की कविता और संगीत तथा लोकनृत्य मानव संस्कृति के सर्वोत्तम उपकरण बन जाते हैं। पहाड़ी कृषक के कठोर श्रम और कठिन जीवन की शुष्कता को दूर करने वाले ये लोकनृत्य उसे प्रकृति के सुंदर हिंडोले में सुलाते हैं।

हिमाचल प्रदेश के संपूर्ण भू-भाग में लोकनृत्य प्रचलित हैं। "यहां के लोकनृत्य सरल, स्वाभाविक, विविध व मनोहारी हैं। धार्मिक भावनाओं से अनुप्राणित और कलात्मक गुणों से अलंकृत जिला शिमला, मंडी, कुल्लू, चंबा, लाहौल-स्पीति, सिरमौर के लोकनृत्य अत्यंत मनोहारी हैं। ये लोकनृत्य एक विशेष प्रकार की थिरकन से परिपूर्ण हैं। यहां के अधिकांश नृत्य सामूहिक हैं।" वस्तुतः हिमाचली

लोकनृत्यों में आकर्षक लय के अतिरिक्त नर्तक दल को माला में बंधने का निश्चित क्रम अद्भुत आकर्षण पैदा करता है। इन नृत्यों के माध्यम से मानवीय मनोभावों की अभिव्यक्ति जिस प्रकार प्राप्य है उतनी दूसरी जगह शायद ही सुलभ हो। इस क्षेत्र की संस्कृति ने प्राकृतिक दृष्टि से यहां के जन-जीवन को पूर्व से वर्तमान तक प्रभावित किया है। लोकनृत्य के प्रोत्साहन के लिए भाषा एवं संस्कृति

पहाड़ी लोकनृत्य

पहाड़ी लोकनृत्य

मानसिक आनंद भावना मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक है। हमारे देश में कितने प्रकार के लोकनृत्य मौजूद हैं, इसकी गणना नहीं की जा सकती। विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न देवताओं के, विभिन्न वाद्यों के साथ नाचे जाने वाले लोकनृत्य अनगिनत हैं। अभी तक उनका लेखा-जोखा नहीं हो पाया। समय-समय पर सारे प्रदेशों में इन नृत्यों के आयोजन होते रहते हैं। इन प्रयासों से कई लोकनृत्यों ने देश-विदेश में इस कला की धाक जमाई है और इनके प्रति एक अंतर्राष्ट्रीय अभिरुचि पैदा हुई है।

सहायक संदर्भ :

1. रीता धनखड़, हरियाणा का लोकसंगीत (नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशंस, 1998)।
2. वही।
3. वही।
4. ओमचंद हांडा, पश्चिम हिमाचल की लोक कलाएं (इंडस पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1988)।
5. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत लोकसंगीत अंक (संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश, 1996)।
6. केशव आनंद, हिमाचल का लोकसंगीत (संगीत नाटक अकादमी, रविंद्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली)।
7. प्रो. मोहन मैत्रेय, उत्तर भारत के लोकनृत्य (उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, पटियाला)।
8. ओमचंद हांडा, पश्चिमी हिमालय की लोक कलाएं (इंडस पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली)।
9. डॉ. पूर्णचंद शर्मा, संस्कृति के स्तंभ (उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, पटियाला)।

अनुसंधान अधिकारी,
एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

नाजी यातनाओं का गवाह आस्वित्ज

डॉ. परमानंद पांचाल

इतिहास चंगेजखां, हलाकू और नादिरशाह जैसे अनेक आतताइयों के रक्त रंजित कारनामों की असंख्य दास्तानों से भरा पड़ा है, किंतु द्वितीय महायुद्ध में नाजियों द्वारा लाखों असहाय और निरपराध लोगों पर ढाए गए जुल्मों, उनको दी गई लोमहर्षक यातनाओं और उनके नरसंहार जैसी घटनाओं की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलतीं।

पोलैंड स्थित आस्वित्ज का नाजी यातना केंद्र ऐसे ही मानव-संहार की भयावह वैधशाला थी, जिसकी दिल दहलाने वाली दास्तान को सुनकर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पोलैंड स्थित आस्वित्ज का यह जघन्य-यातना केंद्र विश्व इतिहास का बदनुमा काला धब्बा है, जिसकी स्थापना जर्मनी द्वारा 1940 में की गई थी। यहां विभिन्न उत्पीड़नकारी, विधियों द्वारा निरपराध नर-नारियों और मासूम बच्चों को असहाय यातना देकर बर्बरतापूर्ण मौत के घाट उतार दिया जाता था। उन्हें जगह-जगह से रेलगाड़ियों में भरकर लाया जाता था और गैस-चैंबर में भेज दिया जाता था, जहां उनका बड़ी बेरहमी से अंत कर दिया जाता था। क्रकोफ नगर के समाज में आज भी इस नर-संहार केंद्र के अवशेष मौजूद हैं। इसे अब पोलैंड तथा अन्य राष्ट्रों के शहीदों के स्मारक के रूप में जाना जाता है। यहां एक राष्ट्रीय संग्रहालय है, जहां विश्व के कोने-कोने से दर्शक उन अभागे दिवंगत प्राणियों की स्मृति में नत मस्तक होते हैं, जो नाजियों के क्रूर अत्याचारों के शिकार हुए थे। आज इन इमारतों में एक भूतहा-वातावरण है, जो विगत की लोमहर्षक घटनाओं की याद ताजा कर देता है।

6 नवंबर, 1986 को मुझे इस पिशाचकारी स्थल के अवशेषों को देखने का अवसर मिला था। राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के विशेष कार्य अधिकारी के रूप में मैं पोलैंड के उनके दौरे के समय उनके साथ था। पोलैंड के प्रसिद्ध हिंदी विद्वान प्रो. बृस्की भी दुभाषिए के रूप में हमारे साथ थे। उन्होंने इस शिविर के संबंध में अनेक जघन्य और अमानवीय अत्याचारों की दास्तान सुनाई। वहां जो कुछ बताया गया और जो दस्तावेज हमें दिए गए उनके आधार पर कहा जा सकता है कि यह यातना केंद्र मानवता के नाम पर सबसे बड़ा कलंक है। न्यूरम्बर्ग के अंतरराष्ट्रीय सैनिक न्यायाधिकरण ने इन नाजी यातना शिविरों को उनके द्वारा विजित देशों की जनता को आतंकित करने का एक सबसे शर्मनाक साधन बताया था और इनमें किए गए अत्याचारों को मानवता के विरुद्ध घोर अपराध की संज्ञा दी थी। ये यातना केंद्र जर्मनी द्वारा विजित देशों की जनता, खास तौर से स्लाव और पोलैंड तथा सोवियतसंघ की जनता और यहूदियों को आतंकित करने, उनकी श्रमशक्ति का शोषण करने और उनका नर संहार करने की नाजी-नीति के मुख्य आधार थे।

यहां सबसे पहले पराजित पोलैंड के लाखों देशभक्तों को लाकर उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। बाद में इसे अंतराष्ट्रीय 'नरसंहार केन्द्र' के रूप में बदल दिया गया, जहां नाजी लोगों ने मार्च 1942 से दूसरे विश्वयुद्ध के अंत तक पोलैंड, बल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, हालैंड, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, हंगरी, इटली, लिथवानिया, नार्वे, रूमानिया, रूस, युगोस्लाविया, स्विट्जरलैंड और तुर्की के नागरिकों तथा जिप्सियों और यहूदियों को बंदी बनाकर उन्हें असहय यातनाएं दी जाती थीं। मार्च 1942 में मुख्य केंद्र सेजिसे के.एल. आस्वित्ज-1 कहा जाता था, तीन किलोमीटर दूर के.एल. आस्वित्ज-2 तथा के.एल

रोजाना विभिन्न देशों और शहरों से स्त्रियों और पुरुषों को विशेष रेलगाड़ियों में ठूंस-ठूंस कर भर कर लाया जाता था। उन्हें नीचे उतार कर पंक्तियों में खड़ा किया जाता था और उनमें से जो दुर्बल, बीमार और शारीरिक श्रम के अयोग्य होते थे, उनकी छंटाई करके उन्हें सीधे गैस चैंबर में भेज दिया जाता था। बच्चों को स्त्रियों से अलग कर दिया जाता था और उन्हें भी गैस चैंबर के हवाले कर दिया जाता था, ताकि उन्हें तत्काल नष्ट किया जा सके। शेष लोगों को शारीरिक श्रम के लिए चुन लिया जाता था। उन्हें प्रातः 6 बजे से शाम के अंधेरे तक कठोर परिश्रम करना पड़ता था। कठोर शारीरिक, मानसिक पीड़ा और थकान के कारण उनमें से अधिकांश मौत के शिकार हो जाते थे। इन कैदियों को नाम मात्र का ही भोजन और विश्राम दिया जाता था। आस्वित्ज़ कैंप में जब कैदी दिन भर काम से थक कर निढाल हो जख्मी और लहू-लुहान अवस्था में शाम को लौटते थे, तो वहां के अधिकारी उनमें से अधिकांश को गोली का निशाना बना देते थे। मृत लोगों की लाशों को परेड ग्राउंड में रख दिया जाता था, ताकि उनका हिसाब रखा जा सके। कैदियों को मौत के घाट उतारने के लिए अधिकारियों को प्रोत्साहन भी दिया जाता था। इसका कारण यह था कि कैंप में आने वालों की संख्या में वृद्धि होती जा रही थी। कैंप के डॉक्टर बीमार लोगों का इलाज न करके उन पर आपराधिक प्रयोग करते थे, जिससे या तो वे मर जाते थे या असाध्य बीमारी का शिकार होकर स्थाई रूप से विकलांग हो जाते थे। आस्वित्ज कैंप मात्र एक विशाल 'मृत्यु शाला' ही नहीं थी, बल्कि एक प्रयोगशाला भी थी जिसका मुख्य उद्देश्य अन्य राष्ट्रों के आनुवांशिक विनाश के लिए सामूहिक बन्ध्यीकरण का रास्ता खोजना भी था। इसकी सृष्टि हिटलर के वैयक्तिक सहायक, रूडोल्फ ब्रांड्ट द्वारा न्यूरंबर्ग में दिए गए साक्ष्य से हो जाती है। यह दायित्व डॉ. हार्स्ट शुमान के ऊपर था। डॉक्टर अस्पतालों और ब्लाकों में बीमारों का निरीक्षण करते और बिना किसी परीक्षण के उनकी बाहरी दशा को देख कर यह तय करते थे कि उसे

आस्वित्ज-3 की भी स्थापना की गई थी।

यातना केंद्रों में स्त्रियों, पुरुषों, व्यस्कों, बच्चों, युवकों और वृद्धों, सभी वर्गो के लोगों को रखा जाता था, चाहे उनका धर्म अथवा व्यवसाय और देश कोई भी क्यों न हो। यहां लोगों को तत्काल मौत के घाट उतारने के लिए 'गैस चैंबर' बनाए गए थे, जिनमें व्यक्तियों को जबरन धकेल दिया जाता था। उनकी लाशों को गड्ढों में गाढ़ दिया जाता था। जब स्थान की कमी होने लगी तो उनके शवों को अग्नि में जलाया जाने लगा। मृत व्यक्तियों की संख्या का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 1944 में जिन लोगों को मौत के घाट उतार कर अग्नि में जला दिया गया था, उनकी दाह क्रिया 20,000 शव प्रति 24 घंटे थी, क्योंकि ग्रीष्मकाल में यहां भर कर लाए गए कैदियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। 'के.एल. बिर्केनाऊ' में जिन लोगों का जहरीली गैस से प्राणांत किया गया था, उनकी संख्या लगभग 35 लाख थी। इनके लिए पांच शवदाह गृह बनाए गए थे। आगे चल कर अब शवों की संख्या और बढ़ने लगी तो उन्हें खुले मैदान में ही जलाया जाने लगा। इनके अलावा असंख्य ऐसे कैदी भी थे, जिनका नाम कभी भी कैंप रेकार्ड में दर्ज ही नहीं था और उन्हें रेलगाड़ी से उतार कर सीधा गैस-चैंबर में भेज दिया गया था। ऐसे 4 लाख लोग होंगे, जिनका नाम दर्ज था। इनमें से तीन लाख 40 हजार लोग बीमारी, भूख, अमानवीय अत्याचार, असहनीय शारीरिक श्रम अथवा सामूहिक नरसंहार के कारण मौत के शिकार हुए थे।

2. Auschwitz, Poland - Concentration camp opens April 1940
The message : "Work makes one free."

अभी जिंदा रखा जाए या मार दिया जाए। पहली दृष्टि में यदि कोई कैदी बीमार या कमजोर दिखाई पड़ता है, तो उसे मारे जाने के लिए चिह्नित कर देते थे।

इन कैंपों में मृत व्यक्तियों के बालों और हड्डियों को काम में लाने के लिए अलग-अलग तरह के प्रयोग किए जाते थे, ताकि इनमें व्यापारिक लाभ कमाया जा सके। उनकी चर्बी से साबुन आदि बनाने के भी प्रयोग किए थे। हिटलर ने आईकमेन को आदेश दिया था कि मृत स्त्रियों के बालों और सोने के दांतों को इकट्ठा कर लिया जाए। बालों को आधा मार्क प्रति किलोग्राम की दर से सूती कपड़ों की मिलों को बेच दिया जाए। इस कैंप के अहाते के चारों ओर कांटेदार तार लगे हुए थे, जिसमें बिजली का करंट चालू कर दिया जाता था ताकि यदि कोई अभागा कैदी भागने की कोशिश करे तो वह बिजली के करंट से मारा जाए। यहां कई बार कई घंटों तक हाजिरी ली जाती थी। एक कैदी नेडियोस बिजोस्की ने बताया है कि 6 जुलाई 1940 को एक कैदी के भागने पर जो हाजिरी ली गई, वह 19 घंटे तक चली। इस शिविर के कैदियों को समाप्त करने का कारगर तरीका उनसे कठोर शारीरिक काम करवाना था, चाहे उनके हाथों में खून बहता रहे और वे खड़े होने में भी असमर्थ क्यों न हों। कभी-कभी उनके निरीक्षक, जिन्हें एस.एस. व्यक्ति कहा जाता था, उन्हें झुकने का आदेश देते और उनकी गर्दन के पीछे एक स्टूल से वार करते, जिससे उनकी तत्काल मृत्यु हो जाती। आतंकित कैदी इधर-उधर को भागते, जिन्हें संतरी गोली का निशाना बना देते। इस प्रकार लगभग 20 लाशें रोजाना वहां से हटाई जाती। एक कैदी जोज़फ एंजिल को जो 2 फरवरी, 1944 को तंग आकर आत्मघात करने का प्रयत्न कर रहा था, लाठियों से बार-बार पीटा गया। स्त्रियों को भी कोड़े लगाए जाते थे। शिवरीना ने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार 200 स्त्रियों को 25-25 कोड़े लगाए गए। इस शिविर में युद्धबंदियों और प्रमुख नागरिकों—विशेष रूप से बुद्धिजीवियों, प्रोफेसरों, विशेषज्ञों और उनके परिवारों को लाकर रखा जाता था।

13 जून, 1987 को क्लोस बार्बी के मुकदमे के समय आस्वित्ज के यातना केंद्र की ज्यादातियों की चर्चा फिर एक बार विश्व के अखबारों की सुर्खियों का विषय बनी। मेरी क्लोडी वेलेंट कोटूरियर ने अपने साक्ष्य में कहा कि ''आस्वित्ज का यातना केंद्र विशुद्धता संबंधी नाजी सिद्धांतों के लिए एक बड़ी प्रयोगशाला थी जिसमें बड़ी मात्रा में वंध्यीकरण करने और अशक्त लोगों को मौत के घाट उतारने का कार्य होता था। मेरी क्लोडे वेलेंट ने 1946 में न्यूरंबर्ग युद्ध अपराधी न्यायाधिकरण के सामने बयान दिए थे। अपने 18 महीने के यातना केंद्र प्रवास का वर्णन करते हुए उसने बताया कि 300 फ्रांसीसी स्त्रियों को एक बंद रेलगाड़ी में आस्वित्ज़ लाया गया था, जिनमें से दो महीने के बाद केवल 70 ही जीवित रही। शेष भूख, ठंड, कठोर परिश्रम, पेचिस और बुखार से मर गई।'' उसने आगे कहा कि एक बार हमें बहुत मामूली कपड़ों में तीन बजे बर्फीली कड़ाके की सर्दी में हाजिरी के लिए बुलाया गया और देर रात तक ठंड में रखा गया। बाद में हमें अपने बैरकों में वापस भाग जाने को कहा गया। हममें से जो तेजी से नहीं दौड़ सकीं, उन्हें वापस खींचकर ब्लॉक नं. 25 में लाया गया, जो गैस चैंबर से मिला था। उसने कहा कि एस.एस. संतरियों ने नंगी और बीमार स्त्रियों के एक समूह को इकट्ठा करके एक ट्रक में भर कर गैस चैंबर तक ले जाते हुए कोड़ों से पीटा। इस प्रकार से ऐसे अनेक अकथनीय अत्याचारों और लोमहर्षक यातनाओं की दास्तान इन नाजी कैंपों से सुनने को मिलती है। हमारे सामने आज भी यह प्रश्नचिह्न लगा है कि क्या इतने वर्षों के बाद भी इस नृशंस हत्याकांड, पाशविक व्यवहार और अमानवीय कुकृत्यों से नई पीढ़ी कुछ सबक लेगी? क्या विश्व में स्थाई शांति का कोई मार्ग प्रशस्त हो भी सकेगा?

232-ए, पॉकेट-1, मयूर विहार फेज-1,
दिल्ली-110091

हिंदी भाषा के अप्रतिम योद्धा

उषा राजे सक्सेना

डॉ. रोनल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित थे। पिछले वर्ष 19 अगस्त, 2013 को उनका इस संसार से चला जाना हिंदी साहित्य के लिए एक दुःखद घटना रही।

हिंदी एवं संस्कृत के विद्वान स्टुअर्ट मैकग्रेगर के माता-पिता स्कॉटिश मूल के थे। उनका जन्म सन् 1929 में हुआ था। किशोरावस्था में फिजी से आए किसी अतिथि ने उन्हें फिजी से प्रकाशित एक हिंदी व्याकरण की पुस्तक भेंट की थी और तभी से उन्हें हिंदी एवं संस्कृत व्याकरण में रुचि पैदा हो गई थी। स्नातक की पढ़ाई उन्होंने न्यूजीलैंड में की तदोपरांत छात्रवृत्ति पर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए आ गए।

ब्रिटेन में शिक्षा समाप्त कर उन्होंने 1964 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी साहित्य का अध्ययन किया। 1965 में उन्होंने 'लंदन स्कूल ऑफ अफ्रिकन एंड ओरियंटल स्टडीज' से 'अ स्टडी ऑफ अर्ली ब्रज भाषा प्रोज़' विषय पर शोध कर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्ति की और वहीं विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में उनकी नियुक्ति बतौर हिंदी के अध्यापक की हुई। बाद में उनकी नियुक्ति 1968 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक के पद पर हुई। वे इमेरिट्स प्रोफेसर और फैलो ऑव वुल्फसन कॉलेज भी थे। उनका विवाह 1960 में कोलकाता में शोध कार्य कर रही एक छात्रा इलेन से भारत में हुआ था। डॉ. मैकग्रेगर की मृत्यु 19 अगस्त, 2013 को हुई। उनकी पत्नी इलेन अभी जीवित हैं और कैंब्रिज में रहती हैं।

डॉ. मैकग्रेगर का समय लंदन विश्वविद्यालय का स्वर्णकाल था। उन दिनों छात्रों को छात्रवृत्ति मिलती थी। हिंदी विभाग में 21 शिक्षकों की नियुक्ति थी। विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन के लिए स्नातक कोर्स का मॉड्यूल पाठ्यक्रम तैयार हुआ जिसमें हिंदी एवं साउथ एशियन साहित्य का अध्ययन होता था तथा छात्रों को पहले वर्ष में हिंदी अनिवार्य सहायक भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी।

डॉ. मैकग्रेगर का मानना था कि हिंदी जैसी समृद्ध भाषा सीखना दुनिया की अन्य भाषाओं से आसान है। डॉ. मैकग्रेगर की बनाई 'द ऑक्सफोर्ड हिंदी-इंगलिश डिक्शनरी' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने सन् 1993 में प्रकाशित की, जिसका इलेक्ट्रॉनिक वर्ज़न सन् 2000 में इलिनाएज ने निकाला। यह मानक शब्दकोश ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की अनुमति से अन्य देशों में भी छप रहा है। 70,000 शब्दों वाली इस डिक्शनरी में प्रति वर्ष नए शब्द जोड़े जा रहे हैं जिनमें बहुत सारे देवनागरी के शब्द भी होते हैं। शब्दकोश की भूमिका में वे कहते हैं कि उन्होंने शब्दकोश के बनाने में कई भारतीय और विदेशी विद्वानों की भी सहायता ली। डॉ. मैकग्रेगर ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। यहां उनकी कुछ प्रमुख पुस्तकों का परिचय दिया जा रहा है।

1968 में प्रकाशित उनकी 'ओरछा के इंद्रजीत की भाषा' हिंदी साहित्य की एक प्रामाणिक पुस्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुई। डॉ. मैकग्रेगर बताते हैं, इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में उन्हें 'इंद्रजीत ऑफ ओरछा' पर कई दुर्लभ टीकाएं देखने को मिली, उन्हीं में से एक टीका संस्कृत में लिखी 'भर्तृहरि के शतक' भी थी जिसे ओरछा के राजा इंद्रजीत ने ब्रज भाषा गद्य में प्रस्तुत किया था। अभी तक मान्यता थी कि ब्रज भाषा में केवल पद्य की ही रचनाएं हुई हैं परंतु गद्य में लिखी इस मध्यकालीन लुप्तप्राय टीका ने उन्हें अध्ययन की एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने इस टीका का अध्ययन किया और अपने निष्कर्षों को अंग्रेजी में 'सम भर्तृहरि कमेंट्स इन अर्ली ब्रज भाषा प्रोज़' शोध-ग्रंथ एवं अन्य शोध पत्रों के साथ हिंदी साहित्य जगत के सामने रखा जो आज हिंदी साहित्य का बहुमूल्य संपदा है।

डॉ. मैकग्रेगर ने शब्दकोश के साथ हिंदी-व्याकरण पर भी उल्लेखनीय कार्य किया। आपका लिखा 'आउटलाइन ऑफ हिंदी ग्रामर एक्सरसाइज़ेज़' देश-विदेश में हिंदी शिक्षकों एवं छात्रों द्वारा अनेक शिक्षण संस्थाओं में व्याकरण पढ़ाने के कार्य में लाया जा रहा है। पुस्तक का पहला संस्करण ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 1971-72 में प्रकाशित हुआ। अब तक उसके सात संस्करण निकल चुके हैं। 261 पृष्ठों की इस पुस्तक में 26 अध्याय हैं। पुस्तक मूलतः अंग्रेजी भाषा में लिखी गई है किंतु छात्रों को हिंदी व्याकरण समझाने के लिए, सुविधा और आवश्यकतानुसार नागरी लिपि और आधुनिक हिंदी का भरपूर प्रयोग है। अंतिम अध्याय में हिंदी के छोटे-छोटे टुकड़े अभ्यास के लिए दिये गए हैं। पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, ''पुस्तक इस सोच के साथ लिखी गई है कि छात्र को हिंदी का कोई पूर्व ज्ञान नहीं है। पाठ और अभ्यास पर कार्य करने से पूर्व छात्र को परिचय वाले भाग को पढ़ कर कार्य करने की विधि को समझ लेना

चाहिए। सबसे पहले उसे हिंदी ककहरे का अभ्यास करना चाहिए।'' आगे वे लिखते हैं, ''...लिप्यांतर से उसे लिपि जाने बिना भी व्याकरण समझने में आसानी होगी... साथ ही उच्चारण के अभ्यास के लिए किसी हिंदी-भाषी अथवा भाषा-प्रयोगशाला की सहायता ली जानी चाहिए।''

उन्होंने 'हिंदी लिटरेचर ऑव द नाइनटींथ सेंचुरी ऐंड अर्ली टुवेन्टीयथ सेंचुरी' (शोध-ग्रंथ) प्रकाशक—ओटो हैरसोविट्ज, बिजबाडेन, 1974 में विश्व साहित्य को दिया। पुस्तक में 121 पृष्ठ और पांच अध्याय हैं। पुस्तक परिचय में वे लिखते हैं कि उन्होंने पुस्तक पश्चिम के पाठकों को ध्यान में रखते हुए लिखी है अतः हिंदुस्तानी शब्दों और लिप्यांतर का प्रयोग खुल कर किया गया है। पहला अध्याय आरंभिक उन्नीसवीं सदी के भाषा और साहित्य के विकास और उसके प्रारूप पर लिखा गया है। दूसरा अध्याय नई शैली के स्थिरीकरण पर प्रकाश डालता है। तीसरा अध्याय हरिश्चंद्र के गद्य साहित्य पर विमर्श करता है। चौथा अध्याय उस समय की पत्रकारिता से संबद्ध विषयों पर है और पांचवां अध्याय 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध के गद्य और पद्य विधा पर विस्तार से लिखा गया है जिसमें नाटक, उपन्यास और समकालीन कविताओं को लिया गया है। अंत में दो पृष्ठों का निष्कर्ष है साथ ही अब्रेब्रिएशन और इंडेक्स की तालिका है।

इसी तरह उन्होंने एक अन्य ऐतिहासिक शोध-ग्रंथ 'हिंदी लिटरेचर फ्रॉम इट्स बिगनिंग टु द नाइनटींथ सेंचुरी', प्रकाशक—ओटो हैरोसोविट्ज बिजबाडेन, 1984 में विश्व साहित्य के सम्मुख रखा। पुस्तक में 239 पृष्ठ और चार अध्याय हैं। पहला अध्याय—उत्तर भारत में इंडो-आर्यन काव्य भाषा के अभ्युदय पर परिचयात्मक आलेख। दूसरा अध्याय—1200-1400 तक का लोक साहित्य (रासो, नाथपंथ, सूफी), अमीर खुसरो, मौलाना दाऊद, विद्यापति पर है। प्रारंभिक आख्यान काव्य, जैन और हिंदू सांस्कृतिक प्रकरण, कबीर के पूर्व के कवि और उनकी भक्ति एवं संत कवि। तीसरा अध्याय—प्रौढ़ता का युग (15-16 शताब्दी) परिचय, संत-काव्य, प्रेमाख्यान, कृष्ण-भक्ति संबंधी काव्य, राम-भक्ति संबंधी काव्य, दरबारी कवियों द्वारा रचित काव्य साहित्य एवं गद्य तथा अन्य। चौथा अध्याय—युग समाप्ति एवं नए युग (17वीं और 18वीं शताब्दी) पर परिचयात्मक लेख, संत कवि, प्रेमाख्यान, कृष्ण-भक्ति काव्य, राम-भक्ति काव्य, दरबारी कवियों की काव्य रचनाएं, अन्य कविताएं और गद्य। पुस्तक में हिंदी शब्दों का बाहुल्य है साथ ही लिप्यांतर का सुंदर प्रयोग है।

अंग्रेजी भाषा में लिखी 'डिवोशनल लिटेरेचर इन साउथ एशिया' उनकी कई संपादित पुस्तकों में से एक है जिसमें उन्होंने कैंब्रिज में आयोजित कांफ्रेंस 'न्यू इंडो-आर्यन लैंगुएजेज़—1985-88' पर दिए गए विभिन्न वक्ताओं के 39 भाषणों को संजोया है। विभिन्न लेखों में हिंदी, मराठी और संस्कृत के उद्धरण देवनागरी में और उर्दू-फारसी के उद्धरण फारसी लिपि में दिए गए हैं। पुस्तक के आरंभ में एक पृष्ठ पर प्रयोग में आए लंबे शब्दावलियों के संक्षिप्तीकरण की सूची दी गई है और अंत में तीन पृष्ठों 314-322 पर विषय-सूची है। इस पुस्तक को कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ने छापा है।

डॉ. मैकग्रेगर ने उन आरंभिक कवियों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिन्हें लगभग भुला दिया गया था जैसे नंददास, विष्णुदास, भिखारीदास। उन्होंने नंददास कृत 'रासपंचाध्यायी' का 'नंददास—द राउंड डांस ऑव कृष्णा एंड उद्धवज़ मैसेज' के नाम से अंग्रेजी अनुवाद किया है जिसे 1973 में लुज़ाक एंड कम्पनी, इंग्लैंड ने प्रकाशित किया। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने नंदलाल और उनके समकालीन कबीर, मीराबाई और सूरदास का परिचय देते हुए भक्ति परंपराओं का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने मीराबाई, कबीर और तुलसीदास के कई महत्त्वपूर्ण रचनाओं का अनुवाद भी किया है।

डॉ. मैकग्रेगर के अनेक प्रामाणिक लेख देश-विदेश के जर्नल में प्रकाशित हुए हैं उनमें से 'आधुनिक हिंदी विकास', 'मानक हिंदी का उद्भव तथा हिंदी गद्य कथा साहित्य', 'द फॉरमेशन ऑफ मॉडर्न हिंदी ऐज़ डिमॉस्ट्रेटेड इन अर्ली हिंदी डिक्शनरीज़' आदि उल्लेखनीय हैं। 'द फॉरमेशन ऑफ मॉडर्न हिंदी एज डिमॉस्ट्रेटेड इन अर्ली हिंदी डिक्शनरीज़' उनकी रॉयल नीदरलैंड अकादमी ऑफ आर्ट एंड साइंस द्वारा आयोजित 'आठवां गोंडा लेक्चरस' 23 नवंबर, 2000 में दिया गया भाषण है। जिसमें उन्होंने आधुनिक हिंदी के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया का खोजपूर्ण विस्तार देते हुए प्राचीन पांडुलिपियों के फोटोग्राफ भी प्रस्तुत किए हैं। इस पुस्तक में उन्होंने ब्रज भाषा के नंददास की 16वीं सदी में लिखे ब्रज भाषा के थिसॉरस 'मान-मंजरी' और 'एकार्थ मंजरी', फ्रैंक्वायज़ मैरी के 1703 में लिखे 'द थिसॉरस लिंगुआना इंडियाना' का संदर्भ भी दिया है जिसमें सूरत और सूरत के आस-पास के हिंदुस्तानी शब्दों का कोश संग्रहीत है।

45 पृष्ठों का उनका अंतिम महत्त्वपूर्ण आलेख 'प्रोग्रेस ऑव हिंदी' (चौदहवीं से पंद्रहवीं सदी का साहित्यिक सांस्कृतिक इतिहास) शेल्डन पोलक ने संपादित किया जो हिंदी साहित्य के इतिहास में गागर में सागर समान है।

22 अक्तूबर, 1980 में ऑस्ट्रेलिया के नेशनल यूनिवर्सिटी में 'बाषमलेक्चर्स सेमिनार' में व्याख्यान देते हुए डॉ. मैकग्रेगर ने कहा, ''कभी-कभी मैं सोचता हूं... आधुनिक इंडिया के बारे में बहुत सी बातें या तो भुला दी गई हैं या उसे अनदेखा किया जा रहा है जैसे उसकी भौगोलिक विशालता, जनसंख्या, बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति, डेमोक्रेसी, प्राचीन संस्कृति का आधुनिकीकरण, इत्यादि...।'' आगे उन्होंने कहा, ''हिंदी दुनिया की तीसरी भाषा है और साउथ एशिया की बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। हम इस भाषा को हिंदी कहें, उर्दू कहें या हिंदुस्तानी कहें, कोई फर्क नहीं पड़ता... परंतु जब लिखने की बात होती

है तो स्थिति बदल जाती है... यह जो नई हिंदी की शैली उभर कर आई है, उसमें एक ऐसी 'ऑरगैनिक' शक्ति है जिसमें 'इंनहेरेंट प्रॉस्पेक्ट ऑफ ग्रोथ' है... वही उसे दुनिया की एक बेहद शक्तिशाली भाषा बनाती है।''

'मानक हिंदी का उद्‌भव तथा हिंदी गद्य साहित्य' उनका एक अन्य लंबा शोध निबंध है जिसमें डॉ. मैकग्रेगर मानते हैं कि हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से एक है। उनका कहना है, भारत के सांस्कृतिक और भाषाई संस्कृति को समझने के लिए हिंदी का ज्ञान आवश्यक है। वर्तमान में हिंदी का महत्त्व और अधिक बढ़ा है, क्योंकि भारत आज शिक्षा, उद्योग और तकनीकी के हिसाब से विश्व के अग्रणी देशों में है।

1975 में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में डॉ. मैकग्रेगर मुख्य वक्ता थे जिसमें उन्होंने कहा, ''18वीं शताब्दी में भारतीयों और अंग्रेजों का आपस में मिलना-जुलना शुरू हुआ और तभी से हिंदी के महत्त्व को हमारे देश में अनुभव किया जाने लगा है।'' आगे उन्होंने कहा, ''हिंदी की एक द्रुतवाहिनी धारा हमारे देश में भी बह रही है।''

24 फरवरी, 1979 में उन्हें भारत सरकार द्वारा 'विश्व हिंदी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। डॉ. मैकग्रेगर की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति चार विश्व हिंदी सम्मेलनों में रही—नागपुर, मॉरिशस, दिल्ली और लंदन। सन् 1999 में लंदन में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्होंने नागार्जुन पर एक खोजपूर्ण लेख पढ़ा। विश्व हिंदी साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ. मैकग्रेगर ने विश्व के साहित्य जगत में शब्दशास्त्री, व्याकरणशास्त्री, हिंदी साहित्य के इतिहासकार और शब्दकोश के रचनाकार के रूप में ख्याति प्राप्त की। वे जीवन भर व्यस्त, अध्ययनरत और हिंदी-भाषा के लिए प्रतिबद्ध रहे।

54 हिल रोड, मिटचैम
सरे, सी आर 4, 2 एच क्यू, यू.के.

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 2000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कलाकृतियां अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्‌धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता और फोन नंबर अवश्य लिखें।**

चित्रा मुद्गल की कहानियां और स्त्री-विमर्श

डॉ. रीता सिन्हा

स्त्री-विमर्श में स्त्री-मुक्ति ही नहीं स्त्रियों के स्वत्व और अस्मिता की भी प्रश्नाकुलता छिपी है। हमारे देश में उत्तर वैदिक काल से स्त्रियों के उत्पीड़न का जो यथार्थ सामने आता है, उसमें मुक्ति एक यूटोपिया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है— ''नात्मनवाचने शते न दायस्य'' अर्थात् स्त्रियों का न अपना कोई स्वत्व होता है और न कोई उत्तराधिकार (4.4.2.13)। संहिताओं में भी इसी का अनुमोदन है। मनुस्मृति ने तो स्त्री स्वतंत्रता के विचार को ही स्थगित कर दिया। यहीं से कन्याओं की यौन-शुचिता समाज के चिंतन के केंद्र में आ गई (मनुस्मृति, 8.226)।

एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में कहा कि उत्पादन में भागीदारी के उपरांत ही स्त्री की पराधीनता खत्म होगी। वरिष्ठ लेखिका चित्रा मुद्गल की कहानियों को यदि एंगेल्स के इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो उत्पादन में स्त्रियों की भागीदारी के बावजूद उनके शोषण और दोहन की स्थिति निरंतर बनी हुई है। सच्चाई यह है कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना जन्य भावुकता से भी स्त्री-मुक्ति में अवरोध उत्पन्न होता है। पुत्र में 'मोक्ष की यूटोपिया' ने भारतीय स्त्रियों को अपनी पुत्री से इस तरह दूर किया है कि पुत्री अपनी ही मां के द्वारा शोषित होने लगी हैं। चित्रा मुद्गल अपनी कहानी 'ट्रेन छूटने तक' में इसी विडंबना का संकेत देती हैं। शुभा जैसी लड़कियां बेटा बनना चाहती हैं। उत्पादन में उनकी सक्रिय भागीदारी है। अपनी मां और भाइयों की जिंदगी से दुखों के भार को कम करना उनके जीवन का अहम उद्देश्य है। पर मां उसे न बेटा समझती है और न बेटी समझ कर उसका घर ही बसने देना चाहती है। उसके लिए उसका अयोग्य, अपने प्रति संवेदनशील और लापरवाह पुत्र ही सब कुछ है। अपनी मां के लिए शुभा जैसी लड़कियां अर्थ-उत्पादन का वह साधन है, जिससे वह अपने अयोग्य पुत्र के भी सपने पूरे करने के लिए प्रतिबद्ध है।

एंगेल्स, जुलिएट मिशेल, सिमोन द बउवार, जर्मेन ग्रीयर के साथ महादेवी वर्मा की भी यही मान्यता है कि स्त्री की संपूर्ण मुक्ति के लिए आर्थिक स्वतंत्रता केंद्रीय तत्त्व है। पर, उत्तर आधुनिकता के इस दौर में भी भारतीय मध्यमवर्गीय स्त्रियां अपने संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाई हैं। यह संस्कार एक ओर मां को पुत्र संबंधी यूटोपियाई संसार की सृष्टि के लिए प्रेरित करता है, जो बड़ा ही मोहक होता है और दूसरी ओर पुत्री को अपने कर्त्तव्य का स्मरण दिलाता है, जिससे स्त्री-उत्पीड़न का माध्यम स्त्री ही बनने लगती है। चित्रा मुद्गल भारतीय समाज में पुरुष ही नहीं स्त्रियों के भी सोच में बदलाव को स्त्री-विमर्श का महत्त्वपूर्ण बिन्दु मानती हैं।

मानव कोशिकाओं और जीवविज्ञान के समकालीन अध्येता कहते हैं कि पुरुष कोशिकाओं में वाई क्रोमोजोम की उपस्थिति होती है, जिससे वह प्राकृतिक रूप से कुछ उग्र हो जाता है। स्त्री कोशिकाओं में वाई गुणसूत्र नहीं होते, जिससे उसकी कोमलता बनी रहती है। कारण जो भी हो, पर चित्रा मुद्गल स्त्री की ममत्वपूर्ण और संवेदनात्मक प्रकृति को अस्वीकार नहीं कर पातीं। यह भी सच है कि समाज की भिन्न-भिन्न परतों की भिन्न-भिन्न प्रश्नाकुलताओं, विडंबनाएं और विसंगतियां हैं। ऐसे में हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम यह तय करें कि हमें किस स्त्री के संबंध में विमर्श करना है। सांस्कृतिक और नैतिक मूल्य एवं लज्जा भी सभी स्त्रियों के लिए समान नहीं हैं। संवेदनात्मक स्तर पर भी हर तरह के समाज की स्त्रियों के सोच में भिन्नता है, जिससे उनके जीवन की समस्याएं भी अलग-अलग हैं।

चित्रा मुद्गल कामगार स्त्रियों से लंबे समय तक जुड़ी रही हैं। समाज-सेवा के लिए अपनी प्रतिबद्धता के कारण वे झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाली स्त्रियों के उत्पीड़न से भी अच्छी तरह परिचित हैं। ''... उस रात बाप की दरिंदगी की पराकाष्ठा ही हो गई। आवेश में कांपते हुए बाप ने मोरी की दीवार से टिका कपड़ा कूटने वाला धोक्का उठा लिया और उसे पूरी ताकत से मां के माथे पर दे मारा। मां का माथा फट गया। उसका खून से तर चेहरा और मूर्छा से मुंदती आंखें देख भय से कांपती कमला ने बाप की टांगें जकड़ लीं और दोबारा मां पर हाथ न उठाने की चिरौरी करने लगीं। किंतु पगलाए सांड-से उन्मादी बाप से उसे टांग से एक ओर उछाल दिया और औंधी अचेत मां की कमर पर एक लात हमक कर खोली से उड़नछू हो गया''।[1]

पर, यह दैहिक उत्पीड़न केवल निम्नवर्गीय स्त्रियों की जिंदगी की विडंबना नहीं है। मध्यवर्गीय स्त्रियां भी इससे वंचित नहीं हैं। केवल परिमाण का अंतर है। चित्रा मुद्गल स्त्रियों के कोमल मन को उनके कार्य-कलापों से जोड़कर देखती तो हैं, पर उनकी कहानियों में सामंती पुरुष द्वारा निर्मित स्त्री नियति की इस त्रासदी के विरुद्ध विरोध और प्रतिरोध के भी कठोर स्वर हैं—''विच्छेद के कागजात मेरा वकील भेज रहा है। जो स्थिति है उसके सच को स्वीकार कर लेना ही दोनों के लिए बचा-खुचा विकल्प है। अलग होने के लिए मैं तुम पर कोई कारण नहीं थोप रही। बस मैं अलग होना चाहती हूं। शायद उसे बाप का नाम देना जरूरी होता। या शायद मेरा सोचना भी गलत हो। शायद तब भी यही करती खैर...'।[2]

पर, यह प्रतिरोध चित्रा मुद्गल की कहानियों में स्त्री-जीवन की त्रासदी या विडंबना को खत्म नहीं कर देता। यह तो सिर्फ एक पड़ाव मात्र है—''कहां-कहां से भागेगी? गोयल के लिए नौकरी छोड़ दे? लौट जाए? भैया के लिए करती रहे? द्विवेदी! द्विवेदी तो हर दफ्तर के केबिन में मौजूद हो सकता है। लड़ाई खुद की है, फिर कोई अंत है...? कोई अंत नहीं...! उसके हिस्से में नहीं तो जूझने की चुनौती क्यों न स्वीकारे? मोहरों-सी क्यों इस्तेमाल हो? त्यागपत्र निकाल कर उसने चिंदी-चिंदी कर डाला।''[3]

नाओमी वुल्फ कहती हैं—''ज्यों-ज्यों स्त्री सत्ता के नजदीक आती है, उतनी ही फिजिकल आत्म सजगता और बलिदान की उससे मांग की जाती है। सौंदर्य औरत के आगे जाने का शर्त बन जाता है।''[4]

''आई मीन, तुम गेस्ट्स को एंटरटेन करना पसंद करोगी थिंक ओवर दिस आज की मॉड लड़कियां इसे बेजा नहीं समझतीं, यू नो बेटर... अरेबियन गेस्ट्स आर वेरी रिच... फॉर कंपनी सेक... वे मनचाहा पे करते हैं... बट, शर्त यह है कि किसी को भनक नहीं लगनी चाहिए, न मैं लगने देता हूं।''[5] पति के शोषण से मुक्ति की इच्छा रख कर तलाक के लिए प्रतिबद्ध स्त्री को बाजारवाद और भूमंडलीकरण ने अग्रगामी और जनतांत्रिक स्पेस तो दिया, पर स्त्री को एक वस्तु में तब्दील कर दिया।

सिमोन द बोउवार के अनुसार, ''स्त्री स्वाधीनता का अर्थ हुआ कि स्त्री पुरुष से जिस पारंपरिक संबंध को निभा रही है, उससे मुक्त हो... उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होगा और वह पुरुष की होकर भी जिएगी। दोनों अपनी-अपनी स्वायत्तता में दूसरे का अनन्य रूप भी देखेंगे। संबंधों की पारस्परिकता और अन्योन्याश्रियता से चाह, अधिकार, प्रेम और आमोद-प्रमोद के अर्थ समाप्त नहीं हो जाएंगे और नहीं समाप्त होंगे दो संवर्गों के बीच के शब्द देना, प्राप्त करना, मिलन होना बल्कि दासत्व जब समाप्त होगा और वह भी आधी मानवता का, तब व्यवस्था का यह सारा ढोंग समाप्त हो जाएगा।''[6] पर चित्रा मुद्गल की कहानियों की स्त्री अपनी मुक्ति की प्रश्नाकुलताओं और अपने भीतर के उफान के बावजूद अपने संस्कारों को छोड़ नहीं पाती। उसके भीतर के प्रश्नों का संवेग उसके अन्तर्मन के हर कोने में यथार्थ की स्वीकृति के साथ पछाड़ें खाता है—''आदमी और जगह बदल लेने से जिंदगी थोड़े ही बदल जाती है...।''[7]

जर्मेन गीयर की पुस्तक 'द फीमेल यूनक' ग्रेट ब्रिटेन में 1970 में प्रकाशित हुई, जिसका दूसरा संस्करण 1991 में निकला। हिंदी में इसका पहला संस्करण 2001 में 'बधिया स्त्री' के नाम से प्रकाशित हुआ। जर्मेन ग्रीयर ने अपनी इस पुस्तक में इब्सन-के-डॉल हाउस एकट 111 के नोरा-हैल्मर संवाद के माध्यम से स्त्री अस्मिता के संबंध में जो कहा है, वह द्रष्टव्य है—''नोरा ने हैल्मर से पूछा—तुम क्या मानते हो, मेरा सबसे पवित्र कर्त्तव्य क्या है? और जब उसने कहा—'अपने पति और बच्चों के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य' तो वह असहमत हुई और बोली—'मेरा एक और कर्त्तव्य है, उतना ही पवित्र, अपने प्रति मेरा कर्त्तव्य... मैं मानती हूं कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूं... उतनी ही जितने कि तुम हो या हर सूरत में मैं वह बनने की कोशिश तो करूंगी ही।''[8]

''सबसे पहले मैं मनुष्य हूं''—वाक्य-विश्लेषण के कई आयाम हैं। यह भी सच है कि मनुष्य होने के भावों के साथ उसके संवेग, विकार, आशाएं, आकांक्षाएं, सीमाएं, संवेदनाएं, मूल्य, उदात्तता, क्षुद्रता, जिजीविषा आदि सभी जुड़े हैं। स्त्री-विमर्श का यह एक जटिल विषय है। चित्रा मुद्गल की कहानियों की स्त्री 'भारतीयता' के बीच 'मनुष्य' होने की जद्दोजहद में व्याकुल दिखती हैं—''घर कैसा घर? गेंदा की बलि के बिना पर जीवनदान प्राप्त करता घर? चंदू के कुकृत्यों की चिनाई से मजबूत होती उस घर की दीवारें! छिः! छिः! उस घर में वह सांस ले सकेगी? स्त्री होकर स्त्री के दुर्भाग्य में साझीदार हो सकेगी? चंदू बेरोजगार था। वह बेरोजगारी बरसों उसकी गृहस्थी की रीढ़ में पैने दांत गड़ाए उसके धैर्य को चुनौती देती रही थी। तब साहस नहीं तजा, अब क्यों कमजोर हो रही है?[9] एक ओर पति की स्त्री-देह व्यापार में लिप्तता से उत्पन्न घृणा युक्त आवेग और दूसरी ओर अभावग्रस्त गृहस्थिन के यह सोच कि ''चंदू का क्या दोष? धंधा फिर धंधा है, चमड़े का हो या चमड़ी का!''[10] ''और एक गेंदा के पीछे पांच जिंदगियां नष्ट हो जाएंगी, पांच—वह, चंदू, शिब्बू, दीनू, गुड्डू... सब...''।[11] स्त्री द्वंद्व के जिस नाटकीय परिवेश की सृष्टि करता है, उसमें भी स्त्री के 'मनुष्य' होने के भावों के साथ 'भारतीयता' कहीं न कहीं यूटोपियाई संसार की रचना करना चाहती है और स्त्री भागती है 'दलित स्त्री उद्धार समिति' की संचालिका पटवर्धन ताई की ओर। उसके पांवों में जड़ता अवश्य आती है, जब उसकी बेटी शिब्बू के नन्हें हाथ उसके 'मनुष्य-भावों' के संसार में भावनात्मक अवरोध उत्पन्न करते हैं, लेकिन

मनुष्य होने का बोध उसे पटवर्धन ताई की ओर सरपट भागने के लिए विवश कर देता है। स्त्री का यह डर कि कहीं अपनी गृहस्थी का मोह उसके मनुष्य होने के पवित्र कर्त्तव्य को नष्ट न कर दे, स्त्री-विमर्श का अहम पहलू है, जिसे चित्रा मुद्गल की कहानी 'सौदा' में देखा जा सकता है।

जर्मेन ग्रीयर कहती हैं—''स्त्री शक्ति का अर्थ है—स्त्रियों का आत्म निर्णय और इसका अर्थ है कि पितृसत्तावादी समाज का कूड़ा-कबाड़ा बुहार कर बाहर फेंकना होगा। स्त्री के पास एक ऐसी नैतिकता जो उसे उत्कृटता के अयोग्य न ठहराए और एक ऐसा मनोविज्ञान जो उसे आध्यात्मिक अपाहिज न करार दें, गढ़ने के लिए गुंजाइश चाहिए।''[12] चित्रा मुद्गल की कहानियां इसी 'गुंजाइश' का संकेत देती हैं—''हां, हां हमा पक्का प्रबंध चही... पुनिया हमरी भांति जाहिल-काहिल रही, आज हम चार अक्षर पढ़ी-लिखी होतिन तौ कोहू के आसरे चौका-बासन निबटावति पड़ी रही होतिन? हमार जिनगी कढ़िलत-घसिटत बीत गई। हमार भाग्य... मगर हम अपनी बिटिया क पढ़ैबै, वहिका अपने बाप की नाईं डाकदरी पढ़ैक है... पुनिया डागदर बनी इहां संभव न होई तो हम वोहिका अपनी बहिनी के घर इलाहाबाद म राखि के पढ़ैबै। हमार अलगा-अलगी कर दियो, लंबरदार हमरे हाथ चार पड्स होई तो हम पाई-पाई के मोहताज तो न होइबे कोहू के।''[13] पितृसत्तात्मक समाज में सामंती मानसिकता वाले पुरुष लकड़बग्घा की तरह हैं, जो पछांहवाली जैसी स्त्री के 'मैं' के भाव को सहन नहीं कर सकते और उसका अस्तित्व ही खत्म कर देते हैं। लेकिन प्रतिबद्धता और नैतिकता उस गुंजाइश की संभावना के लिए जगह अवश्य बना सकती है, जिसकी चर्चा जर्मेन ग्रीयर करती हैं।

स्त्री-विमर्श में यह भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि स्त्रियां पुरुषों से मुक्ति चाहती हैं या सामंतवादी प्रवृत्तियों से? समलैंगिकता को कानूनी मान्यता मिलने पर भी इसकी व्यावहारिकता कितनी सशक्त है, इसे समझने की आवश्यकता है। यह भी सत्य है कि सामंतवाद से मुक्ति की वैचारिकी में सभी पुरुष नहीं आते। अमेरिका में विश्व सुंदरी प्रतियोगिता के दौरान 'ब्रा बर्निंग' की घटना और सिमाने द बउवार एवं अन्य स्त्रीवादियों द्वारा 'गर्भ से मुक्ति' के अधिकारों की मांग वर्जना विहीन जीवन के चुनाव में स्त्रियों की भूमिका को केंद्रीय बनाने संबंधी जिस प्रयास का संकेत देता है, वह संचार क्रांति द्वारा स्त्री-देह को व्यावसायिक जरूरत बनाने का एक षड्यंत्र मात्र है। ग्लैमर, फैशन शो, मॉडलिंग आदि के मार्ग का 'गर्भाधान' अवरोधक है, क्योंकि वहां स्त्रियों के जिस 'जीरो साइज' की जरूरत पड़ती है, उसमें 'गर्भाधान' से समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसलिए इस तरह के मानवाधिकारों की मांगों की वकालत पश्चिमी व्यावसायिक सभ्यता के लिए एक आवश्यकता बन चुकी है। पर, भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों को देखा जाए तो यहां यौनिक स्वतंत्रता, ब्रा बर्निंग की मानसिकता और गर्भ से मुक्ति जैसी चर्चा गहरे अर्थ में एक नई गुलामी के लिए नव औपनिवेशिकता की ही शुरुआत होगी।

चित्रा मुद्गल स्त्रियों की यौनिक स्वतंत्रता को स्त्री-मुक्ति का पहला पड़ाव नहीं मानतीं, पर देह-शोषण के लिए उनका विरोधी तेवर उनकी कहानियों में हर जगह लक्षित किया जा सकता है। भारत की स्त्रियों के लिए बांझपन नहीं, गर्भधारण और मातृत्व-भाव उनके स्त्रीत्व की उपलब्धि है। पर, विमर्श का विषय यह है कि बयालीस वर्षीया, नानी और दादी बन चुकी स्त्री को गर्भधारण का अधिकार है या नहीं? इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि भारतीय समाज सूचना क्रांति, उत्तर आधुनिकता और भूमंडलीकरण के इस दौर में भी कई परतों में विभक्त है और हर परतों की प्रश्नाकुलताएं और विवशताएं अलग हैं। मध्यवर्गीय मानसिकता आज भी यौनिक खुलेपन को बर्दाश्त नहीं कर पाती। नानी और दादी बनी स्त्री का 'मैं-बोध' भी इस मानसिकता को चुनौती देने में झिझक महसूस करता है। यदि साहस करके ऐसी चुनौती कोई दे भी दे—''अरे, वहि दहिजार कैर हिम्मत कैसे परी रे... बेटवा-बेटार तो सब भगवान का परसाद होत हैं। नहीं तो मनई तरसि जाता है, देवी-देवता मनावत है, कथा-भागवत सुनत है, टोना-टोटका करावत है। तौनेऊ पै औलाद नहीं नसीब होती और फिर, अबै तो जिया बैठी हैं छांह धरे... हमरे तीज-त्यौहार धरे वाली। पैदा करि रहन हैं, तो का इन लठलुमड़न कै भरोसे जिनका अपनी मेहरिया कै चूतड़ चाटै से फुरसत नहीं मिलती।''[14] तो हार अंततः उस स्त्री के उस 'मैं' की ही होती है—''अम्मा पुष्पा जिज्जी के घर गई हुई हैं। तीसरा महीना चल रहा है। कह रही थीं कि वहां किसी नर्सिंग होम में जाकर सफाई करवा लेंगी। यह भी कह रही थीं कि उस समय छोटू की सलाह उन्हें इसलिए नागवार गुजरी थी कि तब वे जिया के रहते कभी अपने को बुढ़ा गया महसूस ही नहीं करती थीं। और अब... अब! जवान-जहील बच्चों के सामने डुमका फुलाए घूमना बड़ा भद्दा लगेगा।''[15]

स्त्री-विमर्श में महादेवी वर्मा के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके अनुसार ''अर्थ सदा से शक्ति का अंध-अनुगामी रहा है।''[16] ''दीर्घकाल का दासत्व जैसे जीवन की स्फूर्तिमयी स्वच्छंदता नष्ट करके उसे बोझिल बना देता है, निरंतर आर्थिक परवशता भी जीवन में उसी प्रकार प्रेरणा-शून्यता उत्पन्न कर देती है। किसी भी सामाजिक प्राणी के लिए ऐसी स्थिति अभिशाप है जिसमें वह स्वावलंबन का भाव भूलने लगे, क्योंकि इसके अभाव में वह अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता।''[17] आगे महादेवी वर्मा कहती हैं—''अर्थ का विषम विभाजन भी एक ऐसा ही बंधन है, जो स्त्री-पुरुषों दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है।''[18] स्त्री-विमर्श के संदर्भ में अर्थ-वैषम्य

से उत्पन्न कठिनाइयों और विसंगतियों को चित्रा मुद्‌गल की कहानी 'लिफाफा' में देखा जा सकता है—''कुछ कहने से कोई फायदा नहीं। जब से नौकरी पाई है, जबान बेलगाम हो गई है। पलटकर बेइज्जती करने पर उतर आती है—वह बड़ा है यह लिहाज छोड़-छाड़। पहले मां सुनती तो बीच-बचाव करते हुए उसे डपट देती थी कि बड़े के मुंह मत लगा कर। लेकिन अब पासे बदल गए। उलाहना देने पर उलटा मां उसे ही गम खाने की पट्टी पढ़ाने लगतीं।''[19]

बेरोजगारी पुरुष को कुंठा, घुटन और तनाव ही नहीं देती, बल्कि उसके भीतर के ईर्ष्या और द्वेष भाव को भी प्रबल बनाती है। अर्थ संपन्न बहन या पत्नी उसकी आंखों की किरकिरी बन जाती है। इससे दूसरे संबंधों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है—''अनु के पेंसिल हील के सैंडिलों की टिक-टिक दरवाजे की ओर बढ़ रही। लॉक पूरा घूमता भी नहीं कि मां की चेतावनी उछलती है—'संभल के जाना' जैसे वह दूध पीती बच्ची हो। अपनी हिफाजत स्वयं पाने में असमर्थ। इधर वह लगातार महसूस कर रहा है कि जब से अनु को ओबराय में रिशेप्सनिस्ट की आकर्षक नौकरी मिली है, मां की खैरख्वाही उसके लिए कुछ ज्यादा ही चिंतित हो उठी है। उसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता कि ऐसे निरर्थक बोझिल दिनों में उसे उनके ममत्व की कितनी जरूरत है। विचित्र समझ है मां की। अघाए पेट को रोटी खिला रही, जबकि जरूरत उसकी कल्लाती आंतों को वाजिब खुराक देने की है।''[20]

जर्मेन ग्रीयर कहती हैं—''प्रतिक्रिया क्रांति नहीं है। दमितों का दमनकारियों के हाव-भाव अपना लेना और अपने लिए दमन का अभ्यास करना क्रांति का संकेत नहीं है। स्त्रियों का पुरुषों की और पुरुषों का स्त्रियों की नकल करना या समलैंगिकता-विरोधी कानूनों में ढील दिए जाना या विशेष प्रकार के वस्त्रों या व्यवहारों के गहन लैंगिक निहितार्थों का गायब हो जाना भी क्रांति नहीं है।''[21] जर्मेन ग्रीयर सिमोन न बउवार के इस विचार कि स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है` सहमत दिखती हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में क्रांति लोगों के मन-मस्तिष्क में स्त्री-पुरुष के प्रति बनी हुई अवधारणाओं को तोड़ने में है। इस दृष्टि से चित्रा मुद्‌गल की कहानियों के नारी पात्र क्रांति के मार्ग की ओर अग्रसर दिखाई देते हैं। सिमोन द बोउवार विवाह संस्था को पूरी तरह नकारने की बात करती हैं। जर्मेन ग्रीयर भी कहती हैं—''अगर स्वाधीनता स्वतंत्रता की आवश्यक सहगामी है तो स्त्रियों को विवाह नहीं करना चाहिए।''[22]

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कन्नड़ के यशस्वी साहित्यकार यू.आर. अनंतमूर्ति की मान्यता है कि स्त्रीवादी आलोचकों ने क्रांति लाने की उमंग और अति-भावुकता में 'संस्कार' को ठीक से नहीं पहचाना। सामान्यतः भारतीय स्त्रियों के संस्कार उनके अपने 'स्त्रीत्व-भाव' से जुड़े हैं, जिनसे वे पूर्ण मुक्ति नहीं चाहतीं जिससे गर्भनिरोधक और गर्भपात उनके लिए वे महत्त्व नहीं रखते, जो फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन या अमेरिका की स्त्रियों के लिए रखते हैं। यौनिक स्वतंत्रता के लिए यदि उन्हें अधिकार भी मिल जाए, तो भी वे अपने संस्कार से पूरी तरह मुक्ति नहीं पा सकतीं। चित्रा मुद्‌गल की कहानियों की अधिकांश स्त्रियां भी अपने स्त्रीत्व के बंधन में इसी तरह जकड़ी दिखाई पड़ती हैं—कैसे मना करती पति इच्छा को जो अपनी इच्छा बना लिया था! सतीत्व का धर्म, उसका धर्म। सो मन-ही-मन प्रभु को पुकारा। ऐसा चक्कर चलाओ प्रभु कि पति की इच्छा भी पूरी हो जाए और सतीत्व का सत भी न टूटे।''[23] ''आई स्वेर... कुछ नहीं किया उन्होंने। कुछ करना भी चाहते तो मैं इतनी गिरी हुई नहीं कि उन्हें करने देतीं।''[24]

पूंजी और बाजार का उद्देश्य लाभ कमाना है। अर्थ संबंध की धुरी को बदलना इनका मकसद नहीं है। इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि आर्थिक समीकरण पुरुषों के पक्ष में है। संपत्ति का स्वामी भी पुरुष है, तो पितृसत्तात्मक समाज मजबूत ही होगा। भूमंडलीकरण ने स्त्री सशक्तीकरण के लिए स्पेस तो दिया, लेकिन पुरुषों की वही पारंपरिक मानसिकता रही। उत्पादन से जुड़ी मध्यवर्गीय स्त्रियों के लिए पुरुषों की शंकालु मनोवृत्ति भी पूर्ववत बनी है। स्त्रियों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करना भी जैसे उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। चित्रा मुद्‌गल भारतीय मध्यवर्गीय समाज की इस कुंठित मानसिकता की गहराई को अच्छी तरह समझती हैं—''पुरुष की पदोन्नति हो तो वह उसकी लगन और मेहनत का परिणाम है। स्त्री अगर अपनी लगन और मेहनत से उन्नति करे तो वह उसकी अपनी प्रतिभा नहीं, किसी कोठारी की अनुकंपा है... और बीच में शरीर आए बिना यह संभव नहीं!''[25] चित्रा मुद्‌गल इसे भी अच्छी तरह जानती हैं कि स्त्री-स्वतंत्रता और उसके स्वावलंबन के स्वीकार के बिना स्त्री-मुक्ति संभव नहीं इसलिए स्त्री की इसके लिए प्रतिबद्धता भी आवश्यक है—''न नौकरी मैंने तुमसे पूछ कर की थी, न तुम्हारे कहने पर छोड़ूंगी''.... ''सोचना मुझे नहीं है सुभाष, सोचना तुम्हें है... मानसिक तौर पर रुग्ण तुम हो, मैं नहीं। कान खोल कर सुन लो, तुम्हारी कुंठाओं द्वारा रचा हुआ सत्य मेरी नियति नहीं बन सकता।''[26]

महादेवी वर्मा कहती हैं—''आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री केवल उन्हीं आदर्शों से संतोष कर लेगी जिनके सारे रंग उसके आंसुओं से धुल चुके हैं, जिनकी सारी शीतलता उसके संताप से उष्ण हो चुकी है। समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थ संबंधी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या संशोधन को आवश्यक न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आंधी जैसा वेग पकड़ता जाएगा और तब एक निरंतर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ और न पा

सकेगा। ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है, न समाज के लिए सृजनात्मक।''[27] चित्रा मुद्‌गल अपनी कहानियों में पुरुष की सामंती मानसिकता के विरुद्ध हर जगह विरोधी या विद्रोही स्वर लिए खड़ी दिखाई पड़ती हैं। वे स्त्री मुक्ति को राष्ट्र की प्रगति के साथ जोड़ कर देखती हैं। अपनी कहानी 'प्रेतयोनि' में वे आधुनिकता के मुखौटे में छिपी सामंती और रूढ़िवादी मानसिकता के लिजलिजेपन को सामने लाती हैं—

''आथ आई को मर्द छोड़ता है कहीं?''

''हाथ आती तब न! तुमसे झूठ बोला है कभी?''

''बोला हो न बोला हो... काढ़ा पीने में हर्ज? उबाली जड़ी-बूटियां भर ही तो हैं।''

''हर्ज है... इसका मतलब है, तुम मुझ पर विश्वास नहीं कर रहीं।''

''ठीक है, नहीं कर रही... तू काढ़ा पी चुपचाप...।''[28]

चित्रा मुद्‌गल की स्त्री शक्ति है, प्रेरणा है, वह यौनिक स्वतंत्रता के लिए नहीं लड़ती। अपनी देह को बाजार के लिए वह तैयार नहीं करती, लेकिन सच और हक के लिए वह समाज के समक्ष तनी खड़ी रहती है, जिसकी शुरुआत उसके परिवार से होती है—''अनिश्चय के गर्भ में अंकुआता एक निश्चय अपना कद ग्रहण करने लगा—वह एक से लड़ सकती है—पांच से क्यों नहीं लड़ सकती? अब वह अकेली भी तो नहीं।''[29]

चित्रा मुद्‌गल इस सत्य से परिचित हैं कि स्त्री-मुक्ति का पर्याय बनाने की मानसिकता पूंजी, बाजार और तकनीकी की दुनिया में स्त्री-देह को व्यावसायिक संसाधन में परिणत करने का नया प्रपंच है। इसलिए उनकी कहानियों की स्त्रियों में इसके लिए न तो प्रतिबद्धता दिखती है और न विशेषाग्रह दिखाई पड़ता है। पश्चिमीकरण की अंधी दौड़ में हमें इस सत्य को समझना होगा कि इस दौर की प्रसिद्ध स्त्रीवादी नाओमी वुल्फ की 'पावर वुमेन' 'पावर फेमिनिज्म' के तय लक्ष्यों को प्राप्त करने में कितना सफल हो सकती हैं। उच्च पदस्थ स्त्रियों की योग्यता-अयोग्यता तथा उनके यौन-शोषण के प्रश्न पर पावर फेमिनिज्म पर प्रश्नचिह्न ही लगाते हैं। बाजार ने भले ही आज यौनिकता को पदोन्नति और स्त्री-प्रगति से जोड़ दिया है, लेकिन चित्रा मुद्‌गल अपनी कहानियों में इस यथार्थ की उपेक्षा नहीं करतीं कि ऐसी स्त्रियों की परिणति काफी भयावह होती है।

संदर्भ सूची–

1. त्रिशंकु, पृ. 75-75 (आदि-अनादि, खंड-1)
2. बावजूद इसके, पृ. 116 (आदि-अनादि, खंड-1)
3. वही, पृ. 126
4. हंस, मार्च 2001, पृ. 101
5. बावजूद इसके, पृ. 121
6. स्त्री उपेक्षिता—सीमोन द बोउवार, अनुवादक—प्रभा खेतान, पृ. 306
7. इस हमाम में, पृ. 60 (आदि-अनादि, खंड-2)
8. बधिया स्त्री—जर्मेन ग्रीयर (अनुवादक—मधु बी. जोशी), पृ. 20
9. सौदा, पृ. 238 (आदि-अनादि, खंड-2)
10. वही, पृ. 236
11. वही, पृ. 237
12. बधिया स्त्री, पृ. 106
13. लकड़बग्घा, पृ. 32 (आदि-अनादि, खंड-3)
14. दुलहिन, पृ. 34 (आदि-अनादि, खंड-1)
15. वहीं, पृ. 40
16. स्त्री के अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न, शृंखला की कड़ियों से।
17. वही
18. वही
19. लिफाफा, पृ. 23 (आदि-अनादि, खंड-2)
20. वही, पृ. 23
21. बधिया स्त्री, पृ. 285
22. बधिया स्त्री, पृ. 290
23. वाइप स्वैपी, पृ. 18 (आदि-अनादि, खंड-2)
24. वही, पृ. 19
25. प्रमोशन, पृ. 263 (आदि-अनादि, खंड-2)
26. वही, पृ. 264
27. स्त्री के अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न, शृंखला की कड़ियों से
28. प्रेतयोनि, पृ. 108 (आदि-अनादि, खंड-3)
29. वही, पृ. 110

ए-1/115, प्रथम मंजिल, न्यू कोंडली, मयूर विहार, फेज-3, दिल्ली-110096

जन जीवन की झांकी - पटना चित्रकला

डॉ. दिनेश चंद्र अग्रवाल

किसी युगीन समाज के जनजीवन का अक्स उसकी सृजित कला में उतर आता है। उस समाज का इतिहास प्रामाणिक नहीं हो सकता जिसने उसकी अपनी कला की आवाज को अनसुना कर दिया। भारत के बिहार राज्य के अति महत्त्वपूर्ण केन्द्र पटना में अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक के सौ वर्षों के कालांश में विकसित पटना चित्रकलम और वहां निर्मित अनेक चित्र अपने भीतर तत्कालीन समाज की छवि को संजो कर रखे हैं। न जाने क्यों कला समीक्षकों की नजरों ने सौ बरस की उम्र वाली इस चित्रकलम के वजूद को अनदेखा सा कर दिया। जबकि अन्य कलमों की भांति इसमें भी शोध तथा नए मूल्य स्थापित करने के लिए बहुत सामग्री बिखरी पड़ी है। आखिर क्या गाथा है इस चित्रधारा की।

औरंगजेब के समय में दिल्ली दरबार में एक घटना हुई। अनेक हुनरमंदों, मुसब्बरों व अन्य कलाकारों के रहनुमा शाही मुगल दरबार के बादशाह औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता व कलाओं के प्रति बेरूखी के कारण न केवल लाल किला वरन् पूरी दिल्ली में कलाकारों की दुनिया में मानो जलजला आ गया था। सबसे ज्यादा खौफ जदा थे हिंदू चित्रकार जो दिल्ली छोड़कर भाग रहे थे। बादशाह की नाराजगी व नफरत झेलने की कूवत नहीं थी किसी में। अपनी गुजर-बसर की तलाश में निकले कई चितेरे पहाड़ी रियासतों, लखनऊ, वाराणसी व अन्य दूरस्थ रियासतों में पहुंचे थे और

टोकरी बुनते हुए ग्रामीण दंपत्ति

कुछ चितेरों को पश्चिमी बंगाल के अत्यंत समृद्ध व महत्त्वपूर्ण केन्द्र मुर्शिदाबाद के नवाबी दरबार में आसरा मिल गया। उन दिनों मुर्शिदाबाद पूर्वी भारत का मुख्य व्यापारिक व राजसी केन्द्र था किंतु वहां पहले से कला का कोई केन्द्र नहीं था। वहां के नवाबी महल में दीवारों पर भित्तिचित्र इन शरणार्थी चितेरों ने ही बनाए थे। वहां लगभग चालीस वर्षों तक ये चितेरे रहे और जी तोड़ मेहनत कर चित्र बनाते रहे।

बुरा वक्त अभी चल ही रहा था। कमजोर मुगल बादशाहों के हाथों से हुकूमती बागडोर संभाले नहीं संभल रही थी। क्रूर नादिरशाह

द्वारा ढाये गए जुर्म, कत्लेआम व लूटपाट से दिल्ली लुट-पिट कर बेरौनक हो चुकी थी। बादशाहों की बादशाहत दिल्ली की चाहरदीवारी के भीतर ही सिमटकर रह गई थी। लाल किले में बचे खुचे सभी चितेरों को दफा कर दिया गया था। चित्रकार बे-आसरा होकर इधर-उधर दूरदराज जगहों पर रोजी रोटी की तलाश में निकल पड़े, जिनमें से कुछ मुर्शिदाबाद भी पहुंचे थे। वहां के नवाब की इन पर मेहरबानी हो गई, जिससे इनकी तूलिका फिर से चल निकली। उन दिनों पूर्वी हिंदुस्तान में मुर्शिदाबाद और कलकत्ता के बाद 'पटना' अधिक महत्त्वपूर्ण शहर बन गया था। 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध में यह शहर समृद्धि, वैभव व सुरक्षा के दृष्टिकोण से अंग्रेजी कंपनी का आकर्षण केन्द्र बन गया था। इस सदी में मुर्शिदाबाद की शानो-शौकत को अंग्रेज वाइसराय लार्ड क्लाइव द्वारा लंदन के समान बताया गया था।

दिल्ली में उथल-पुथल थमी नहीं थी और वक्त की शतरंज पर मोहरें चालाकी से अपनी चाल बदल रहे थे। तिजारत करने हिंदुस्तान में पहुंची ईस्ट इंडिया कंपनी पेशेवर सैन्य कंपनी का रूप ले चुकी थी जिसके फलस्वरूप कंपनी को मुगल बादशाह शाहआलम द्वारा बंगाल, बिहार, उड़ीसा की रियासत-ए-दीवानी (स्टेट रिवेन्यू कंट्रोलरशिप) भी कंपनी को सौंप दी गई थी, बस फिर क्या था। हिंदुस्तान की बदकिस्मती की इबारत उभरने लगी। अपनी करामाती कलाबाजियों से इस तिजारती कंपनी ने मुर्शिदाबाद के नवाब सिराजुद्दौला वे उसके बाद के वारिस नवाबों के हाथों से रियासत की हुकूमत ही हथिया ली। मुर्शिदाबाद को तो मानो किसी की बुरी नजर लग गई थी। लगभग (1750-1760) के बीच रियासत के हालात खराब होने लगे थे, लोगों में बेचैनी और उथल-पुथल शुरू हो गई थी। इस कंपनी की आड़ में धीरे-धीरे अंग्रेजी सत्ता ने हिंदुस्तान के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में अपनी जड़ें जमा ली थी।

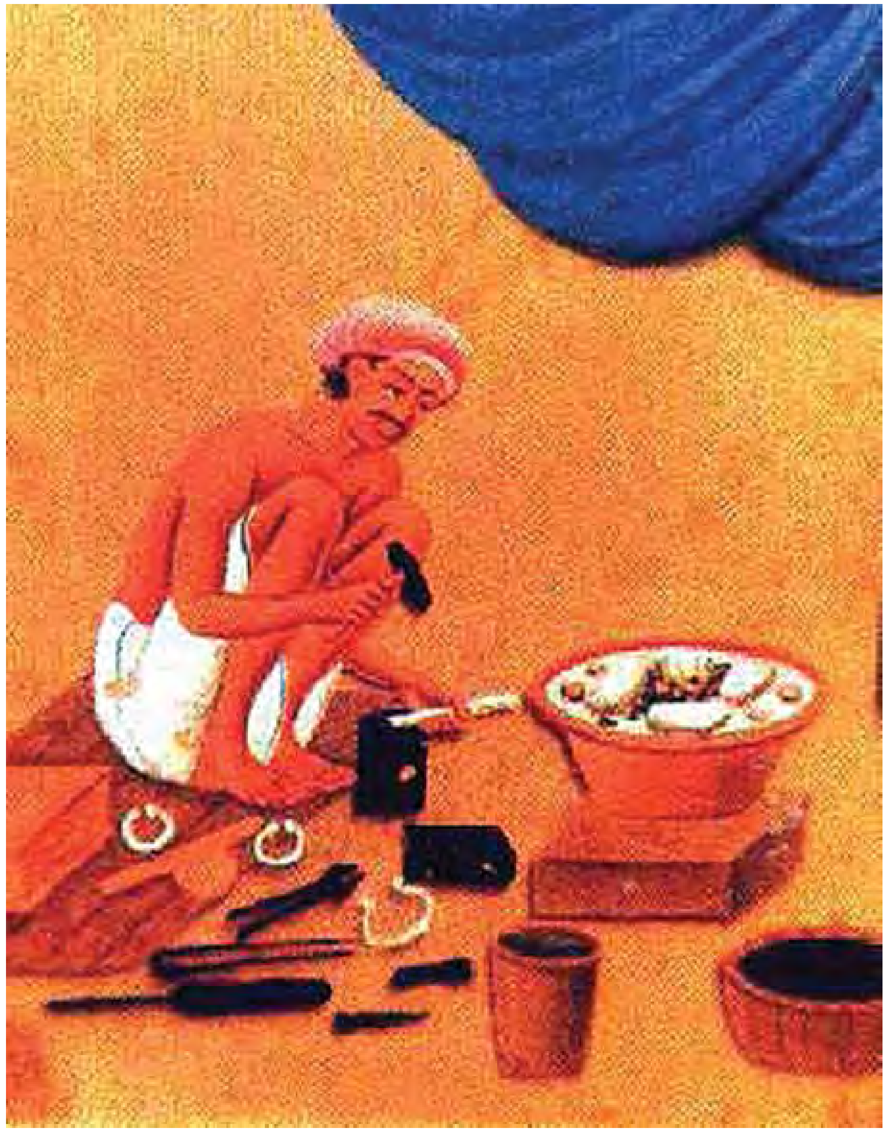

लोहे का कार्य करते हुए लोहार

मुर्शिदाबाद में शरणार्थी चितेरे मुगल चित्रकला की तर्ज पर कार्य कर रहे थे। मुर्शिदाबाद में भगीरथी नदी के किनारे बालूचक गांव में चितेरे बस गए थे और ढेरों सुंदर चित्रों की रचना करने लगे। इनमें मुगल चित्रकलम के सिद्धहस्त मुसव्वर नोहर व मनोहर के अतिरिक्त धनीराम व उसके वंशज कुछ परिवर्तित तत्वों को अपना कर चित्रण करते रहे। वर्ष 1757 में नवाब मीरजाफर का पुत्र मिरान मुहम्मद खान बड़ी बेरहमी से राजस्व वसूल करने लग था। मुसव्वरों से भी जबरन वसूली कही जाती थी जिससे इनका बाजार बर्बादी के कगार पर पहुंच गया। अतएव भूख और खौंफ से त्रस्त होकर ये चितेरे मुर्शिदाबाद से पटना आ गए। पटना शहर के लोदी कटरा चौक, दीवान मुहल्ला, मच्छर हट्टा व मुगल पुरा में बस गए। पटना में इससे पूर्व ही दिल्ली से विस्थापित हिंदू चितेरे कार्य कर रहे थे।

दिल्ली से विस्थापित कलाकार कागज, हाथी दांत, अभ्रक और कांच पर स्वनिर्मित रंगों व अन्य कला सामग्री से परंपरागत लघु चित्रों में मुगल चित्रण की तर्ज पर कार्य करते थे किंतु इसके कला-तत्वों में गिरावट के लक्षण नजर आने लगे थे। इस चित्रण कलम

लकड़ी का कार्य करते हुए बढ़ई

में रेखांकन, रंग, मानव आकृति रचना, प्रकृति चित्रण, रूप विन्यास, भवन-आकृति आदि विविध तत्वों पर मुगलिया चित्र कलम की ही मुहर लगी होती थी जिनमें ईरानी व हिंदुस्तानी तर्ज की अनोखी जुगलबंदी रमी रहती थी। बादशाह शाहजहां के राज्य काल में विकसित 'स्याह-कलम' चित्रण की तर्ज पर भी कोई चित्रकार पटना में कार्य कर रहे थे जिसमें अंकित आकृत की खुलाई (फिनिशिंग आऊटलाइनिंग-सीमान्त रेखांकन) काली स्याही से किया जाता था।

चित्रण में इस्तेमाल की जाने वाली सारी सामग्री परंपरात्मक तकनीकी विधि से मुसव्वरों द्वारा ही तैयार की जाती थी। ये चितेरे फटे-पुराने कपड़े तथा सूत से अपना कागज तैयार करते थे जिसे 'तुल्क' कहा जाता था। इसके अलावा नेपाल में पैदा होने वाले जूट और बांस की कोंपल से तैयार किए कागज को 'बंसा' कहा जाता था। बाद में इंग्लैंड से आए ड्राइंग पेपर का इस्तेमाल होने लगा था।

देशी चित्रकारों की तूलिका (ब्रश, कूंची) भी उन्हीं के हाथों बनाई जाती थी। बहुत बारीकी वाले चित्रण के लिए गिलहरी की पूंछ के बालों का इस्तेमाल किया जाता था। चौड़े काम के लिए बकरे की पूंछ या भैंस व सूअर की गर्दन के बालों को उबाल कर मुलायम ब्रश बनाया जाता था।

रंगों को तैयार करने में अत्याधिक परिश्रम, समय और धन भी लगता था और तैयार करने की बड़ी जटिल विधि होती थी। इसके बावजूद चित्रकार स्वयं ही यह सब सामग्री तैयार करते थे। आज की तरह रेडीमेड कोई सामग्री नहीं मिलती थी। सफेद रंग-खासगढ़ के पास की एक विशेष प्रकार की मिट्टी से तैयार किया जाता था। कौड़ी व मोती से भी सफेद रंग प्राप्त किया जाता था। काला रंग जले हुए हाथी दांत वे जलते दीपक के काजल से बनाया जाता था। गुलाबी रंग शैलाक से और सैरावन (पीला रंग) गोंद के पेड़ से रिसने वाले रेजिन से तैयार किया जाता था। खेतों से प्राप्त नील से नीला रंग और सानीज़राफ (एक तरह का लाल रंग) चीन से लाए 'पारा' खनिज से या सिनावर से बनाया जाता था। कानपुर में पाई जाने वाली लाल मिट्टी से गेरुआ रंग और मुत्रा के आसपास की पीली मिट्टी से अबरंग (हल्का ब्राउन) बनाया जाता था। हरा रंग गैम्बैंज और नील के मिश्रण से तैयार किया जाता था। लाजवर्त रंग लाजवंती खनिज पत्थर से मिलता था। सभी रंगों में अरबिक गोंद मिलाया जाता था अतएव रंगों की इस विधि को आजकल 'गम टैम्परा' भी कहा जाता है।

ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल के साथ-साथ बिहार सूबे का भी दीवानी हक हासिल हो गया था। तब पटना प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण अंग्रेजी प्रशासन तथा व्यापार का विशिष्ट केन्द्र बन गया था। अतएव अंग्रेजी सैन्य अधिकारी व प्रशासनिक हुक्मरान-कमिश्नर, मैजिस्ट्रेट, कलैक्टर, जज, बैरिस्टर, बटालियन कमांडर, अफीम के अंग्रेजी एजेंट, इंजीनियर, निर्यातक अधिकारी और कई हिंदुस्तानी जमींदार व अन्य समृद्ध व्यक्ति पटना में बस गए थे। इंग्लैंड से आए ये हुक्मरान अपने साथ वहां के चितेरों के बनाए चित्र और विविध प्रकार की कलाकृतियां व अन्य सामग्री लाते थे। इंग्लैंड में प्रचलित

लकड़ी की शहतीर को आरे से चीरते हुए श्रमिक

छपाई की तकनीक-लिथोग्राफी, एकुआटिंट व एन्ग्रेविंन से छपी हुई सस्ती तस्वीरें, कैनवास पर बनी ऑयल पेंटिंग्स तथ अन्य शिल्प सामग्री के अतिरिक्त चित्र बनाने की सामग्री जैसे—ड्राइंग कागज, रंग, ब्रश, पेंसिल, क्रेयॉन तथा अन्य वस्तुएं हिंदुस्तान में आने लगी थीं। पटना का कमिश्नर टेलर स्वयं एक अच्छा चित्रकार भी था। उसने और अन्य कला प्रेमी अंग्रेजी अधिकारियों के कारण मानव-आकृति चित्रण में वस्त्रों का यथार्थत्मक अंकन का प्रयास किया गया। कई सिद्धहस्त चित्रकार तो बिना स्केब ड्राइंग किए ही रंग से चित्रण शुरू करते थे। चित्रों के विषय में पशु-पक्षियों के चित्र, शबीह (पोर्ट्रेट), भूदृश्य तथा ईसाई धर्म से संबंधित संदर्भों को सम्मिलित किया गया। पटना के चित्रकारों ने हिंदुस्तानी, मुगल और यूरोपीय कलमों के कुछ तत्त्वों को आत्मसात् करके चित्रकला की एक मिश्रित कलम तैयार कर ली थी। अपनी मौलिक पहचान बना ली थी। इसका मुख्य केंद्र पटना था। अतएव इसे भारतीय चित्रकला के इतिहास में 'पटना चित्र कलम' के नाम से सम्मिलित किया गया।

कुछ विद्वानों द्वारा पटना चित्रकला पर आरंभिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। वर्ष 1908 में लंदन से प्रकाशित ई.बी. हैवल की पुस्तक 'इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग' और वर्ष 1926 में मुंबई से प्रकाशित एन.सी. मेहता की पुस्तक 'स्टडीज़ इन इंडियन पेंटिंग' में पटना चित्रकला का अध्ययन सम्मिलित किया गया। तत्पश्चात् पटना चित्रकला पर शोध कार्य करने का श्रेय पटना हाईकोर्ट के जज पी.सी. मानुक को जाता है। बिहार-ओडिशा रिसर्च सोसाइटी की शोध पुस्तिका में मानुक द्वारा वर्ष 1943 में लिखित शोध लेख 'पटना स्कूल ऑफ पेंटिंग' का वर्णन सम्मिलित किया गया।

पटना के भूतपूर्व जिला अधिकारी तथा पटना संग्रहालय की प्रबंध समिति के सदस्य डब्ल्यू. जी. आर्चर की पत्नी मिसेज मिल्द्रेद आर्चर ने वर्ष 1947 में अपनी पुस्तक 'पटना पेंटिंग' में इस कलम के 48 चित्रों के साथ विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जिसमें हुलासलाल, वाणीलाल, बिहारीलाल, जमनादास और बाल गोविंद चित्रकारों का जिक्र मिलता है।

लेखक को जानकारी मिली की वाराणसी से आए शिवलाल चित्रकार ने अपना स्टूडियो पटना में स्थापित किया था जिसमें लखनऊ, इलाहाबाद, मुर्शिदाबाद व वाराणसी से मुसव्विर आकर शामिल होते गए। शिवलाल को अभ्रक पर लघु चित्रकारी करने में निपुणता प्राप्त थी। उसको उन दिनों में पटना में तैनात सहायक अफीम इंचार्ज डी.आर. लॉयल से भी बहुत प्रोत्साहन मिला था। 1857 में सिपाही विद्रोह में लॉयल की हत्या होने के बाद अफीम एजेंट सर डब्ल्यू. एफ. डिओली ने भी शिवलाल को बहुत सहारा दिया था। शिवलाल की बहन दक्षोबुद्धि और शिवलाल की बेटी सोना कुमारी भी बहुत अच्छा चित्रण करती थीं। सोना कुमारी के पुत्र ईश्वर प्रसाद को स्वयं शिवलाल और वाणीलाल ने चित्रकला सिखाई थी। उस समय ईश्वर प्रसाद का नाम पटना के श्रेष्ठ चित्रकारों में लिया जाता था। वह बाद में आरा चला गया। शिवलाल का चचेरा भाई शिवदयाल हाथी-दांत पर मिनियेचर पोर्ट्रेट (शबीह) बनाने में माहिर था। वह कई वर्षों तक राय सुलतान बहादुर

मशक से पानी भरता हुआ भिश्ती

के आश्रय में कार्य करता रहा। ईश्वर प्रसाद बहुत सिद्धहस्त चित्रकार था।

इनके अतिरिक्त अन्य कुशल हस्त चित्रकार जयरामदास, झुमकलाल, फकीरचंद, टुन्नीलाल, गोपाललाल व उसका बड़ा भाई गुरु सहायलाल, वाणीलाल का चचेरा भाई बहादुरलाल, कन्होईलाल, जय गोविंदलाल और सेवकराम के कई महत्त्वपूर्ण चित्र बनाए थे।

फकीरचंद का बेटा शिवलाल और टुन्नीलाल को बेटा शिवदयाल—दोनों का चित्रकला में वर्चस्व रहा। एक अन्य चित्रकार महादेव लाल पटना के महाराजा रामनारायण के उत्तराधिकारी राय दुर्गाप्रसाद के संरक्षण में लंबे समय तक कार्य करता रहा। उसे बचपन में ही चित्रकार शिवदयाल लाल की विधवा विपान बीबी ने पटना चित्रकला सिखाई थी। महादेव ने पटना स्कूल ऑफ आर्ट के प्राचार्य राधामोहन को पटना कलम का प्रशिक्षण दिया था। अन्य कई चितेरे गुमनामी में ही रह गए अथवा लेखक की जानकारी में नहीं आ सके।

विद्वानों की मान्यता रही है कि कला समाज के जनजीवन का अक्स होती है। वहां की माटी से उपजी हुई कला में वहां की गंध रमी व रची होती है। पटना कलम इस मान्यता की सटीक मिसाल है। एक शताब्दी के सांस्कृतिक दस्तावेज हैं पटना के चित्र। इन चित्रों में चूड़ी बेचने वाला, मछली बेचने वाला, मिठाई वाला, पान वाला, ताड़ी बेचने वाला, कपड़ा बेचने वाला, बढ़ई, लोहार, पालकी ढोते कहार, जूते गांठने वाला, पानी से भरी मशक लिए भिश्ती, पतंग बेचने वाला, शिष्यों को पढ़ाता हुआ शिक्षक, सिपाही, सैनिक, राजदरबारी, सरकारी कर्मचारी, अंग्रेज सैनिक, बड़े साहब, रियासतदार, जागीरदार, हिंदुस्तानी सिपाही व सैनिक, सब्जी बेचने वाली, टोकरी बनाते दम्पत्ति, पनिहारिन, नौकरानी, झाड़ू लगाती हुई औरत, ओखल में अनाज डालती हुई ग्रामीण औरत, मंदिर जाती हुई औरतें, बैलगाड़ी, घोड़ा-तांगा व इक्का, पंखा व टोकरी बनाने वाली, अंग्रेजी मेम साहब, होली, दुर्गा पूजा व दीवाली उत्सवों पर शोभा यात्राएं व अन्य गतिविधियां, विविध पशु-पक्षियों के चित्र, उच्च वर्गीय लोगों के शबीह के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक दैनिक जीवन के अनेक विविध क्षणों को चित्रबद्ध किया गया।

नृत्य करती हुई महिला

कबूतर लिए हुए दो युवतियां

इस प्रकार के चित्रों को फिरका चित्र कहा जाता था। 19वीं शती में इन फिरका चित्रों को देशी व विदेशी कला प्रेमी बड़े चाव से खरीदते थे। कुछ सुसंस्कृत धनिक घरानों में हिंदू धार्मिक विषयों वाले चित्र और मिनियेचर पोर्ट्रेट की अच्छी खपत होती थी। ये चित्र बहुत ही सस्ते होते थे। सैंकड़ों चित्र विदेशियों के हाथों लंदन पहुंच रहे थे। दो-ढाई रुपए में बारह चित्र बिक जाते थे। एक बार डब्ल्यू.जी. आर्चर यहां से लगभग तीन सौ चित्र खरीद कर लंदन ले गए थे। वहां पर जबरदस्त मांग थी इन चित्रों की। सर चार्ल्स डि ऑइलि ने चित्रों की बढ़ती मांग की पूर्ति के लिए 'बिहार लिथोग्राफिक प्रेस' की स्थापना की तथा यहां के चित्रकार जयराम दास को अपना सहायक नियुक्त किया। इस प्रेस में पाश्चात्य चित्रों के अलावा पटना के चित्रकारों की अच्छी कलाकृतियां भी छपती थीं। तत्कालीन कैप्टन रॉबर्ट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'पिक्टोरियल जनरल ऑफ ट्रेवेल्स इन हिंदुस्तान फ्रॉम 1828-1833' में यहां पर छपे कई चित्रों को सम्मिलित किया था। स्मिथ स्वयं भी एक अच्छे दर्जे का चित्रकार था तथा वह ढाका में कलैक्टर (1808-12) रह चुका था।

लिथो प्रेस में छपे चित्र बहुत सस्ते में बिकने लगे तो चितेरे भी सस्ते दामों पर चित्र बेचने

हवेली के आंगन में होली खेलते हुए स्त्री-पुरुष

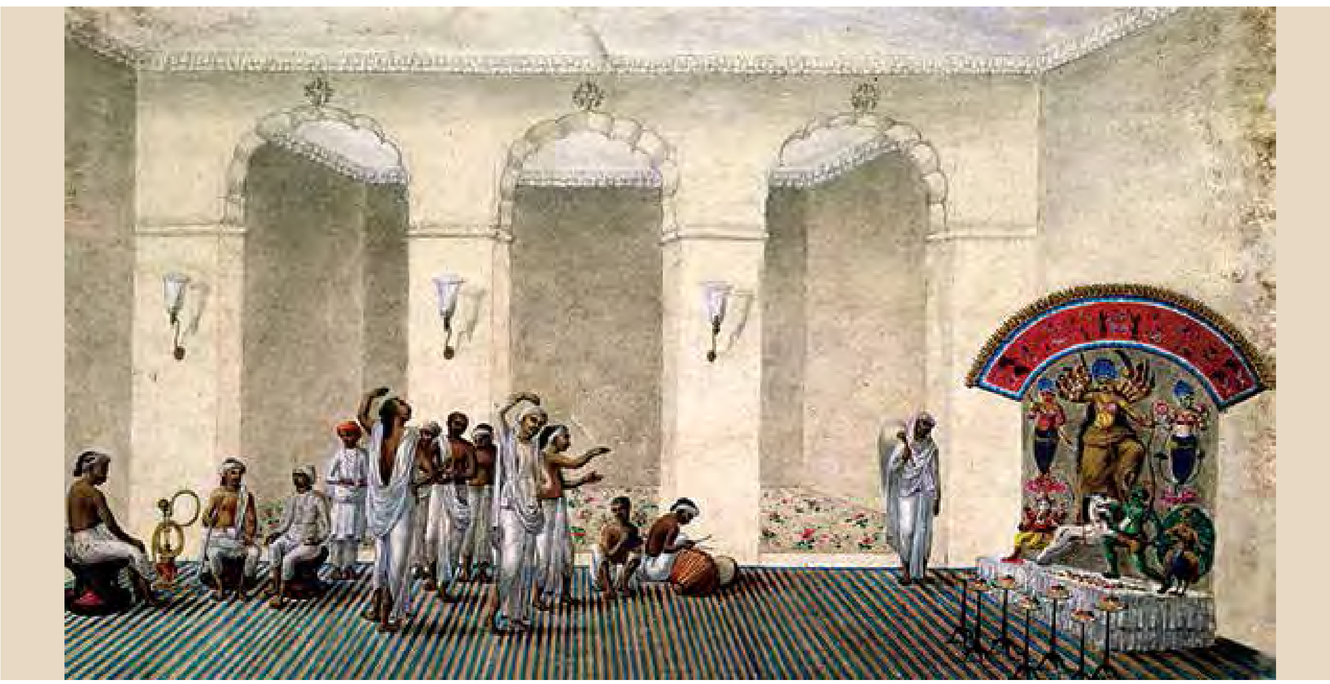

दुर्गा पूजा का उत्सव मनाते हुए भक्तजन

(**आभार**—चित्र संख्या 1 से 8 तक इंटरनेट पर विविध वेबसाइट्स के सौजन्य से तथा चित्र संख्या 9 मिल्ड्रेद आर्चर की पुस्तक 'पटना पेंटिंग' के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।)

लगे लेकिन ऐसा कब तक चलता। मेहनत और वक्त तो पहले जितना ही लगता था। हस्तनिर्मित चित्रों की बिक्री बहुत घट गई। चितेरों को अपना पेट भरना दूभर हो गया। उन पर बुरे वक्त की नजर तिरछी पड़ रही थी। लगभग 1845 में हिंदुस्तान में कैमरे की फोटोग्राफी के आने से कदरदान लोगों की पेंटिंग्स में रुचि घटती चली गई। कई चितेरे घोर तंगी व गुरबत से जूझते हुए लगभग 1880 तक चित्रण करते रहे और उनके घरों में रखे चित्रों की बेकदर गड्डियां बिकने का इंतजार करते-करते गुमनामी में चली गईं।

अब न तो वह जमाना रहा ओर न ही वह समाज। सब कुछ तो बदल चुका है लेकिन नहीं बदले उनके अक्स को संजोए हुए चित्र-अवशेष जो आज पटना संग्रहालय, चैतन्य पुस्तकालय, खुदाबक्श ओरियंटल लाइब्रेरी, जालान किला संग्रहालय तथा गोपी कृष्ण कनोड़िया निजी संग्रह पटना में देखे जा सकते हैं। इंडियन म्यूजियम कलकत्ता, इलाहाबाद म्यूजियम व भारत कला भवन वाराणसी में भी अच्छे स्तर के कई चित्र दर्शनीय हैं। इनके अतिरिक्त अनेक उत्कृष्ट चित्र विक्टोरिया एंड अल्बर्ट म्यूजियम व इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन तथा नापारटेक म्यूजियम, प्राग में भी संग्रहीत हैं।

7, प्रतिबिंब, शिव विहार, देहली रोड,
सहारनपुर-247001 (उ.प्र.)

गुजरात में जैन धर्म का उत्कर्ष, जैन प्रबंधों के संदर्भ में

डॉ. वाहिद नसरू

जैन धर्म भारत के प्रमुख प्राचीन धर्मों में एक है। जैन धर्म पर पर्याप्त शोधकार्य हुआ है। परंतु यह शोधपत्र चालुक्य वंश के राजाओं का जैन धर्म के लिए योगदान के संदर्भ में है। यह शोधपत्र अकथित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जैन प्रबंध काव्यों के आधार पर प्रस्तुत करेगा। मेरा उद्देश्य मुख्यतः गुजरात के चालुक्य वंश से संदर्भित है।

गुजरात में जैन धर्म का प्रभाव अति प्राचीन काल से रहा है। गुजरात में न तो किसी तीर्थंकर का जन्म हुआ और न ही यह भूमि जैन धर्म की मातृभूमि है। तथापि गुजरात के राजाओं ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में विशेष प्रशंसनीय कार्य किए हैं। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने सौराष्ट्र में स्थित शत्रुंजयगिरि पर अपना प्रथम धर्मोपदेश किया था। सौराष्ट्र के ही रैवतक गिरि (गिरनार) पर बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ को महाभिनिष्क्रमण, केवलज्ञान और निर्वाण अर्थात् प्रमुख कल्याणक संपन्न हुए थे।

इतिहास के साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि, उत्तर भारत में केवल कुछ ही शासकों ने जैन धर्म स्वीकार किया था। जैन धर्म में दीक्षा लेने वालों में चंद्रगुप्त मौर्य, संप्रति, खारवेल, गुर्जर प्रतिहार वंश के नागभट्ट द्वितीय एवं चालुक्य वंश के कुमारपाल का नाम मुख्य है। चालुक्य वंश के शासको के अतिरिक्त अधिकांश शेष राजवंशों का दृष्टिकोण भी जैन धर्म के लिए उदार था।

संभवतः गुजरात में उस समय सर्वप्रथम जैन धर्म का प्रसार हुआ था, जब जैन आचार्य भद्रबाहु ने मगध सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य (चौथी सदी ईसा पूर्व) के साथ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया था और अपने प्रवास काल में गिरनार पर्वत पर विश्राम किया था। उस समय से पूर्व गुजरातवासी जैन धर्म के सिद्धांतों से परिचित नहीं थे। मगध का मौर्य सम्राट उस समय जैन धर्म का अनुयायी था। जैन विद्वानों के विश्वास की परंपरा के अनुसार मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त कि यात्रा का उद्देश्य भी गुजरात वासियों को जैन धर्म से अवगत कराना था। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में जो योगदान मौर्य सम्राट अशोक का है, जैन परंपरा के अनुसार जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में वही योगदान मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य का है। गुजरात में प्रथम सदी ईसा पूर्व में जैन धर्म ने अपना विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। प्रबंधकोश और कालकाचार्य कथा के अनुसार प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में ही आचार्य कालक और आचार्य खपट ने भड़ौच में जाकर वहां के निवासियों को जैन धर्म का उपदेश दिया था। खपटाचार्य ने बौद्धों को एक धार्मिक वाद विवाद में पराजित किया था। खपटाचार्य दिगंबर सूरि थे, इनके नाम से ही विदित होता है कि ख—आकाश, पट—वस्त्र बहुव्रीहि समास बनकर पटं वस्त्रं यस्य सः। आकाश ही वस्त्र है जिसका अर्थात् दिगंबर। आचार्य खपट 'प्रभावनानर्तकरगांचार्य' की उपाधि से विभूषित थे।

क्षत्रपकाल में निश्चित रूप से गुजरात में जैन धर्म की विद्यमानता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। क्षत्रप शासक जयदामन के पौत्र रुद्रदामन के जूनागढ़ के (दूसरी सदी ईसवी) शिलालेख में उन लोगों का उल्लेख है जिन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया और जरामरण से मुक्ति पाई थी। गुप्तकाल में वलभी जैन धर्म का प्रमुख केंद्र था। वलभी के मैत्रक वंश के शासकों के राज्यकाल में जैन धर्म का पर्याप्त विकास हो चुका था। गुप्त साम्राज्य के विघटन के पश्चात् और हर्षवर्द्धन के उदय से पूर्व उत्तर तथा पश्चिम भारत की राजनीति में अनेक शक्तियों का उदय हुआ था। गुप्तवंश के सेनापति भट्टार्क ने केंद्रीय शक्ति की दुर्बलता का लाभ उठाकर वलभी में नए राजकुल की स्थापना की थी। इस नए राजकुल का नाम वलभी का मैत्रक वंश था। विक्रमादित्य प्रथम धर्मादित्य (ई. 606-612) वलभी के मैत्रक वंश का शक्तिशाली राजा हुआ था। प्रबंधकोश, प्रबंधचिंतामणि और पुरातन प्रबंध संग्रह आदि प्रबंध काव्यों में वर्णित राजा शिलादित्य ही विक्रमादित्य प्रथम धर्मादित्य सिद्ध होता है।

ह्वेनसांग के अनुसार शिलादित्य एक योग्य तथा उदार शासक था। उसने एक बौद्ध मंदिर का निर्माण कराया था, उसके शासन में प्रतिवर्ष विशाल धार्मिक समारोह होता था। प्रबंधकोश में शिलादित्य के बौद्ध धर्म अनुयायी होने तथा उसके राजदरबार में शास्त्रार्थ का वर्णन प्राप्त होता है। बौद्ध मतानुयायी शिलादित्य ने धनेश्वरसूरि के प्रभाव से बाद में जैन धर्म में दीक्षा ले ली थी। राजा शिलादित्य ने अपने गुरु धनेश्वरसूरि के आग्रह करने पर ही बौद्धों को अपने राज्य से बाहर निष्कासित कराया था। बौद्धों के मठों और तीर्थ स्थानों पर अनेक जैन चैत्य स्थापित भी कराए थे। प्रबंधकोश की एक कथा के अनुसार सुभंगा के पुत्र ने बौद्धों को पराजित करने के उद्देश्य से मल्ल नाम के पर्वत पर तपस्या की। शासन देवता के आशीर्वाद से

नयचक्र (सप्तभगीय) नाम के ग्रंथ की रचना की थी। बौद्धों के कुतर्कों का खंडन करके उन्हें पराजित कर दिया और 'मल्लवादी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। मल्लवादी ने वाद-विवाद में बौद्धों को पराजित किया था जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें 'वादी' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

गुजरात में सुवर्णयुग का शिखर चालुक्य वंश भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। चालुक्यों के नाम से चार राजवंशों का उल्लेख प्राचीन भारतीय इतिहास में वर्णित है—(1) वातापी के चालुक्य, (2) वेगी के चालुक्य, (3) कल्याणी के चालुक्य, (4) गुर्जर देश के चालुक्य।

गुर्जर देश के चालुक्यों का वर्णन राजशेखर प्रणीत प्रबंधकोश, मेरुतुंगाचार्य की प्रबंध चिंतामणि, पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रभावक चरित, कुमारपाल चरित आदि प्रबंधों में प्राप्त होता है।

नांदीपुरी के गुर्जर राजाओं के शासन काल में जैन धर्म ने पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित की थी। जयभट प्रथम और दद्द द्वितीय ने 'वीतराग' और 'प्रशांतराग' जैसे विरुद धारण किये थे। राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष प्रथम, कृष्ण द्वितीय, इंद्र तृतीय और इंद्र चतुर्थ द्वारा जैन धर्म को समुचित प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। वस्तुतः अमोघवर्ष हिंदू की अपेक्षा जैन अधिक था। उसने आचार्य को अपना धर्मगुरु स्वीकार किया था। अनेक राष्ट्रकूट सामंत, शासक तथा अधिकारीगण भी जैन धर्मावलंबी थे।

गुजरात के गुर्जर प्रतिहार शासक जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे। श्रीप्रभाचंद्र सूरि के प्रभावक चरित में बप्पभट्टि चरित में नागावलोग और राजशेखर सूरि के बप्पभट्टि प्रबंध में राजा आम वस्तुतः राजा नागभट्ट द्वितीय ही हैं। कान्यकुब्ज देश के राजा यशोवर्मा का पुत्र राजा नागभट्ट द्वितीय था। अनेक प्रबंधों में राजा नागभट्ट द्वितीय के द्वारा जैन धर्म में दीक्षा लेने का वर्णन प्राप्त होता है। राजा नागभट्ट द्वितीय ने अपने हित के उपदेश को सुनकर एक सौ एक हाथ लंबा प्रासाद कान्यकुब्ज देश के गोपगिरि नगर में बनवाया था। इस प्रासाद में 108 भार (तौल) की वर्धमान की मूर्ति भी स्थापित कराई। इस प्रासाद में जो चैत्य था, उसका मंडप सवा लाख स्वर्ण मुद्राओं से तैयार हुआ था। इसके अतिरिक्त राजा नागभट्ट द्वितीय ने मोदेरा और अणहिल्लपुर में जैन मंदिरों का निर्माण कराया और शत्रुंजय एवं गिरनार की तीर्थयात्रा की थी। नागभट्ट द्वितीय (सन् 800-833 ई.) अपने वंश का प्रतापी शासक था। उसने गुर्जर प्रतिहारों के वंश की खोई हुई शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया था। इस समय में जैन धर्म के प्रभावकारी होने का वर्णन वर्धमानपुर एवं दोस्तटिका में जैन मंदिरों के अवस्थित होने से भी प्रमाणित होती है।

जैन धर्म ने गुजरात के चालुक्य वंश के काल में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। इसी समय जैन धर्म अपने चरमोत्कर्ष पर था। गुर्जर देश के चालुक्य राजाओं ने जैन धर्म को यथोचित प्राश्रय प्रदान किया था। गुजरात के अणहिल्लपुर में चाबड़ा वंश के अंतिम शासक सामंत सिंह ने सन् 935-942 ई. तक लगभग सात वर्ष राज्य किया था। सामंत सिंह का प्रधान सेनापति मूलराज था। सेनापति मूलराज ने सामंत सिंह की हत्या कर अपना राज्य स्थापित किया था। इस प्रकार मूलराज ने अणहिल्लपुर में चाबड़ा वंश के स्थान पर चालुक्य वंश की स्थापना की थी। चालुक्य वंश को सोलंकी वंश भी कहा जाता है। प्रबंधकोश, प्रबंध चिंतामणि, पुरातन प्रबंध संग्रह आदि अनेक जैन प्रबंधों में चालुक्य वंश की वंशावली का विवरण विस्तार के साथ इस प्रकार वर्णित किया गया है—चालुक्यवंश्यो मूलराज-चामुंडराज-दुल्लर्भराज-भीमान्वेय कर्णदेवजन्मा मयणल्ल देविकुक्षिभूर्द्वादशो रुद्र इति विदितबिरुदः श्रीजयसिंह देवनाम-महीपतिरभूत।

प्रबंधकोश के मदनवर्मा प्रबंध में चालुक्य वंश का वंशावली में मूलराज से सिद्धराज जयसिंह तक का वर्णन है, आचार्य हेमचंद्रसूरि प्रबंध में सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल का वर्णन है, तथा आभड प्रबंध में कुमारपाल, अजयपाल, वालमूलराज, भीमदेव द्वितीय और त्रिभुवनपाल तक के राजाओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रबंधकोश के तीन प्रबंधों मदनवर्मा प्रबंध, आचार्य हेमचंद्रसूरि प्रबंध और आभड प्रबंध में संपूर्ण चालुक्य वंश का वर्णन है।

चालुक्य वंश के संस्थापक मूलराज ने सन् 942-997 ई. तक लगभग 55 वर्ष राज्य किया था। मूलतः मूलराज शैवधर्म का अनुयायी था। उसने अनेक जैन मंदिरों का निर्माण कराया था। मूलराज ने 'त्रिपुरुष प्रसाद' नाम का शिव मंदिर का निर्माण कराया था, परंतु वह जैन धर्म के प्रति उदार था। राजा ने 'श्री मूलराज वसहिका' नाम का एक जैन मंदिर भी बनवाया था।

जैन धर्म के प्रति उदार होने के कथन की पुष्टि इस तथ्य से प्रमाणित होती है, कि उसने युवराज चामुंडराज को वरुणसर्मक (वर्तमान मेहसना) स्थित जैन मंदिर के संरक्षणार्थ एक भूमिदान की अनुमति दी थी। मूलराज ने अणहिल्लवाड़ा जो उसकी राजधानी थी, वहां एक जैन मंदिर का निर्माण कराया था।

मूलराज के पश्चात् चामुंडराज ने सन् 997-1010 ई. तक 13 वर्ष राज्य किया था। चामुंडराज के पश्चात् उसके पुत्र वल्लभसेन (वल्लभराज) का राज्याभिषेक सन् 1010 ई. में हुआ था, इसने 6 माह राज्य किया था और इसी वर्ष वल्लभसेन की किसी रोग के कारण मृत्यु हो गई थी। वल्लभसेन के पश्चात् उसका छोटा भाई दुल्लर्भराज ने सन् 1010-1022 ई. तक 11 वर्ष तक राज्य किया था। यह भी ब्राह्मणों का तथा शिव का भक्त था। प्रबंधकोश के आचार्य हेमचंद्रसूरि प्रबंध में वर्णन है कि दुल्लर्भराज ने जैन सिद्धांतों को भली भांति समझ कर जैन विद्वानों, जैन श्रमणों का आदर सत्कार करना प्रारंभ कर दिया था और बौद्धों के एकांतवाद का विरोध किया था। हेमचंद्र के इस कथन की पुष्टि द्वयाश्रय महाकाव्य पर अभय तिलक की टीका से प्रमाणित होती है। टीका के अनुसार दुल्लर्भराज ने जैन सिद्धांतों का ज्ञान जिनेश्वरसूरि से प्राप्त किया और जब जिनेश्वरसूरि ने एक वाद-विवाद में बौद्धों के एकांतवाद का खंडन किया तो उसने भी

बौद्ध सिद्धांतों के प्रति आख्यान किया था। दुल्लर्भराज ने जिनेश्वरसूरि के पांडित्य से प्रसन्न होकर उन्हें 'खरतर' की उपाधि से विभूषित किया था। इसने अपने शासनकाल में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया था।

दुल्लर्भराज का उत्तराधिकारी भीमदेव प्रथम था। भीमदेव प्रथम ने सन् 1022-1072 ई. तक लगभग 50 वर्ष राज्य किया था। भीमदेव भी अपने पूर्वजों की परंपरा के अनुसार शैवधर्म का ही पालन करता था। यह तथ्य विशेष कर उल्लेखनीय है कि भीमदेव प्रथम ने अपने समय में न तो किसी जैन मंदिर का निर्माण या प्रचार प्रसार किया था और न ही किसी प्रकार से जैन धर्म के प्रचार प्रसार में कोई रुकावट ही डाली थी। इसके दंडनायक विमलशाह ने आबू के विश्व विख्यात मंदिर का निर्माण कराया था, जो आज भी विद्यमान है। इसी राजा के शासनकाल में कुंभारिया के सुंदर महावीर मंदिर का निर्माण भी हुआ था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन दोनों मंदिरों का निर्माण भीमदेव प्रथम ने नहीं कराया था। भीमदेव प्रथम के समय में शैवाचार्य ज्ञानभिक्षु और जैन साधुओं को पाटन में स्थान सोमेश्वर के अनुरोध पर दिया था। इसके राज्य में विद्या एवं कला की उन्नति हुई थी।

भीमदेव प्रथम का पुत्र और उत्तराधिकारी कर्णदेव था। कर्णदेव ने सन् 1072-1094 ई. तक लगभग 22 वर्ष राज्य किया था। कर्णदेव ने जैन साधु अभयतिलक सूरि को उनके गंदा रहने के कारण 'मलधारी' की उपाधि दी थी। इसके अतिरिक्त जैन धर्म के लिए किए किसी विशेष योगदान का कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

कर्णदेव का उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह था। सिद्धराज जयसिंह ने सन् 1094-1143 ई. तक लगभग 49 वर्ष राज्य किया था। जयसिंह के समय में जैन धर्म को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला था। चालुक्य वंश के मूलराज से सिद्धराज जयसिंह तक के सभी राजा शैवधर्म के अनुयायी थे, परंतु इन राजाओं ने कभी भी जैन धर्म में दीक्षा नहीं ली थी। चालुक्य वशं के शैवधर्म अनुयायी इन सभी राजाओं के हृदय में जैन धर्म व दर्शन और जैनों के प्रति सम्मान था। अभयदेव सूरि, कलिकालसर्वज्ञ, आचार्य हेमचंद्रसूरि, मलधारी, वीराचार्य आदि जैनाचार्यों के प्रति वह सहिष्णु तथा उदार थे। इनके मंत्रिमण्डल में अनेक जैन थे।

सिद्धराज जयसिंह ने अपने शासनकाल में अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। संप्रति कुंभारिका के पार्श्वनाथ और नेमिनाथ मंदिर, गिरनार का नेमिनाथ मंदिर और सेजाकपुर का जैन मंदिर ही विद्यमान है। गिरनार एवं शत्रुंजय जैसे तीर्थों की यात्रा भी की थी तथा इसी अवसर पर जैन धर्म को प्रचुर धन दान के रूप में दिया था।

अनेक जैन प्रबंधों के अनुसार सिद्धराज जयसिंह के समय में गुजरात में जैन धर्म की श्वेतांबर शाखा को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। उसके राजदरबार में जैन धर्म की दोनों शाखाओं दिगंबर और श्वेतांबर के मध्य वाद विवाद हुआ था। दिगंबर आचार्य कुमुदचंद्र को परास्त कर श्वेतांबर आचार्य देवचंद्र सूरि ने विजय प्राप्त की थी। इस पराजय के कारण शर्तानुसार दिगंबर जैनियों को गुजरात से निष्कासित होना पड़ा था। दिगंबरों पर श्वेतांबरों के प्रभुत्व के संकेत इस बात से भी होते हैं कि एक ओर जहां श्वेतांबर मंदिर एवं अभिलेखों का बहुतायत है, वहीं दूसरी ओर दिगंबरों के पुरातात्विक अवशेष नगण्य हैं।

सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् कुमारपाल ने सन् 1143-1174 ई. तक लगभग 31 वर्ष राज किया था। सिद्धराज जयसिंह के कोई पुत्र नहीं था। सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् चालुक्य वंश के राज सिंहासन के लिए संघर्ष हुआ था। सिंहासन के इस संघर्ष में जयसिंह के वंशज भतीजे त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल विजयी रहा था। कुमारपाल नीच कुल में उत्पन्न था। सिद्धराज जयसिंह ने सत्ता के इस संघर्ष में कुमारपाल की मृत्यु कर देने के लिए अथक प्रयास किया था। आचार्य हेमचंद्र ने कुमारपाल को भविष्यवाणी कर कहा था कि गुजरात का भावी राजा कुमारपाल ही होगा। चित्तौड़ के किले से प्राप्त कुमारपाल का शिलालेख इस तथ्य की पुष्टि करता है कि, सिद्धराज जयसिंह निःसंतान था, उसके पश्चात् राजा कर्णदेव के सौतेले भाई क्षेमराज का पुत्र, देवप्रसाद का पौत्र, त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल गुजरात के राजसिंहासन पर बैठा था। मेरुतुंगाचार्य की प्रबंध चिंतामणि के एक वर्णन के अनुसार सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता ने सिद्धराज को पहले ही ज्ञात करा दिया था कि, उसके बाद कुमारपाल गुजरात का भावी राजा होगा। सन् 1143 ई. में राजाभिषेक के पश्चात् कुमारपाल ने जैन धर्म में दीक्षा ले ली थी। यह राजा चालुक्य वंश का प्रथम शासक था, जिसने शैवधर्म का अनुयायी होने पर जैन धर्म में दीक्षा ली थी।

कुमारपाल के समय में जैन धर्म ने गुजरात में अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया था। उसने गुजरात में जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रचार प्रसार में विशेष उल्लेखनीय कार्य किया था। वह जैन धर्म का प्रबल पोषक था। उसी के कारण श्वेतांबर जैन धर्म का प्रमुख केंद्र गुजरात हो गया था। जैन धर्म में दीक्षा ले कर, अपने यश फैलाने के लिए जैन दर्शन के सिद्धांतों का अपने राज्य में प्रचार व प्रसार किया तथा जैन धर्म को 'राज्य धर्म' घोषित किया था।

जैन मंदिर निर्माण—प्रबंध चिंतामणि और अनेक प्रबंधों के विस्तृत वर्णन के अनुसार कुमारपाल ने विशेष अवसरों पर भी जीव हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया था। जैन राजा ने अपनी कीर्ति स्तंभों के रूप में अपने धर्मगुरु आचार्य हेमचंद्र की प्रेरणा से 1440 जैन मंदिरों का निर्माण और 1600 जीर्ण मंदिरों का जीर्णोद्धार भिन्न भिन्न देशों में कराया था। कुमारपाल ने स्थान स्थान पर जैन मंदिरों का निर्माण कराकर जैन धर्म को पोषण प्रदान किया था।

हेमचंद्र के त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित के अनुसार प्रायः सभी गांवों में जैन मंदिर थे। प्रभाचंद्र के प्रभावक चरित्र में उल्लेख है कि, अणहिल्लपाटक में स्थित कुमारविहार के वर्णन के अतिरिक्त यह भी वर्णन है कि, उस राजा ने अपने 32 दांतों के प्रतिशोध रूप 32

जैन विहारों का निर्माण कराया था। कुमारपाल ने अपने पिता के नाम पर अणहिल्लपाटक में त्रिभुवन नाम का वनविहार बनवा कर उस विहार में नेमिनाथ की प्रतिमा स्थापित की थी। शत्रुंजय पर्वत पर एक जैन मंदिर का निर्माण भी कराया था। कुमारपाल द्वारा निर्मित तारंगा का अजितनाथ मंदिर आज भी विद्यमान है। इस मंदिर की विशालता एवं सुरुचिपूर्ण कला शैली से भी जैन मंदिर की सुदृढ़ स्थिति के संकेत मिलते हैं। राजा कुमारपाल ने शत्रुंजय और गिरनार पवित्र जैन तीर्थस्थानों की यात्रा की थी।

जैन धर्म के धार्मिक शास्त्रों को सुरक्षित रखने की इच्छा से उसने अनेक पुस्तक-भंडारों की स्थापना की थी और जीर्ण भंडारों का जीर्णोद्धार भी कराया था। श्री तारंगतीर्थ अजितनाथ स्थानों पर शिल्पकला के अद्वितीय नमूने और मंदिरों के विशाल गगनचुंबी शिखर कुमारपाल की धार्मिक निष्ठा की ओर इशारा करता है। कुमारपाल के स्तंभतीर्थ (आधुनिक खंभात) में जहां पर राजा कुमारपाल से दीक्षा ली थी, उस स्थान पर 'आलीग' नाम की बस्ती बसाई और श्रीमहावीर स्वामी की रत्नमय मूर्ति तथा हेमचंद्र आचार्य की सुवर्ण से बनी पादुका की स्थापना की थी।

श्रावकों को दान—जैन धर्म में दीक्षा लेने के उपरांत राजा कुमाररपाल ने अपने यश को फैलाने और अजर अमर रखने का प्रयास किया। राजा ने इस उद्देश्य को क्रियान्वित करने के लिए "जैन श्रावकों, जैन विद्वानों और जैन आराधकों के लिए भोजन, वस्त्र और दान की व्यवस्था का दायित्व राज्य का होगा", ऐसी घोषणा कराई थी। श्रावकों को दान देने की इच्छा से एक सत्रागार की स्थापना भी की थी।

दुर्व्यसनों पर प्रतिबंध—कुमारपाल ने अपने राज गुजरात को दुर्व्यसनों से मुक्त करने के लिए बहुत प्रयास किया था। द्यूत क्रीड़ा और मद्य, मांस भक्षण को पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया था। राजा ने धन का अपरहण करने वालों के लिए भी कठोर नियम बनाए थे। अनेक जैन प्रबंधों में उल्लेख है कि कुमारपाल ने आचार्य हेमचंद्र के प्रभाव से अपने 18 राज्यों में प्रतिबंध लगा कर घोषणा की थी—

"द्यूतं च मांसं च सुरा च वैश्या,
पापचोरी परदार सेवा।
एतानि सप्तव्यसानानि राजान्,
घोरातिधोरनरकं नयंति।।"

अर्थात् मद्य, मांस भक्षण, जुआ, चोरी, व्यभिचार और वैश्यागमन इन सात दुर्व्यसनों का राजा ने अपने राज में निषेध कर दिया था।

पशुवध का निषेध—'अहिंसा' जैन धर्म के द्वादशव्रत के अंर्तगत मुख्य अणुव्रत है। कुमारपाल ने अपने राज्य में यज्ञ के अवसर पर भी दी जाने वाली पशुबलि का निषेध कर दिया था। यह आदेश जैन धर्म के प्रति राजा की आस्था की पराकाष्ठा को इंगित करता है। कुमारपाल ने आखेट को भी अपने राज में निषिद्ध कर दिया था। पुत्रहीन व्यक्तियों की संपत्ति के अधिग्रहण पर भी रोक लगा दी थी। सुरापान, जुआ खेलने और कपोत एवं कुक्कुट की लड़ाई में शर्त लगाने पर भी पाबंदी लगा दी थी। अनेक प्रबंधों और हेमचंद्र के द्वयाश्रय काव्य के वर्णन के आधार पर राजा कुमारपाल ने 'अमारि' अर्थात् अमारौ की घोषणा की थी। आचार्य जिनमंडनोपाध्याय के कुमारपाल प्रबंध में विशेष रूप से कुमारपाल द्वारा मान्य 'हिंसाऽहिंसा' का वर्णन है।

अजयपाल—कुमारपाल के पश्चात् अजयपाल गुजरात का शासक था। अजयपाल ने सन् 1174-1177 ई. तक लगभग 3 वर्ष तक राज्य किया था। अजयपाल कुमारपाल का भतीजा था। अजयपाल कट्टर शैव था। उसने अपने 3 वर्ष के छोटे से शासन में अनेक जैन मंदिरों को तुड़वाया था।

अजयपाल के पश्चात् मुलराज द्वितीय ने गुजरात की शासन सत्ता संभाली थी। मूलराज द्वितीय ने सन् 1177-1179 ई. तक 2 वर्ष राज्य किया था। मूलराज द्वितीय भी शैव धर्म में के प्रति अनुरागी था। उसने जैन धर्म के लिए कोई विशेष कार्य नहीं किया था।

भीमदेव द्वितीय—मूलराज द्वितीय के बाद भीमदेव द्वितीय ने सन् 1170-1242 ई. तक लगभग 63 वर्ष राज्य किया था। भीमदेव द्वितीय के शासनकाल में गुजरात पर सुल्तान शहाबुद्दीन-मौहम्मद-गौरी ने दो बार आक्रमण किया था। सुल्तान को दोनों युद्ध में भीमदेव द्वितीय ने परास्त किया था। गुजरात में अपनी पराजय के पश्चात् सुल्तान गौरी ने राजस्थान पर अपना ध्यान केंद्रित किया था। इसके समय में जैन धर्म बिना किसी राजकीय सहायता के फलता-फूलता रहा।

गुजरात में चालुक्य वंश का अंतिम शासक त्रिभुवनपाल था। उसने सन् 1242-1244 ई. तक 2 वर्ष राज्य किया था। यह शासक भी शैव था, इसके समय में भी जैन धर्म को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला था। इस प्रकार चालुक्य वंश के शासकों ने 302 वर्ष राज्य किया था।

गुजरात में चालुक्य वंश के समाप्त होने के पश्चात् वस्तुपाल, तेजपाल, जगडू आदि उनके वणिक मंत्रियों द्वारा जैन धर्म को पोषण प्राप्त होता रहा। वस्तुपाल-तेजपाल पर जैन धर्म के प्रति इनकी आस्था के कारण जितना साहित्य और प्रशस्तियां आदि का सृजन हुआ शायद ही किसी के चरित्र पर इतने साहित्य का सृजन हुआ होगा। वस्तुपाल के चरित्र पर उपलब्ध साहित्य का संक्षिप्त इस प्रकार है—सोमेश्वर विरचित कीर्तिकौमुदी, उदयप्रभसूरि विरचित धर्माभ्युदय महाकाव्य, ठक्कुर अरिसिंह विरचित सुकृतसंकीर्तन, जयसिंह सूरि विरचित हम्मीरमदमर्दन इत्यादि।

वस्तुपाल-तेजपाल वाघेल वंश के वीरधवल के प्रधानमंत्री थे। वीरधवल चालुक्यवंशीय राणक लवण प्रसाद के पुत्र थे। वस्तुपाल को गुजरात की संस्कृति का उद्धारक माना जाता है। वस्तुपाल ने अनेक धार्मिक और लोकहितकारी कार्य किए थे, जैन धर्म के लिए विशेषकर। उसने अपने समय में जैन धर्म के अनेक मंदिर बनवाए जिसमें एक लाख जैन मूर्तियां थी। वस्तुपाल ने शत्रुंजय पर्वत पर एक ऋषभदेव की, एक पुंडरीक की, एक कपर्द्दिन की, एक चक्रेश्वरी की तथा एक पार्श्वनाथ की इस प्रकार पांच पत्थर की प्रतिमा लगाई

थी। अनेक विहार, मुसलमानों के लिए 64 मस्जिदें, मनुष्य तथा पशुओं के रोगों को दूर करने के लिए 984 औषधशालाएं, जैन श्रावकों और सूरियों के बैठने के लिए 500 सिंहासन, 700 ब्रह्मशालाएं, 700 शस्त्राकार, (साधुओं के बैठने के स्थान), 700 कापलिकों के बैठने के मठ बनवाए तथा सभी के भोजन आछदान का प्रबंध भी किया। सैकड़ों ब्रह्मशालाएं और ब्रह्मपुरिया बनवाईं, 2300 शिवालयों का जीर्णोद्धार कराया, वेदपाठी ब्राह्मणों के लिए वर्षाशन का भी प्रबंध किया था। यह वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण हो सकता है, परंतु इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं की उन दोनों भाईयों ने अनेक मंदिरों का निमार्ण कराया था। वस्तुपाल-तेजपाल द्वारा निर्मित अनेक जैन मंदिर आज भी सुरिक्षत तथा विद्यमान हैं। इन दोनों भाईयों ने शत्रुंजय और गिरनार की तीर्थयात्रा की थी।

वस्तुपाल-तेजपाल के पश्चात् वाघेलों के मंत्री जगडूशाह ने जैन मंदिरों का निर्माण तथा जैन धर्म को प्रोत्साहन दिया था। वस्तुपाल-तेजपाल तथा जगडूशाह आदि अनेक जैन मंत्रियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी दानशीलता थी।

निष्कर्ष—चालुक्य वंश के राजाओं, जैन मंत्रियों तथा अनेक व्यापारियों के उदार हृदय के कारण गुजरात में जैन धर्म का बहुत प्रचार प्रसार हुआ था। इनके समय में गुजरात में श्वेतांबर जैन धर्म का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया था। चालुक्य वंश के सभी मंदिर श्वेतांबर जैन परंपरा के हैं और उन सभी मंदिरों में किसी न किसी तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित है। चालुक्य अथवा सोलंकी वंश के शासकों के तथा वहां की जनता के कारण जैन धर्म को समुचित पोषण मिला था।

संदर्भ ग्रंथ

1. हेमचंद्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, भाग 1, अंग्रेजी अनुवाद—जान्सन, एच.एम., बड़ौदा, 1931, पृ. 356
2. जैन, गोकुल चंद्र, जैनविद्या एवं प्राकृत, परिसंवाद 4, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1987, पृ. 62
3. बाउन, डब्ल्यू.एन., दी स्टोरी आफ कालक, वाशिंगटन, 1933, पृ. 66
4. राजशेखरसूरि, प्रबंधकोश, श्री फाबर्स गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण, बंबई, 1931, पृ. 8
5. जैन, गोकुल चंद्र, जैनविद्या एवं प्राकृत, परिसंवाद 4, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1987, पृ. 63
6. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2000, पृ. 495
7. मेरुतुंगाचार्य, प्रबंध चिंतामणि, जिनविजय मुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शांतिनिकेतन, बंगाल, 1931, पृ. 133-34
8. जैन, गोकुल चंद्र, जैनविद्या एवं प्राकृत, परिसंवाद 4, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1987, पृ. 63
9. सांकलिया, एच.डी., दी आर्कोलाजी आफ गुजरात, बम्बई, 1941, पृ. 16, 234
10. जैन, गोकुल चंद्र, जैनविद्या एवं प्राकृत, परिसंवाद 4, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1987, पृ. 64
11. प्रभाचंद्र, प्रभवकचरित, पंडित हीरानंद, स. शर्मा एम., बंबई, 1909, पृ. 165-67

    और देखें नसरू, वाहिद, प्रबंधकोश का समीक्षात्मक अध्ययन, अकादमी प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 87
12. अग्रवाल, वासुदेवशरण, रासमाला प्रथम भाग का पूर्वार्द्ध, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1958, पृ. 52-76
13. राजशेखरसूरि, प्रबंधकोश, श्री फाबर्स गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण, बंबई, 1931, पृ. 90
14. मेरुतुंगाचार्य, प्रबंध चिंतामणि, जिनविजय मुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शांतिनिकेतन, बंगाल, 1931, पृ. 120-30
15. हेमचंद्र, द्वयाश्रय महाकाव्य, संपादक कथवटे, ए.वी., बंबई, 1925, पृ. 7. 64
16. सांकलिया, एच.डी., दी आर्कोलाजी आफ गुजरात, बंबई, 1941, पृ. 16, 228
17. मेरुतुंगाचार्य, प्रबंध चिंतामणि, जिनविजय मुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शांतिनिकेतन, बंगाल, 1931, पृ. 77 और देखें उपाध्याय, जिन. मंडन., कुमारपाल प्रबंध।
18. मेरुतुंगाचार्य, प्रबंध चिंतामणि, जिनविजयमुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शांतिनिकेतन, बंगाल, 1931,पृ. 94-95
19. आचार्य, हेमचंद्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित, भाग 6, प्रकाशक जैन धर्म प्रचारक, बंबई, 1925, पृ. 311
20. अज्ञात कवि, पुरातन प्रबंध संग्रह, जिनविजयमुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, 1936, पृ. 47
21. द्वादशव्रत-5 अणुव्रत के अंतर्गत-1 अहिंसा-2 सत्य-3 अस्तेय-4 ब्रह्मचर्य-5 अपरिग्रह।
22. मुसलगांवकर, वि.भा., मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ माला, भोपाल, 1971, पृ. 8
23. राजशेखरसूरि, प्रबंधकोश, श्री फाबर्स गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण, बंबई, 1931, पृ. 98 और देखें मेरूतुंगाचार्य, प्रबंध चिंतामणि, जिनविजयमुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, शांतिनिकेतन, बंगाल, 1931, पृ.102 और देखें अज्ञात कवि, पुरातन प्रबंध संग्रह, जिनविजयमुनि, सिंधी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, 1936, पृ. 47
24. राजशेखरसूरि, प्रबंधकोश, श्री फाबर्स गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण, बंबई, 1931, पृ. 129
25. राजशेखरसूरि, प्रबंधकोश, श्री फाबर्स गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण, बंबई, 1931, पृ. 122-123 और देखें सुकृतकीर्तिकल्लोल-नियादि, वस्तुपाल प्रशस्ति, संपादक, पुण्यविजय, बंबई, 1953, पृ. 38

वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर,
मध्य एशिया अध्ययन केंद्र,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, जम्मू-कश्मीर

भारत की जीवनदायिनी शक्ति : हिंदी

डॉ. केशव फाळके

'नालंदा विशाल शब्द सागर' के अनुसार अमरबेल का अर्थ एक पीली लता होता है जिसके जड़ और पत्ते नहीं होते। वह वृक्ष का रस चूस कर ही जीती है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह वृक्ष पर ही फैलती रहती है और धीरे-धीरे पूरे वृक्ष पर छा जाती है। इसका स्वरूप महीन गूंथे हुए गेहूं के आटे की लोई से हाथों द्वारा लकड़े के लंबे पटे पर अथवा मशीन पर बनाई गई सेवंई अथवा आधुनिक बाल-किशोर युवा पीढ़ी में प्रचलित अत्यधिक लोकप्रिय बनी 'चायनीज नूडल्स' के सदृश्य होता हे। इसके वृक्ष पर बढ़ने फैलने की कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती। बस जहां तक वृक्ष का आकार-विस्तार होता है वहां तक फैलती चली जाती है। कभी-कभी तो वह वृक्ष को पूर्ण रूप से ढंक देती है। इसके कुछ टुकड़ों को खींच-तोड़ कर किसी अन्य वृक्ष पर डाल दीजिए बस कुछ ही महीनों में वह उस वृक्ष को घेर लेगी। उस वृक्ष का रस ही उसका खाद-पानी होता है, उसका जीवन-रस होता है। यह काल की दृष्टि से अमर और विस्तार की दृष्टि से निस्सीम आकाश सदृश्य है। इसी से यह अमरवल्ली, आकाशवल्ली अथवा अमरबेल कहलाती है।

विश्व में हिंदी की स्थिति भी हू-ब-हू अमरबेल जैसी ही है। जिस भूमि ने आधार दिया, आश्रय दिया उसी भूमि पर पनपने लगती है और उसी की हो जाती है। यही इसका मूल स्वभाव बन गया है। वह निश्चित ही बड़ी शुभ घड़ी रही होगी जब उठने, चलने और बढ़ने का संकल्प लेकर हिंदी ने मेरठ की सीमा लांघी थी। ''जहां चाह है, वहां राह है'' की उक्ति को साकार करने की उसकी सामर्थ्य का स्वयं हिंदी को भी अनुमान नहीं रहा होगा, शायद उस समय! किंतु आज हिंदी विश्व-भाषा का खिताब पाने के लिए सबसे बड़ी दावेदार है। मिलनसारिता हिंदी की सबसे बड़ी विशेषता रही है। इस विशेषता को इस तरह समझा जा सकता है। आज कोई हिंदी से प्रश्न करें कि हिंदी तेरा रंग कैसा? तो हिंदी का अविलंब उत्तर होगा कि, ''मैं जिस भूमि और समाज में रहती हूं और जीती हूं, बस उस भूमि और समाज जैसा।'' बस इसी मिलनसारिता ने हिंदी को सबके लिए अपना-अपना सा बना दिया है। यही कारण है कि मेरठ से निकली खड़ी-बोली हिंदी अनगिनत घातों-प्रत्याघातों को बर्दाश्त करती हुई इस्पाती इरादों के साथ विश्व-विजय के अपने अभियान में निडरता से डटी हुई है। अब तक आयोजित नौ विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी की इसी वैश्विक लोकप्रियता के गवाह हैं। नागपुर, मॉरिशस, दिल्ली, फिर मॉरीशस, त्रिनिडाड, लंदन, सूरीनाम, न्यूयॉर्क और जोहांसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में अब तक नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन हो चुके हैं। नागपुर में संपन्न प्रथम सम्मलेन और कुछ आरंभिक सम्मेलनों में प्रमुख रूप से अग्रांकित तीन प्रस्ताव पारित किए गए थे—(1) संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिलवाना, (2) महात्मा गांधी की दीर्घकाल कर्मभूमि-वर्धा में एक विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना और (3) विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक ठोस स्थाई योजना का निर्माण। दूसरे क्रमांक के प्रस्ताव की पूर्ति हेतु वर्धा में 'महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय' की स्थापना हो चुकी है। तीसरे क्रमांक के प्रस्ताव के अमल की दृष्टि से मॉरीशस में 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी सचिवालय' भी बना दिया गया है। परंतु अत्याधिक खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में अन्य छह भाषाओं (चीनी, स्पेनिश, अंग्रेजी, अरबी, रूसी और फ्रेंच) के साथ सातवीं आधिकारिक विश्व-भाषा के रूप में हिंदी सर्वथा योग्य होने के बावजूद मान्यता प्रलंबित है।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर के उद्घाटन समारोह 10 जनवरी, 1975 का वह क्षण विश्व-भाषा के रूप में हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति सभी हिंदी-प्रेमियों को आह्लादित और आश्वासित कर गया था जब सम्मेलन की राष्ट्रीय समिति की ओर से आभार प्रदर्शन के अवसर पर डॉ. कर्णसिंह द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव का भव्य पंडाल में हजारों की संख्या में उपस्थित विश्व-समुदाय ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ हार्दिक स्वागत किया था।

दूसरे शब्दों में यही कि उक्त प्रस्ताव सर्व मत से पारित किया गया। उस प्रस्ताव में विचारार्थ सुझाव देते हुए डॉ. कर्णसिंह ने कहा था कि ''हिंदी जो भारत में जन्मी, पली और पनपी मात्र भारतीय भाषा नहीं अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी है, इस तथ्य की पुष्टि आज यहां हो रही है। करोड़ों व्यक्तियों की यह भाषा विश्व-भाषा के रूप में आए इसके लिए मैं मांग करूंगा कि जिस प्रकार यूनेस्को ने अपने यहां हिंदी को स्थान दिया है उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ में जहां छह अन्य विश्व-भाषाओं को स्थान मिला है वहां हिंदी को भी अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थान मिले।''

ऐसा नहीं है कि इस प्रकार का प्रस्ताव भारत की ओर से आगे आया है। विश्व के कुछ अन्य देशों ने भी हिंदी को विश्व-भाषा का सम्मान दिए जाने की खुले दिलों से सिफारिशें की हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटक मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर

रामगुलाम ने इसी आशय का विचार व्यक्त किया था। हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व को विशद् करते हुए उन्होंने कहा था कि ''हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि यह एक अंतरर्राष्ट्रीय भाषा है। मॉरीशस, सूरीनाम, गियाना, फीजी, अफ्रीका के कई देश इस बात का मान करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है। आज हिंदी अनेक देशों में बोली जाती है। अनेक देशों में हिंदी की पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। बोलने वालों की संख्या को देखते हुए आज हिंदी विश्व की चार प्रमुख भाषाओं में से एक है।'' इसी सम्मेलन में हिंदी के उज्ज्वल भविष्य की पूर्ण आशा व्यक्त करते हुए यूनेस्को के महानिदेशक डॉ. अहदु माहतर एम बो की ओर से यूनेस्को का प्रतिनिधित्व कर रहे श्री अशर डिलियॉन ने कहा था कि ''मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि विश्व में सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में हिंदी का स्थान विश्व-भाषाओं की तुलना में तीसरा है। भारत में राष्ट्रीय भाषा की दृष्टि से हिंदी का स्थान सर्वोपरि है और दस से अधिक देशों में विद्यमान विभिन्न समुदाय इसका प्रयोग करते हैं। इसका साहित्य ज्ञान, दर्शन, कविता एवं विज्ञान का एक बहुत बड़ा भंडार है। निश्चित ही भविष्य में हिंदी भारत में व्यापक जन-भाषा बनेगी। विश्व-भाषा के रूप में ज्ञान एवं संस्कृति के आदान-प्रदान की दृष्टि से इसका विकास हो सकेगा।''

मॉरीशस में सम्पन्न द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में भी हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति पर गहन गंभीर और व्यापक विमर्श हुआ। अनेक विदेशी हिंदी विद्वानों ने हिंदी को उसकी सामर्थ्य के अनुकूल विश्व-भाषा बनाए जाने की पुरजोर वकालत की। एक प्रकार से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी के आधिकारिक भाषा के रूप में सम्मान दिए जाने का समर्थन ही किया। मॉरीशस के कथाकार रामदेव धुरंधर ने कहा, ''आज मॉरीशस इस बात का दुख मानता है कि विश्व में जिस भाषा का स्थान तीसरा है उसे अंतरराष्ट्रीय सम्मान क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है? मॉरीशस का हिंदी जगत भरसक इस प्रयास में लगी है कि हिंदी को अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हो। सब मिल-जुल कर यही प्रयास करें कि हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा बने। हम हिंदी की सेवा करते जाएंगे और तब तक अपने काम को अधूरा समझेंगे जब तक कि हिंदी को अंतरराष्ट्रीय सम्मान नहीं मिल जाता।'' चेकोस्लोवाकिया के ओदोलेन स्मेकल, जापान के के. दोई, अमरीका की श्रीमती कोहिन, इटली के एन. ज्यो. तुर्बियानी, फ्रांस की निकोल बलबीर, स्वीडन के प्रियर्सन, हंगरी की इरा अवादि के साथ ही केनिया, मेडागास्कर, मलावी और तंजानिया के विद्वानों ने भी विश्व-भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दिए जाने के प्रति समर्थन व्यक्त किए।

इसके बाद दिल्ली में आयोजित तृतीय, फिर मॉरीशस में आयोजित चतुर्थ विश्व सम्मेलनों में भी हिंदी को विश्व-भाषा के रूप में स्थापित किए जाने के प्रस्ताव पारित किए गए। परंतु त्रिनिडाडा के सान फरनांडो शहर में आयोजित पांचवें विश्व हिंदी सम्मेलन (1996) का उल्लेखनीय महत्त्व इस बात में है कि इस सम्मेलन में अन्य प्रस्तावों के साथ-साथ यह संकल्प भी पारित किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ से यह अनुरोध किया जाए कि वह अपने शासकीय कार्य में हिंदी को एक अधिकृत भाषा के रूप में स्वीकार करें। यह पहला अवसर था कि पश्चिम के ही किसी देश में हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करने की मांग की गई हो। इनके बाद 1999 में लंदन, 2003 में सूरीनाम, 2007 में न्यूयॉर्क और 2012 में जोहांसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में आयोजित क्रमशः छठे, सातवें, आठवें और नौवें विश्व हिंदी सम्मेलनों में भी हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में सम्मानित किए जाने के संदर्भ में प्रस्ताव पारित किए गए।

विश्व हिंदी सम्मेलनों का जबरदस्त प्रभाव यह हुआ है कि आज विश्व में सत्तर से अधिक देशों में हिंदी ने अपना अस्तित्व दर्ज करवाया है। भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों और विश्व के लगभग 110 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की सुविधाएं उपलब्ध हैं। सरकारी दस्तावेजों के अनुसार विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या 55 करोड़ है जबकि एक गैर-सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार यह संख्या 01 अरब, 10 करोड़ 30 लाख के आसपास है (डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, भाषा शोध अध्ययन)। संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषाओं के रूप में अग्रांकित छः भाषाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त है—चीनी 80 करोड़, स्पेनिश 40 करोड़, अंग्रेजी 40 करोड़, अरबी 20 करोड़, रूसी 17 करोड़ और फ्रेंच मात्र 09 करोड़। सरकारी दस्तावेजों के अनुसार भी मान लिया जाए तो संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी क्रमांक दो की अधिकारिणी है कि भारत में ही सरकारी और गैर-सरकारी दोनों स्तरों पर इस राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए अब तक गंभीर पैरवी न की गई है और न आज भी की जा रही है।

मेरे चिंतन के अनुसार हिंदी को विश्व-भाषा बनाकर संयुक्त राष्ट्र संघ में सातवीं भाषा के रूप में आरूढ़ करने के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा भारतीय अध्यात्म है जिसने सदा यही दीक्षा दी है कि हो जाएगा, जल्दी क्या है? ईश्वर पर भरोसा रखो सब्र का फल मीठा होता है। धैर्य रखो, और वैसे भी दुनिया अभी डूब तो नहीं रही। सरकारी महकमों में किसी भी मुद्दे पर कार्रवाई का प्रथम चरण वह संस्कार होता जिसके तहत विषय को विचाराधीन रखा जाता है जिसकी कोई अवधि निश्चित नहीं होती। इस विचाराधीन की लघुता या दीर्घता संबंधित कर्मचारी-अधिकारी के मूड या मर्जी पर निर्भर करती है। हिंदी इसी विचाराधीन की प्रक्रिया की शिकार हो गई है। बात यूं है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा बनाने के लिए जनरल असेंबली के सभा भवन में कुछ ढांचागत आवश्यक परिवर्तन करने पड़ेंगे। बिजली, साफ्टवेयर, ध्वनि प्रक्षेपण संबंधी उपकरणों की व्यवस्था करनी होगी। भारत सरकार की ओर से इसके लिए आर्थिक प्रावधान करना होगा। विशेषज्ञों के अनुसार यह खर्च डेढ़ अरब रुपयों से कुछ अधिक ही होगा। अब आपकी समझ में आ गया होगा कि 1975 में संपन्न प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रथम क्रमांक पर पारित यह प्रस्ताव साकार क्यों नहीं हुआ। वास्तव में भारत की अस्मिता,

उसके स्वाभिमान और राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से यह राशि कोई माने नहीं रखती परंतु... हरि अनंत, हरि कथा अनंता। खैर! अब गैर-सरकारी स्तर पर विराजमान अवरोधकों अथवा गतिरोधों का भी जायजा लिया जाए। इस संदर्भ में मेरे मंतव्य को भी समाहित करने वाला चेकोस्लोवाकिया के हिंदी विद्वान प्राध्यापक श्री ओदोलेन स्मेकल के द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस में दिए गए वक्तव्य का एक अंश यहां उद्धृत कर देना पर्याप्त जान पड़ता है। उन्होंने कहा था कि ''खेद की बात है भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रायः तीस वर्ष बीतने पर अभी तक एक सीमित किंतु प्रभावकारी विशिष्ट जनश्रेणी है, कुछ सुशिक्षित लोग तथा कुछ प्राधिकारी हैं, जो समझ लेते हैं कि विदेशी भाषा को बोलने से उसे स्वदेश में बनाए रखने से उन्हें संसार में गौरव प्राप्त होगा। मेरी दृष्टि में जो स्वदेशी सज्जन अपनी भाषा, अपनी मातृभाषा या अपनी मूल भारतीय भाषा या भारतीय भाषाओं की उपेक्षा करके एक विदेशी भाषा का प्रयोग प्रातः से रात तक करते हैं वे अपने देश में स्वदेशी नहीं परदेशी हैं। इससे वे अपनी दास मनोवृत्ति का ही परिचय कराते हैं और इसी प्रकार अपने देश में विदेशी भाषा बोल कर चाहे वे कितने ही चमत्कृत रूप से उस विदेशी को क्यों न बोले उनकी जीभ और होठों पर रखे हुए दर्पण उनके मानसिक-वैचारिक पिछड़ेपन का स्पष्टतया अनावरण कर देते हैं।''

इस संदर्भ में मॉरीशस के लेखक श्री सोमदत्त बखौरी के विचार भी अवलोकनीय हैं। अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका पर वक्तव्य में उन्होंने कहा, ''हिंदी को राष्ट्र संघ में स्थान मिलना चाहिए पर जब हम ही उसकी इज्जत करने को तैयार नहीं, तब राष्ट्र संघ तक ले जाने की बात सोचता हूं तो यह सोचते ही रह जाता हूं कि जिस दिन हिंदी वहां आसीन होगी तो हमारे उदासीन लोगों में से कौन उसका स्वागत करेगा! जब शिकायत आज इस बात की है कि भारतीय दूतावासों में भी हिंदी की अवहेलना हो रही है तब मैं अपने आप से प्रश्न पूछता हूं कि राष्ट्र संघ में उसको बोलने वाला कौन होगा। घर को अंधेरे में छोड़कर मस्जिद में कैसे दिया जला सकते हैं।''

श्री ओदोलेन स्मेकल और श्री सोमदत्त बखौरी की उक्त टिप्पणियों में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थापित करने के लिए भारत की ओर से अपेक्षित प्रयासों का अभाव द्रष्टव्य है जो दुर्भाग्यपूर्ण है और ऐसी स्थिति में तो और भी पीड़ादाई है जब विश्व के अनेक देश संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को पहुंचने और देखने के लिए उत्साही और प्रतीक्षारत हैं। हिंदी के दुर्भाग्य का एक और अजीबो-गरीब नजारा देखिए। विगत कुछ वर्षों से हिंदी-बिंदी-धारी जाफरों-जयचंदों की मिलीभगत से देश में हिंदी को काट-छांट कर दुर्बल बनाने का व्यापक षड्यंत्र सक्रिय हैं। इसी के तहत कुछ अदूरदर्शी, अज्ञानी और निपट स्वार्थी लोगों ने हिंदी की कुछ बोलियों को भाषा का दर्जा प्राप्त करा देकर राजभाषा अधिनियम की आठवीं सूची में दर्ज करा देने का घिनौना अभियान चला रखा है और यह भी महज राजभाषा के नाते मिलने वाली कुछ सरकारी सुविधाओं-रियायतों के लालच में। हिंदी की खाकर विदेशी का गुणगान करने वाले ये चारण-भाट और जिस पत्तल में खाएं उसी में छेद करने वाली निकृष्ट संस्कृति में पले साईस क्या जाने स्वदेशी स्वाभिमान क्या होता है? ये किसी वशीकरण के अधीन यह भूल गए हैं कि इनके इस अभियान के दुष्परिणाम स्वरूप विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या घटेगी जो हिंदी को विश्व-भाषा बनाकर संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा बनाने के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा बनेगा।

हिंदी के इस दुर्भाग्य को भांप कर मैंने अग्रिम चार पंक्तियों में मेरे एक लेख 'हिंदी पर गहराता संकट' में सखेद अभिव्यक्ति दी थी—

''क्या बात है कि दुर्दिन हिंदी के बढ़ रहे हैं,
उसके ही सगे हिंदी का दुर्भाग्य गढ़ रहे हैं,
भयभीत सूर तुलसी मीरा सिसक रही है,
वाणी कबीर की भी, क्षण भर ठिठक रही है।''

हिंदी के जबरदस्त पैरवीकार विख्यात कवि गोपाल सिंह नेपाली ने भी अपनी कविता 'हिंदी है भारत की बोली' में हिंदी के प्रति अन्याय-अत्याचार करने वालों को फटकारते हुए कहा था—

''दो वर्तमान को सत्य,
सरल सुंदर भविष्य के सपने दो,
हिंदी है भारत की बोली,
तो अपने आप पनपने दो।
वह दुखड़ों का जंजाल नहीं,
लाखों मुखड़ों की भाषा है।
थी अमर शहीदों की आशा,
अब जिंदों की अभिलाषा है।।
क्यों काट रहे पर पंछी के
पहुंची न अभी यह गांवों तक।
क्यों रखते हो सीमित इसको,
तुम सदियों से प्रस्तावों तक।।
औरों की भिक्ष से पहले
तुम इसे सहारे अपने दो।
हिंदी है भारत की बोली,
तो अपने आप पनपने दो।
जो युग-युग से रह गए अड़े,
मत उन्हीं अक्षरों को काटो।
यह जंगली झाड़ न, भाषा है,
मत हाथ पांव इसके छांटो।।
अपनी झोली से कुछ न लुटे,
औरों को इसमें खपने दो।
हिंदी है भारत की बोली,
तो अपने आप पनपने दो।
प्रतिभा हो तो कुछ सृष्टि करो,
सदियों की बनी बिगाड़ो मत।
कवि सूर, बिहारी, तुलसी का,
यह बिरवा नरम, उखाड़ो मत।।''

भारत की हिंदी प्रकृति से अपार ऊर्जस्वी है। इसे केवल उन्मुक्त और प्रशस्त मार्ग उपलब्ध करा देना पर्याप्त होगा। उसे अपने आप पनपने, बढ़ने और फैलते रहने का ईश्वरीय वरदान है। आइए, सब मिल कर हिंदी-के इस मेराथन-यज्ञ में अपने-अपने हिस्सों की समिधाएं अर्पण करें।

104, एफ-01, सक्सेस टॉवर्स, स्टेट बैंक नगर,
पंचवटी, पाषाण मार्ग, पुणे-411008

विक्रमशिला महाविहार के आचार्य दीपांकर का बौद्ध दर्शन

कुमार कृष्णन

देश में बौद्ध धर्म के इतिहास में विक्रमशिला महाविहार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म, दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में नालंदा और तक्षशिला की तरह इसका अप्रतिम योगदान रहा है। प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकाल की संधि वेला में पाल वंश के संस्थापक गोपाल के उत्तराधिकारी पुत्र धर्मपाल द्वारा संस्थापित यह बौद्ध महाविहार लगभग चार सौ वर्षों तक न सिर्फ भारत, अपितु तिब्बत, चीन, सिलोन, लंका सहित विश्व के कई देशों में ज्ञान की ज्योति बिखेरता रहा। नालंदा, ओदंतपुरी, सोमपुरी, जगदला जैसे बौद्ध महाविहार इसके समकालीन थे। भागलपुर जिला के कहलगांव अनुमंडल स्थित अंतीचक गांव में स्थित विक्रमशिला के प्राचीन खंडहर और पुरावशेष आज भी इसके प्राचीन गौरव गाथा के मूक साक्षी हैं। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म, जिसका अनुसरण कर भारतीय और विश्व जनमानस को एक नई दिशा और दशा मिली, जब कालक्रम में कतिपय इतर बातों के समावेश से लड़खड़ाने लगा, तब विक्रमशिला के आचार्यों ने, जिनमें दीपांकर श्रीज्ञान अतिश का नाम अग्रणी है, इसके पुनरुद्धार और पुनरुत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। तंत्र शास्त्र और महायान का प्रमुख केंद्र होने के बावजूद विक्रमशिला के आचार्यों ने अहिंसा, परोपकार, परमार्थ और सात्विक जीवन के संदेशों को उद्घोषित करते हुए बौद्ध धर्म और दर्शन के परचम लहराए।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्य दीपांकर श्रीज्ञान अतिश का एक दुर्लभ रेखाचित्र।

विक्रमशिला के उत्खनन से प्राप्त विभिन्न चैत्य, विहार, प्रदक्षिणा-पथ मृणमृतियों के पैनल एवं भगवान बुद्ध तथा अन्य देवी-

भागलपुर जिलांतर्गत अंतीयक ग्राम स्थित पुरातात्त्विक विक्रमशिला विश्वविद्यालय बौद्ध महाविहार के मुख्य बौद्ध स्तूप के भग्नावशेषों का एक दृश्य।

देवताओं की मूर्तियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि यह विश्वविद्यालय योजनाबद्ध तरीके से निर्मित था, किंतु यह भी विडम्बना है कि नालंदा की तरह महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद इस विश्वविद्यालय कोई प्रमाणिक विवरण उपलब्ध नहीं हो पाया है। पर लामा तारानाथ के ग्रंथों और अन्य तिब्बती साहित्य में इसके बारे में विस्तृत विवरण उपलब्ध है। कहा जाता है कि इस बौद्ध विहार में 160 शिक्षक थे और करीब एक हजार छात्र यहां रह कर विद्या अध्ययन करते थे। यहां पर एक बहुत बड़ा खुला स्थान था, जहां पर एक साथ दस हजार लोग बैठ कर सभा कर सकते थे। सारनाथ, सांची, बोध गया आदि महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थलों की तरह यहां पर भी एक विशाल बौद्ध विहार निर्मित था।

उपलब्ध विवरणों से ज्ञात होता है कि विक्रमशिला विश्वविद्यालय के शिक्षक ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए दूर-दूर तक जाते थे। यहां के विद्वान सुवर्णद्वीप, चीन, तिब्बत, नेपाल एवं अन्य देशों में गए और सफलतापूर्वक शिक्षण कार्य किए। यही नहीं, अपने समय का देश के सर्वोच्च सांस्कृतिक एवं बौद्ध ज्ञान का केन्द्र होने के कारण देश-विदेश के विभिन्न स्थानों से विद्वत-वृन्द एवं आचार्यगण यहां एकत्रित होकर ज्ञान की गुत्थियों को सुलझाते थे।

धर्म, ज्ञान, दर्शन, कला और संस्कृति की संगम-स्थली विक्रमशिला के स्वर्णिम क्षितिज पर कालांतर में कई आचार्य, पंडित, विद्वान और सिद्ध पुरुष के रूप में उभरे। इनमें से जंतारी, रत्नाकर शांति, अभयंकर गुप्त, शाक्य श्रीमद, प्रभाकर मति, बागीश्वर श्री, नरोपंत, रत्नव्रज के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं, किंतु विक्रमशिला के इस आभावान विद्वत नक्षत्र मंडल में दो विद्वानों के नाम सर्वोच्च हैं और वे हैं—बुद्ध ज्ञानपद और श्रीज्ञान दीपांकर अतिश। हरिमद के शिष्य तथा विक्रमशिला के संस्थापक पालवंशीय राजा धर्मपाल के आध्यात्मिक गुरु बुद्ध ज्ञानपद की प्रेरणा से तथा इन्हीं की देखरेख में इस विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। जहां बुद्ध ज्ञानपद विक्रमशिला के प्रथम आचार्य थे, वहीं श्रीज्ञान दीपांकर अतिश इसके अंतिम प्रमुख आचार्य थे और अपने ज्ञान को सार्थक करते हुए उन्होंने ज्ञान की ऐसी ज्योति बिखेरी कि अपने पूर्व के आचार्यों की दीप्त को धूमिल कर दिया।

पाल वंश के राजा नयपाल और उनके पुत्र विग्रह पाल तृतीय (1033-1076 ई.) के काल में विक्रमशिला अपनी समृद्धि के उच्चतम बिंदु पर पहुंच गया था और उस समय इस महाविहार में अनेकानेक विद्वान पठन-पाठन में रत थे, जिनमें अतिश दीपांकर श्रीज्ञान का नाम सबसे अगली पंक्ति में था। इनकी गणना भारत के महानतम और प्रमुख विद्वानों में होती है।

आचार्य श्रीज्ञान दीपांकर अतिश का जन्म सन् 980 ई. में भागलपुर से करीब 5 मील पूर्व सबौर के निकट हुआ था। भोटिया ग्रंथों में सबौर का उल्लेख 'सहोर' के नाम से आया है। इनका मूल नाम चन्द्रगर्भा था और ये आचार्य जेतरी के शिष्य थे। पुराविशेषज्ञ श्री अजय कुमार सिन्हा के अनुसार ओदंतपुरी विहार के शिक्षक शीलरक्षित के द्वारा इनका नाम 'दीपांकर श्रीज्ञान' रखा गया।

लगभग दो सौ मूल पुस्तकों और कई अनुवादों के रचयिता दीपांकर को बौद्ध दर्शन के माध्यमिक तथा योगाचार शाखा के महायान तंत्र के तीनों पीठकों में सिद्धहस्तता प्राप्त थी। गौरतलब है कि विक्रमशिला बौद्ध दर्शन के अतिरिक्त तंत्र साधना का भी महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया था और यहां पर तंत्र शाखा के बलि आचार्य और होम आचार्य के भी प्रावधान थे। आचार्य दीपांकर तंत्र शास्त्र में भी निपुण थे और तांत्रिक सिद्ध के रूप में वे 'गुच्छ ज्ञानवज्र' के नाम से जानते जाते थे। तंत्र साधना की स्थली बन जाने के कारण विक्रमशिला महाविहार में भी इनकी खूबियों के समस्त खामियों का घर प्रवेश सहज सा हो गया था, किंतु शालीन और संतुलित व्यक्तित्व के स्वामी आचार्य श्री दीपांकर तंत्र को अघोरी और निकृष्ट क्रियाकलापों तथा इसके चमत्कारिक प्रयोगों के विरुद्ध थे। यही कारण है कि उन्होंने मैत्रीगुप्त नामक एक बौद्ध तांत्रिक साधक को विक्रमशिला से निष्कासित कर दिया था। मैत्रीगुप्त अपनी तंत्र शक्ति के बल पर दूध को मदिरा में परिवर्तित कर

भागलपुर जिलांतर्गत अंतीयक ग्राम स्थित पुरातात्त्विक महत्त्वपूर्ण विक्रमशिला महा बौद्ध विहार के प्रस्तर कलाकृतियों के भग्नावशेष।

देता था। बौद्ध धर्म के विकास में तिब्बत का महत्त्वपूर्ण स्थान है और तिब्बत में बौद्ध धर्म की नींव को मजबूत करने और इसे पुनर्स्थापित करने में विक्रमशिला के आचार्यों की भूमिका श्लाघनीय है, जिनमें श्रीज्ञान दीपांकर का स्थान परम विशिष्ट है। विक्रमशिला के पूर्व नालंदा ने तिब्बत में बौद्ध धर्म के विकास में अहम् भूमिका अदा की। नालंदा के शांति रक्षित जो तिब्बत में आचार्य 'बोधिसत्व' के नाम से जाने जाते हैं, ने वहां बौद्ध धर्म की आधारशिला रखी थी।

विक्रमशिला और तिब्बत का संबंध अत्यंत पुराना रहा है। तिब्बत के बौद्ध शिक्षित यहां आकर अध्ययन करते थे और यहां के आचार्य बराबर तिब्बत जाया करते थे। आचार्य दीपांकर श्रीज्ञान अतिश सन् 1042 में नेपाल होते हुए विक्रमशिला से तिब्बत गए। उनके साथ लगभग तीन दर्जन विद्वान भी तिब्बत गए, जिनमें से क्षितिगर्भ या भूमिगर्भ, भूमिसंघ, वीर्यचंद्र, परहितभद्र आदि नाम प्रमुख हैं। तिब्बत जाकर अतिश ने तिब्बती बौद्ध धर्म में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। इस परिवर्तन और परिमार्जन के उपरोक्त बौद्ध धर्म को तिब्बत के राष्ट्रीय धर्म के रूप में मान्यता मिली। उन्होंने अपने उपदेशों का आधार योगाचार परंपरा को बनाया, हीनयान और महायान के उपबंधों पर समन्वित दृष्टिकोण अपनाया तथा जादूगरी करतबों को हतोत्साहित कर भिक्षुओं के महात्म्य को पुनर्स्थापित किया। अतिश अपने साथ 'लामावाद' को भी तिब्बत ले गए, जिसकी जड़ें विक्रमशिला में विकसित तांत्रिक महायान बौद्ध धर्म में सन्निहित थी। वे तिब्बत में लामावाद के सबसे बड़े सुधारक माने जाते हैं। वंशवादी इतर तत्त्वों को दूर कर उन्होंने बौद्ध धर्म में मानो एक प्रकार का पुनर्जागरण ही ला दिया। तिब्बती बौद्ध धर्म के इतिहास में अतिश का आगमन सबसे बड़ी घटना मानी जाती है।

अतिश के उपदेश मानवीय तत्त्वों पर आधारित होते थे। उनके संदेश का सार था—''इस क्षणभंगुर संसार के दुखों को सहना अत्यंत दुष्कर कार्य है अतः मनुष्य को सभी जीवित प्राणियों की भलाई के लिए मेहनत करनी चाहिए।'' तिब्बत में अतिश की मान्यता इस बात से समझी जासकती है कि वहां उन्हें 'जंजुश्री' का अवतार माना जाता है और भगवान बुद्ध और पद्मसंभव के बाद उनकी ही गणना होती है।

आचार्य दीपांकर श्रीज्ञान अतिश ने तत्कालीन

भागलपुर के अंतीयक ग्राम स्थित पुरातात्त्विक महत्त्वपूर्ण विक्रमशिला विश्वविद्यालय के बौद्ध महाविहार के भग्नावशेषों का एक दृश्य।

स्थितियों को देखते हुए 'प्रज्ञापारगिता' के सिद्धांतों को परिवर्तित करते हुए उच्चम नैतिक मूल्यों के अनुसरण पर विशेष बल दिया। जिसका ज्वलंत उदाहरण तिब्बत प्रवास के दौरान रचित कृति 'बोधि-पथ-प्रदीप' है। 'प्रज्ञा' को उच्चतम ज्ञान की संज्ञा देते हुए कहा कि यह संसार के समस्त वस्तुओं में अंतर्निहित 'शून्यता' के भाव का अर्जन है, जिसे 'स्वभाव शून्यता' कहा जाता है। किंतु इसकी प्राप्ति के लिए सद्वृत्ति अर्थात् 'उपाय' पर बल दिया। उन्होंने अपने उपदेशों में कहा कि 'उपाय' के बिना 'प्रज्ञा' और 'प्रज्ञा' के बिना 'उपाय' निरर्थक है। प्रज्ञा और उपाय के अस्तित्व संबंधी संशयों को करने हेतु उन्होंने दोनों के बीच भेद को स्पष्ट किया। सभी साधनाओं पर विजय प्राप्त करने वाले जीन साधकों ने भी कहा है कि 'दान पर मिता' आदि सरीखे जितने भी 'कुशल धर्म' हैं—वे सभी उपाय हैं। कोई भी सिर्फ 'शून्य' पर ध्यान करके अर्थात् 'नैरात्म्य' द्वारा 'बोधि' प्राप्त नहीं कर सकता, वरन् उसे सर्वप्रथम 'उपाय अभ्यास' में महारत हासिल करना होता है। बौद्ध आचार्यों ने भी छह पारमिताओं को मान्यता दी है जिनमें दान अर्थात् 'दानपरमिता', नैतिक अर्थात् 'शील पारमिता', क्षमा अर्थात् 'क्षांति पारमिता', ब्रह्मचर्य अर्थात् 'वीर्य पारमिता', ध्यान अर्थात् 'ध्यान पारमिता' और ज्ञान अर्थात् 'प्रज्ञा पारमिता' सन्निहित हैं।

आचार्य दीपांकर के सिद्धांतों के अनुसार उक्त छह पारमिताओं में से प्रथम पांच 'उपाय' से संबंधित हैं जिनकी अधिप्राप्ति के आधार पर ही 'ज्ञान' अर्थात् 'प्रज्ञा' की स्थापना हो सकती है। अर्थात् दान, नैतिक उत्थान, दया, ब्रह्मचर्य और ध्यान का अनुसरण दार्शनिक बोध प्राप्त करने की पूर्व शर्त है। दीपांकर ने बार-बार सच्चे बौद्ध के लिए नैतिक आचरण को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। दीपांकर के काल में बौद्ध तांत्रिकों का बोलबाला था जो तंत्र साधना के 'पंचमकारों' में निर्लिप्त थे और उसे लिए आध्यात्मिक उपलब्धियों से ज्यादा सांसारिक सुखों का ज्यादा महत्त्व थाा जिनकी चपेट में आकर बौद्ध धर्म पतनोन्मुखी हो गया था। इस विषम परिस्थित में आचार्य दीपांकर ने अपने उपदेशों को महायान बौद्ध शाखा के आधारभूत तत्त्वों पर और इसके शास्त्रीय तंत्र पूर्व स्वरूप पर केंद्रित किया। तंत्र साधना के नाम पर अधम कृत्यों के स्थान पर उन्होंने ध्यान और सात्विकता पर विशेष बल दिया। आचार्य दीपांकर के ज्ञान प्रभा मंडल के आलोक में तांत्रिक बौद्धों के विचार धूमिल पड़ गए और उन्होंने उनके तथ्यों को अंगीकार किया जिससे बौद्ध धर्म के उत्थान को ऊर्ध्व गति प्राप्त हुई।

समय के अंतराल में विक्रमशिला के आचार्यों की अमर वाणी और आचार्य श्री ज्ञान दीपांकर के अनमोल वचन आज विस्मृत हो गए हैं जबकि आज के युग में भी इनकी अप्रतिम प्रासंगिकता है। आज न सिर्फ विक्रमशिला के प्राचीन पुरातात्त्विक धरोहरों के उत्खनन की आवश्यकता है, वरन् इससे भी ज्यादा यहां के आचार्यों की अमर वाणी को उकेरने की उतनी ही जरूरत है।

द्वारा श्री बनारसी ठाकुर, दशभूजी स्थान रोड,
मोगल बाजार, मुंगेर, बिहार-811201

विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा-शिक्षण

डॉ. विमलेश कांति वर्मा

विदेश में विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं का अध्ययन यद्यपि 19वीं शती के उत्तरार्ध में ही प्रारंभ हो गया था किंतु वह मुख्य रूप से संस्कृतोन्मुख था। हिंदी शिक्षण का प्रारंभ विश्वविद्यालय स्तर पर फ्रांस में 1828 ई. में, रूस में 1918 ई., जर्मनी में 1921 ई., चेकोस्लोवाकिया में 1925 ई. तथा स्वीडन में 1938 ई. में किसी न किसी रूप में प्रारंभ हो चुका था पर द्वितीय विश्वयुद्ध तक आधुनिक भारतीय भाषाओं का अध्ययन और अध्यापन व्यवस्थित रूप से नहीं होता था। सच तो यह है कि ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के व्यापक प्रचार के लिए सबसे पहले हिंदी सीखी और हिंदी सिखाने के लिए शिक्षण सामग्री तैयार की।

1947 में भारत के स्वाधीन होने पर तथा 1950 में भारत के गणतंत्र घोषित होने पर हिंदी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र वाले देश की राजभाषा घोषित हुई। हिंदी भारत के 11 बड़े प्रदेशों की मातृभाषा तथा संपूर्ण भारत की प्रमुख संपर्क भाषा भी थी। सबसे बड़े भूभाग की भाषा, सबसे अधिक व्यक्तियों द्वारा बोली जाने वाली मातृभाषा तथा राष्ट्रीय प्रश्रय प्राप्त राजभाषा हिंदी समस्त विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण भाषा मानी गई। विदेशियों को यह भी पता चला कि भारत के समाज, साहित्य, धर्म-दर्शन, रीति-नीति, आचार-विचार को समझने के लिए हिंदी अनिवार्य है। विश्व के विविध देशों में बसे हुए दो करोड़ से भी अधिक प्रवासी भारतीय हिंदी को अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक मानते हैं और हिंदी की सुरक्षा तथा प्रतिष्ठा के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। भारत में अंग्रेजी की वर्चस्विता की बातें बाहरी रूप में सही लगती हैं किंतु विदेशी यह अनुभव करने लगे कि भारत को समझने के लिए हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान आवश्यक है। परिणाम स्वरूप विश्व के सभी प्रमुख देशों ने हिंदी भाषा अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था अपने देश में करनी चाही।

आज हिंदी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में हो रहा है। यह हिंदी भाषा का अध्ययन स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर तक तो अनेक विश्वविद्यालयों में है ही, अनेक विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर भी हिंदी का अध्ययन हो रहा है। अवधेय है कि लंदन विश्वविद्यालय ने तो 'तुलसी के धर्म दर्शन' विषय पर डॉ. जे.ई. कारपेंटर को 1918 ई. में ही शोध की उच्चतम उपाधि डी.लिट्. प्रदान की थी। रूस, चीन, जापान, जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका आदि कितने ही देशों में हिंदी भाषा और साहित्य पर अनेक विद्यार्थी आज अनुसंधान कर रहे हैं। यदि महाद्वीपों के आधार पर विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की स्थित पर विचार करना प्रारंभ करें तो एशिया महाद्वीप में नेपाल के त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन उच्च स्तर पर विश्वविद्यालय के विराट नगर, राज विराज, जनकपुर, वीरगंज तथा पद्मकथा परिसर में स्नातक स्तर पर होता है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय के केंद्रीय हिंदी विभाग, कीर्तिपुर, काठमांडू में स्नातकोत्तर तथा पी.एच.डी. स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन वर्षों से हो रहा है। नेपाल के त्रिभुवन विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर प्रो. सूर्यनाथ गोप के निर्देशन में अनेक छात्रों ने शोध स्तर पर अच्छा कार्य भी किया है। श्रीलंका के कलणिय विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन विभाग की स्थापना सन् 1995 में हुई थी तथा यहां बी.ए. ऑनर्स तथा एम.ए. हिंदी की तो व्यवस्था है ही साथ ही हिंदी का द्विवर्षीय पाठ्यक्रम भी चलता है जिसमें पर्याप्त छात्र संख्या होती है। श्रीलंका की प्रमुख हिंदी विद्वान प्रो. इंद्रा दसनायके के निर्देशन में कलणिय विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य के विविध पक्षों पर पर्याप्त कार्य हुआ है। जापान के तोस्यो तथा ओसाका के विदेशी भाषा विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन बी.ए. तथा एम.ए. स्तर का है जबकि ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन तोकाई विश्वविद्यालय, ताइशो विश्वविद्यालय, ताकुशोक, ओतानी तथा यूकोक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। जापान के हिंदी शिक्षण से जुड़े विद्वानों में प्रो. क्यूया दोई, प्रो. एइजो सावा, प्रो. कात्सुरा कोगा, प्रो. काजुहिको माचिा, डॉ. तोमिओ मिजोकामी तथा प्रो. तोशियो तनाका हैं। इन सभी विद्वानों ने जहां अपने विश्वविद्यालयों में हिंदी के व्यवस्थित शिक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं का जापानी भाषा में अनुवाद किया है तथा हिंदी-जापानी हिंदी शब्दकोश भी तैयार किए हैं।

चीन में हिंदी शिक्षण की नियमित व्यवस्था का प्रारंभ सन् 1942 ई. में खुनमिड् के स्कूल ऑफ ओरिएंटल लैंगवेज लिटरेचर में हिंदी के द्विवर्षीय पाठ्यक्रम से हुआ था। चीन के बीजिंग विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण की अच्छी व्यवस्था है।

यूरोप महाद्वीप में हिंदी भाषा का शिक्षण बहुत व्यापक स्तर पर पर्याप्त समय से हो रहा है और यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की सुदीर्घ, सुप्रतिष्ठित परंपरा है। यदि हम रूस की बात करें तो मास्को की मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी के एशिया अफ्रीका संस्थान में, मास्को अंतर्राष्ट्रीय संबंध संस्थान में तथा लेनिनग्राद स्टेट यूनिवर्सिटी में छह वर्षीय हिंदी पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। ये तीनों ही संस्थान हिंदी अध्ययन-अनुसंधान के प्रमुख पीठ कहे जा सकते हैं। रूस में हिंदी भाषा तथा साहित्य शिक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों में बारान्निकोव, प्रो. चेलीशेव, प्रो. सेंकोविच, प्रो. बरखूदारोव, प्रो. दीमशित्स, प्रो. उल्त्सफेरोव आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यूक्रेन के किएव विश्वविद्यालय, उजबेकिस्तान के ताशकंद विश्वविद्यालय, तजाकिस्तान की ताजिक स्टेट यूनिवर्सिटी में स्नातकोत्तर स्तर तक हिंदी का शिक्षण होता है।

चेक गणराज्य की राजधनी प्राग के चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम 1949 ई. से चल रहा है। हिंदी का अध्ययन यहां प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक होता है। विनसेंट पोरिश्का तथा ओदोलेन स्मेकल इस विश्वविद्यालय के प्रमुख प्राध्यापक विद्वान रहे हैं और इन्होंने हिंदी की महत्त्वपूर्ण शिक्षण सामग्री तैयार की है।

पोलैंड की राजधानी में स्थित वार्सा विश्वविद्यालय हिंदी शिक्षण का महत्त्वपूर्ण शिक्षा केंद्र 1955 ई. से बना हुआ है। प्रो. तात्याना रुत्कोवस्का तथा प्रो. बृस्की हिंदी भाषा और साहित्य पर महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले पोलिश विद्वान हैं। बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय, युगोस्लाविया के बेलग्रेड तथा जागरेव विश्वविद्यालय, हंगरी के लोरांद विश्वविद्यालय तथा रोमानिया के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण की समुचित व्यवस्था है और द्विवर्षीय पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर तक अध्ययन की व्यवस्था है।

इंग्लैंड, जर्मनी तथा फ्रांस और इटली में हिंदी शिक्षण की सुदीर्घ परंपरा है। इंग्लैंड में हिंदी का स्नातकोत्तर स्तर का पाठ्यक्रम लंदन विश्वविद्यालय, कैंब्रिज विश्वविद्यालय तथा यार्क विश्वविद्यालय में है। कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के प्रो. आर. एस. मैकग्रेगर ने महत्त्वपूर्ण हिंदी शिक्षण सामग्री तैयार की है। Outline of Hindi Grammar, Exercises in Spoken Hindi, Oxford Hindi-English Dictionary इनकी महत्त्वपूर्ण हिंदी शिक्षण संबंधी उपयोगी कृतियां हैं। जर्मनी के लगभग 20 विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन की व्यवस्था है। जर्मन भाषा के माध्यम से हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की प्रभूत सामग्री हिंदी अध्यापकों ने तैयार की है। फ्रांस के सोबर्न तथा पेरिस के प्राच्य भाषाओं और सभ्यताओं के राष्ट्रीय संस्थान में क्रमशः चार, पांच तथा छह वर्षों के पाठ्यक्रम हैं। इटली में नेपल्स के ओरिएंटल विश्वविद्यालय तथा रोम और वेनिस विश्वविद्यालयों में शोध स्तर तक के हिंदी पाठ्यक्रम हैं। स्पेन, बेल्जियम, आस्ट्रिया, हालैंड, स्वीडन आदि सभी देशों में आज विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी अध्ययन किया जा सकता है।

आज विश्व में हिंदी भाषा और साहित्य का सबसे व्यापक स्तर पर अध्ययन प्राथमिक स्तर से लेकर शोध स्तर तक अमेरिका में हो रहा है। अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालय तो हिंदी अनुसंधान के केंद्र बन गए हैं। पेनसिलवेनिया, कैलीफोर्निया, हावर्ड, टैक्सास, मिशीगन, कार्नेल, बर्कले आदि में हिंदी शिक्षण की अच्छी व्यवस्था है। व्यापक स्तर पर स्तरीकृत हिंदी शिक्षण सामग्री तैयार है तथा हिंदी का अध्ययन कर विद्यार्थियों के व्यावहारिक ज्ञान के लिए भारत आकर हिंदी का अध्ययन करने की भी व्यवस्था है। अमेरिकी विद्वान डॉ. शोमर के अनुसार अमेरिका के 113 विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है।

आस्ट्रेलिया महाद्वीप के देशों में आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय आस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में, लात्राब में, सिडनी और मेलबोर्न के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर होता है।

विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण के संबंध में निम्नलिखित बिंदु विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं–

- हिंदी शिक्षण की व्यवस्था विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रारंभिक स्तर से लेकर शोध स्तर तक है पर द्विवर्षीय पाठ्यक्रम तक छात्रों की संख्या अधिक होती है और वे हिंदी भाषा का अपने भारत प्रवास में व्यावहारिक उपयोग कर सकें इसलिए वे हिंदी सीखना चाहते हैं।
- सभी देशों में हिंदी भाषा का अध्ययन देश की अपनी भाषा में होता है तथा शिक्षा सामग्री भी उस देश की भाषा में होती है जिससे उस देश के विद्यार्थी ही उसका उपयोग कर सकते हैं। इसके पीछे धारणा यही है कि शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मातृभाषा ही होती है।
- शिक्षण सामग्री हर विश्वविद्यालय की तथा हर अध्यापक ही अलग-अलग है। जो अध्यापक जो चाहता है, जैसा चाहता है, पढ़ाता है।
- हर विश्वविद्यालय का विभिन्न स्तरों का अपना हिंदी पाठ्यक्रम है।

- विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की सुदीर्घ और सुव्यवस्थित शिक्षण परंपरा है। इनके अनुसंधानात्मक योगदान को देखते हुए उन्हें हम 'हिंदी पीठ' की संज्ञा भी दे सकते हैं। रूस के मास्को विश्वविद्यालय या लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, उजबेकिस्तान का ताशकंद विश्वविद्यालय, जर्मनी का हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय, चेक गणराज्य का प्राग विश्वविद्यालय, जापान का तोक्यो तथा ओसाका विश्वविद्यालय, लंदन विश्वविद्यालय, अमेरिका के पेनासिलबेनिया, बर्कले, टेक्सास आदि विश्वविद्यालय हिंदी शिक्षण के महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं।

आवश्यकता आज इस बात की है कि विदेशी विश्वविद्यालयों के हिंदी शिक्षण कार्य में लगे हुए हिंदी प्राध्यापकों का एक अंतरराष्ट्रीय मंच तैयार हो जहां वे नियमित रूप से हिंदी शिक्षण संबंधी समस्याओं पर पारस्परिक विनिमय कर सकें।

विभिन्न शिक्षण केंद्रों के पाठ्यक्रमों की विविधता को देखते हुए मैंने यह भी अनुभव किया है कि जब विदेशी विद्यार्थी अपने-अपने विश्वविद्यालयों से उच्च अध्ययन कर भारतीय विश्वविद्यालयों में आते हैं तो यहां के निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा कर पाने में अपने को नितांत अक्षम पाते हैं। यदि एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय मानक पाठ्यक्रम तैयार हो सके जिसका 70 प्रतिशत अंश विशेषतः भाषा अध्ययन संबंधी हो तो संभवतः विद्यार्थी एक निर्धारित योग्यता प्राप्त कर भारतीय विश्वविद्यालयों में अपने हिंदी संबंधी अध्ययन को योग्यता पूर्वक पूरा कर सकेंगे। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने इस दिशा में पहल की है।

विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण अधिक प्रभावी बन सके इसके लिए यदि हिंदी प्राध्यापकों की निदानात्मक हिंदी भाषा कार्यशालाएं नियत अवधि की नियमित रूप से भारत सरकार के सहयोग से विविध देशों में आयोजित हो सकें तो हिंदी शिक्षण अधिक प्रभावी और उपयोगी हो सकेगा।

यह सच है कि विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के हिंदी प्राध्यापकों ने अपनी दृष्टि से हिंदी भाषा शिक्षा सामग्री तैयार की है जिनका वे व्यक्तिगत स्तर पर अपनी कक्षाओं में प्रयोग भी करते हैं पर इस शिक्षण सामग्री में जहां पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है वहीं जो सामग्री भारतीय प्राध्यापकों ने भारत में रह कर तैयार की है वे विदेशी विद्वानों को कक्षा के लिए पर्याप्त उपयोगी नहीं लगती। विदेशियों के लिए तैयार की जाने वाली हिंदी शिक्षण संबंधी सामग्री तभी अधिक उपयोगी होगी जब भारत के हिंदी भाषा विशेषज्ञ तथा विदेशी हिंदी प्राध्यापक मिलकर संयुक्त रूप में शिक्षण सामग्री का निर्माण करें। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण व्यवस्थित रूप में चलें और वह लक्ष्य सिद्धि प्राप्त कर सके इसके लिए योजनाबद्ध रूप में कार्य करने की आवश्यकता है।

73, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-1100034

फूल को बिखराने वाली

डॉ. रमेश मिलन

फूल को बिखराने वाली यह हवा क्यों चल रही
मन में अंगारे बसाने यह शिखा क्यों जल रही

नयन में सावन घुमड़ता किंतु प्यासे हैं अधर
कब तलक चलना अकेला यह गहन जीवन सफर
क्यों विरोधाभास के दर जिंदगानी पल रही
मन में अंगारे....

गिर रही ऊंचे से धारा जल धुंआ-सा बन रहा
दर्द चाहों में सिमट कर इक कुहा-सा बन रहा
करने मेरे स्वप्न घायल ऐ निशा! क्यों ढल रही
मन में अंगारे...

याद के छाले उमर भर राह में रिसते रहे
मौत के मेहमान हम सब मौत से छिपते रहे
मौत ही छलती नहीं है जिंदगी भी छल रही
मन में अंगारे...

ए-602, श्रीराजयोग सोसायटी, बिबेकवाड़ी, पुणे-411037

शांतिनिकेतन के संगीत-नृत्य की धारा

डॉ. सुमित वसु

कवींद्र रवींद्रनाथ ने सन् 1900 ई. में शातिनिकेतन में जिस ब्रह्मचर्याश्रम विद्यालय की स्थापना की वही विद्यालय सन् 1951 ई. में विश्वभारती, शांतिनिकेतन के नाम से एक केंद्रीय विश्वविद्यालय के रूप में परिचित हुआ। रवींद्रनाथ ने इसकी स्थापना भारत के प्राचीन तपोवन आश्रम के रूप में की थी जहां भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन, संगीत-नृत्य की प्राचीन गौरवशाली परंपरा का पीठस्थान हो। साथ-साथ खेलकूद, प्रकृति को अनेक रूपों में सजाने तथा ग्रामीण लोक-संस्कृति और कृषि विज्ञान को साथ लेकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बदलने के ध्येय से श्रीनिकेतन की स्थापना की थी। कवींद्र की भावनाओं में विश्वभारती के दो अंग एक शांतिनिकेतन एवं दूसरा श्रीनिकेतन हैं।

श्रीमती नंदिता कृपलानी, साहित्य अकादमी के प्रथम सचिव कृष्ण कृपलानी की पत्नी रवींद्रनाथ की नातिन (पुत्री मीरा देवी की कन्या), शांतिनिकेतन के नृत्य नाटिका में अभिनय करते हुए।

सन् 1908 ई. से कवींद्र रवींद्रनाथ ने शांतिनिकेतन में संगीत-नृत्य की परंपरा का आरंभ किया था। उस समय आश्रम की परिधि बहुत छोटी थी। हरी-भरी फूल-पत्तियों से भरी हुई थी एवं रहने के लिए छोटी-छोटी कुटिया थी। शांतिनिकेतन के संगीत एवं नृत्य के इतिहास की ओर झांक कर देखने से एवं इसके इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कवींद्र रवींद्र बहुत ही मनोरम ढंग से इनकी एक अलग पहचान देने में सफल हुए हैं। मैं अपने आप को बहुत ही सौभाग्यशाली मानता हूं। क्योंकि आज मैं जिस मणिपुरी नृत्य के अध्यापक के पद पर कार्यरत हूं उस पद का सृजन गुरुदेव रवींद्रनाथ ने स्वयं किया है। सन् 1919 ई. में जब रवींद्रनाथ ने स्वयं असम एवं मणिपुरी नृत्य को त्रिपुरा में देखा तब उन्होंने त्रिपुरा नरेश वीरेंद्रकिशोर माणिक्य से अनुरोध किया कि शांतिनिकेतन आश्रम के बच्चों को मणिपुरी नृत्य सीखाने के लिए एक मणिपुरी नृत्य शिक्षक को भेजें। फलस्वरूप सन् 1920 ई. में त्रिपुरा राजघराने के मणिपुरी नृत्य शिक्षक राजकुमार बुद्धिमंत सिंह सर्वप्रथम शांतिनिकेतन में मणिपुरी नृत्य शिक्षक के रूप में आए। शांतिनिकेतन आश्रम के आम्रकुंज एवं रवींद्र के आवास परिसर उत्तरायण में मणिपुरी नृत्य शिक्षा का आरंभ हुआ जो आज भी अक्षुण्ण है।

सन् 1908 ई. में दुर्गापूजा के समय शारदोत्सव नाटक में छात्र एवं शिक्षकों को भाव-भंगिमा सीखाकर दो गीतों के साथ भाव-नृत्य प्रस्तुत किया गया। ये दोनों गीत निम्न हैं—

1. आजि धानेर खेते रौद्र छाया लुकोचुरि खेला रे भाई लुकाचुरि खेला

(आज धान के खेतों में रोद्र छाया की लुकाछिपी का खेल हो रहा है)

और

2. मेघेर कोले रोद्र हेसेछे बादल गेछे टूटी।

(मेघ की गोद में धूप के हंसने से बादल छट गया है।)

आरंभ में गाने के साथ पग के छंद के साथ-साथ वृत्ताकार होकर सभी समवेत होकर आगे की ओर चलते थे। लड़के एवं लड़कियों के हाथ में एक फूल की डाली रहती थी और उसमें फूल और धान की मंजरी रखकर सजाते थे। फूल शेफाली एवं काश की होती थी। रवींद्रनाथ ने आमरा बंधेछि काशेर गुच्छ गीत के साथ-साथ हाथ में शेफाली फूल की माला को हाथ में लेकर रवींद्र ने सबको चलने

का ढंग सिखाया था। दूसरी पंक्ति में नवीन धानेर मंजरी दिए साजिए ऐनेछि डाला के साथ हाथ में डाला का वरण करने की भंगिमा गुरुदेव की पौत्री कमला देवी ने बहुत ही सुंदर ढंग से सिखाया था।

शांतिनिकेतन के संगीत-नृत्य की धारा को तीन युगों में देखा जा सकता है–

(1) आरंभिक युग सन् 1908 ई. से लेकर सन् 1924 ई. तक

(2) स्वर्ण युग सन् 1925 ई. से लेकर सन् 1941 ई. तक

(3) रवींद्रोत्तर युग (जिसका आरंभ रवींद्रनाथ के देहावसान के बाद सन् 1942 से आरंभ होता है।)

रवींद्रनाथ अपने एक नृत्य नाटिका का अवलोकन करते हुए।

(1) आरंभिक युग को सृजन काल कहा जा सकता है। गुरुदेव रवींद्रनाथ ने सन् 1908 ई. से लेकर सन् 1924 ई. की अवधि में संगीत-नृत्य की रचना की है। रवींद्रनाथ के आरंभिक युग के संगीत-नृत्य को रूप देने में श्रीमती अमिता सेन (नोबेल पुरस्कार विजयी श्री अमर्त्य सेन की मां), शांतिदेव घोष, श्रीमती रमा चक्रवर्ती, शिल्पाचार्य नंदलाल वसु की द्वय पुत्री श्रीमती यमुना सेन एवं श्रीमती गौड़ी भंज आदि रही हैं। श्रीमती अमिता सेन ने 'आनंद सर्वकाजे' पुस्तक में उल्लेख किया है कि सन् 1918 ओर 1919 ई. में शांतिनिकेतन में फाल्गुनी नाटक में गुरुदेव ने स्वयं एक गीत के साथ पैर और हाथ की भंगिमा दिखाकर किस प्रकार नृत्य करना चाहिए वह सिखाया था। उस नृत्य को गुरुदेव ने 'भाव नृत्य' कहा था। गीत के बोल के साथ भंगिमा एवं अंग संचालन करके अभिनय करना उनकी अपनी एक विशिष्ट रचना शैली थी। वह गीत था–''ए पथ गेयेछे कोन खाने गो कोन खाने।'' अमिता सेन ने यह भी उल्लेख किया है कि उन्होंने 'लक्ष्मी परीक्षा' एवं 'वाल्मीकि प्रतिभा' नाटकों के अभिनय में कई बार भाग लिया था। 'सहेना सहेना कांदे पराण' गीत के साथ दोनों हाथ सामने लाकर उसमें 'नाहिं नाहिं' का भाव दिखाया था और अपने मुंह को सामने लाकर दाएं-बाएं घुमाते हुए तथा अपने सिर को हिलाते थे। 'रिमझिम घन-घन रे' इस गीत में दोनों हाथ ऊपर उठाकर वर्षा का अभिनय बहुत महत्त्वपूर्ण रहा था।

(2) स्वर्ण युग का समय सन् 1925 ई. से लेकर सन् 1941 ई. तक का है। इस अवधि में कवींद्र रवींद्र ने संगीत नृत्य की रचना के साथ-साथ उसके अभिनय, निर्देशन एवं गायन का रूप दिया।

(3) रवींद्रोत्तर युग (जिसका आरंभ रवींद्रनाथ के देहावसान के बाद सन् 1942 से आरंभ होता है) यह युग शांतिनिकेतन के संगीत नृत्य की धारा को देश-विदेश में नए-नए कलेवरों के साथ प्रचार-प्रसार करने का युग रहा है।

इसके बाद जब शांतिनिकेतन में शास्त्रीय, मणिपुरी, कथकली आदि नृत्यों की शिक्षा देना आरंभ हुआ तब रवींद्रनाथ के गीतों के साथ सुंदर मुद्राओं, अभिनय, पद-संचालन, भाव-भंगिमा, तांडव और लास्य और बोल के साथ नृत्य करना आरंभ हुआ। ये सब नृत्य उन्हीं के संगीत के बोल और गाने के भाव के साथ बहुत ही सुंदर ढंग से सबके सामने प्रस्तुत करते थे। शिल्पाचार्य नंदलाल वसु की द्वय पुत्री श्रीमती गौड़ी भंज और श्रीमती यमुना सेन ने रवींद्र नृत्य में बहुत ही लोकप्रिय नृत्य शिल्पी के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। आरंभिक युग में रवींद्रनाथ के संगीत और नृत्य दोनों बहुत ही छोटे आकार के होते थे क्योंकि यह युग उनके संगीत और नृत्य की प्रस्तुति का युग एवं शैशवावस्था का युग था।

सन् 1925 ई. से लेकर सन् 1941 ई. तक रवींद्रनाथ के संगीत एवं नृत्य का स्वर्ण युग काल रहा है। इसका आरंभ त्रिपुरा से एक ख्यातलब्ध नृत्यगुरु नंदकुमार सिंह और उनके भाई बैकुंठ सिंह के शांतिनिकेतन के आगमन के बाद से हुआ। सन् 1926 ई. में रवींद्रनाथ की पुत्रवधु श्रीमती प्रतिमा देवी ने रवींद्रनाथ से उनकी जन्म तिथि के अवसर पर शांतिनिकेतन के छात्रों से 'नटीर पूजा नृत्य नाटिका' प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। इस नटीर पूजा नाटिका में शिल्पाचार्य नंदलाल वसु की पुत्री श्रीमती गौड़ी भंज ने 'नटी' का अभिनय किया। इस नृत्य नाटिका की अभिकल्पना मणिपुरी नृत्यगुरु नवोकुमार सिंह ने मणिपुरी नृत्य शैली में प्रस्तुत किया। इस नृत्य नाटिका में सर्वप्रथम नृत्य के साथ हस्तमुद्रा एवं अभिनय का प्रयोग किया गया। यही नहीं इस नृत्य नाटिका में प्रथम मणिपुरी बोल के साथ-साथ मणिपुरी भाव-भंगिमा का

शांतिनिकेतन के एक नृत्य का दृश्य जिसमें गायक एवं वादक मंच पर बैठे हुए। इसका अनुकरण रवींद्रनाथ ने जावा एवं बालि के नृत्य की परंपरा से किया।

भी प्रयोग किया गया। इस भाव-भंगिमा का प्रयोग आज भी शांतिनिकेतन में रवींद्रनाथ की नृत्य नाटिका में देखा जाता है। इसे मणिपुरी में 'पुंगलोन जबोई' कहते हैं।

नटीर पूजा नृत्य नाटिका में श्रीमती गौड़ी भंज के नृत्य ने सबके मन को मोह लिया था। 'आमाय क्षमो हे क्षमो, नमो हे नमो' गीत के साथ उनके नृत्य की भंगिमा और अभिनय ने सबको चकित कर दिया था। नटी के रूप में उनका नृत्य इतना मनमोहक हुआ था कि आज भी शांतिनिकेतन आश्रम के लोग, जिन्होंने उस नृत्य को देखा था, स्मरण करते हैं। नटी का राजरानी से संन्यास का रूप सबको चकित कर दिया था। इसकी शिक्षा गुरु नवकुमार सिंह ने श्रीमती गौड़ी देवी को रवींद्रनाथ के उत्तरायण परिसर के 'उदयन गृह' के सामने उनके सामने दिया था। मणिपुर की 'रास नृत्य' परंपरा में राधा-कृष्ण के आत्मनिवेदन की भंगिमा में, नटीर पूजा में नटी ने बुद्ध के सामने आत्मनिवेदन किया था।

'नटीर पूजा' का सर्वप्रथम अभिनय सन् 1927 ई. में रवींद्रनाथ की जन्म तिथि के अवसर पर 'कोणार्क' गृह के सामने हुआ था। नटीर पूजा का अभिनय शांतिनिकेतन के नृत्य संगीत की धारा का सूत्रधार है। इसी नृत्य नाटिका से एक नृत्य शैली का विकास हुआ जिसे 'रवींद्र नृत्य शैली' कहा जाता है। क्योंकि इसी नृत्य नाटिका में रवींद्रनाथ के संगीत के साथ मणिपुरी 'पुंग' (खाल एक वाद्य यंत्र का नाम है) के बोल के साथ अभिनय हुआ था। इसके बाद रवींद्र नृत्य के साथ देशी-विदेशी अनेक नृत्य शैलियों का समावेश हुआ। रवींद्रनाथ के नृत्य के साथ गुजरात के 'गरबा नृत्य' का समावेश मुंबई से आए अंग्रेजी के अध्यापक डॉ. जहांगीर वकील की पत्नी जो गुजरात का 'गरबा' नृत्य जानती थी, शांतिनिकेतन के छात्र-छात्राओं को सिखाया था। रवींद्रनाथ की पुत्रवधू श्रीमती प्रतिमा देवी ने सन् 1925 ई. में 'वर्षा मंगल' के कुछ गीतों के साथ गरबा नृत्य का प्रयोग किया था। सभी छात्राओं को वृत्ताकार होकर 'गरबा' का नृत्य किया था। रवींद्रनाथ के 'शेष वर्षण' नृत्य नाटक में भी गरबा नृत्य शैली का प्रयोग किया गया।

गुरु नवकुमार सिंह से शांतिनिकेतन की छात्र-छात्राओं ने, जो मणिपुरी नृत्य सीखा था। उसी के आधार पर श्रीमती प्रतिमा देवी के निर्देशन में शांतिनिकेतन और कोलकाता में 'ऋतुरंग नटराज' नृत्य नाट्य का अभिनय हुआ था। इसके बाद सन् 1928 ई. में 'फाल्गुनी नृत्य नाटिका' का अभिनय हुआ जिसमें स्वयं रवींद्रनाथ ने भूमिका निभाई थी। इस नृत्य नाटिका के लिए गीतों की रचना भी स्वयं रवींद्रनाथ ने की थी जो भाव नृत्य एवं भाव अभिनय थे।

सन् 1929 ई. में शांतिनिकेतन की छात्र-छात्राओं ने रवींद्रनाथ के साथ मिल कर कोलकाता में 'नटराज' एवं 'ऋतुरंग' का अभिनय किया था जिसमें श्रीमती प्रतिमा देवी के निर्देशन में मणिपुरी एवं गरबा नृत्यों की भंगिमाओं का प्रयोग किया गया। ये दोनों नृत्य नाटिकाएं बहुत सफल एवं सम्मोहक हुई थी।

सन् 1933 ई. में प्रतिमा देवी ने 'गीतोत्सव' एवं 'शिशुतीर्थ' नाटिका में भी इसका संयोजन रवींद्रनाथ के साथ मिल कर किया था। इस नृत्य नाटिका में एक विदेशी नृत्य शैली का भी प्रयोग किया गया जिसका अभिनय हंगरी की एक छात्रा ने रवींद्रनाथ के गीत एवं संगीत के आधार पर किया था। रवींद्रनाथ ने स्वयं कविता का पाठ भी किया था। इसी अवधि में कला भवन की एक छात्रा वासुदेवन के सहयोग से 'जेते जेते एकला पथे' गीत में कथकली नृत्य शैली का प्रयोग किया गया। पुत्रवधू प्रतिमा देवी ने रवींद्रनाथ को गीत, संगीत एवं नृत्य की रचना के लिए प्रेरित किया। इसी अवधि में वीरभूम जिले की लोक नृत्य शैली 'रायबेसे' नृत्य एवं बांग्लोदश के 'मुस्लिमजारी' लोक नृत्य के आधार पर नवीन नृत्य नाटिका की भी रचना की। इसी अवधि में शांतिनिकेतन के 'वसंतोत्सव' के समय नृत्य संगीत का होना आरंभ हुआ एवं रवींद्रनाथ ने स्वयं छात्र-छात्राओं को नृत्य के लिए प्रेरित किया। इसी अवधि में शांतिदेव घोष को रवींद्रनाथ ने केरल के 'कला मण्डलम्' नृत्य शिक्षायतन में 'कथकली' नृत्य सीखने के लिए भेजा जिससे इनके नृत्य में इसका समावेश समुचित ढंग से हो सके। यह एक ऐसा युग रहा कि रवींद्रनाथ के आकर्षण से आकर्षित होकर देश-विदेश की बहुत सी छात्र-छात्राएं शांतिनिकेतन में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने लगे।

इसी क्रम में इलाहाबाद से कथक नृत्यांगना श्रीमती आशा ओझा, श्रीलंका से संगीत भवन में नृत्य कला का छात्र अनंगलाल, केरल निवासी कथकली नृत्य गुरु श्री केलु नायर आदि शांतिनिकेतन आए। यही नहीं रवींद्रनाथ ने शांतिदेव घोष को नृत्य की शिक्षा लेने के लिए मणिपुर, श्रीलंका, इंडोनेशिया आदि देशों में भी भेजा जिससे उनके संगीत, गीत एवं नृत्य के साथ उनकी नृत्य नाटिका मनमोहक आकर्षक एवं जनप्रिय हो।

यही नहीं रवींद्रनाथ स्वयं इसमें दिलचस्पी रखते थे। यही नहीं रवींद्रनाथ ने स्वयं नवीन नाटक 'चले याय मोरी हाय बसंतेरो दिन चले याय' गीत के साथ श्रीमती रमा चक्रवर्ती को हाथ पकड़ कर नृत्य एवं पांव की भंगिमा को मिट्टी पर खली से चिह्न देकर 'सेमीसेरिकल' बनाकर किस प्रकार चलना होता है, उन्होंने श्रीमती रमा देवी को सिखाया था, जिसका उल्लेख श्रीमती रमा देवी ने अपनी स्मृति कथा 'भरा थाक स्रितीसुधाय' में किया है। मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मुझे श्रीमती रमा देवी के सामने रवींद्र नृत्य प्रदर्शन करने का सौभाग्य एवं आशीष प्राप्त हुआ है। शांतिनिकेतन में रवींद्र नृत्य की अपनी एक शैली है। यह शैली शांतिनिकेतन से बाहर रवींद्र संगीत के साथ नृत्य करते हैं उससे मेल नहीं खाता है। इसका कारण यह है कि रवींद्रनाथ ने संगीत के लिए स्वरलिपि का निर्माण किया किंतु नृत्य के लिए किसी प्रकार की लिखित शैली का निर्देश नहीं दिया है। क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं को संगीत एवं नृत्य से अलग रखने का प्रयास किया था। उनकी मंशा थी कि मेरे गीत, संगीत की एक विशिष्टता हो जिससे उनकी रचनाओं को लोग ठीक से समझ सकें।

शांतिनिकेतन के वातावरण में जो नृत्य-संगीत का प्रदर्शन होता है, उनमें शांतिनिकेतन की प्रकृति का विशेष महत्त्व है। फूल, पत्तियों के साथ खुले आकाश के नीचे, आम्रकुंज की छांह में नृत्य संगीत और अभिनय चित्रात्मक हो जाते हैं। यह परिवेश शांतिनिकेतन के बाहर मिलना बहुत ही दुर्लभ है। रवींद्रनाथ स्वयं जब शांतिनिकेतन के बाहर संगीत और नृत्य प्रदर्शन के लिए जाते थे तब साथ में सभी सामग्रियां लेकर जाते थे। प्रकृति के उपादान फूल-पत्तियों से बने हुए अलंकार एक मनोहर एवं सुंदर चित्र चित्रित करता है। जब रवींद्रनाथ ने जावा एवं बालि देशों की यात्राएं की थीं, तब वहां के कलाकारों की नृत्य शैली से बहुत ही प्रभावित हुए थे। यही नहीं नृत्य शिल्पी की वेशभूषा एवं अंग सजावट से भी वे बहुत ही प्रभावित हुए थे। यही कारण है कि शांतिनिकेतन की नृत्य शैली और वेशभूषा में जावा और बालि द्वीप का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसका निदर्शन उनके नृत्य नाटिकाओं में देखने को मिलता है कि मंच पर नृत्य शिल्पियों एवं अभिनेताओं के पीछे गायक एवं वादक बैठे रहते हैं और उनके सामने नृत्य शिल्पी एवं अभिनेता अपना अभिनय करते हैं।

रवींद्रनाथ जब शांतिनिकेतन से बाहर छात्र-छात्राओं के साथ मिलकर अभिनय करने के लिए जाते थे तब उनकी वेशभूषा बहुत ही साधारण हुआ करती थी। साड़ी, धोती, कुर्ता, पायजामा आदि हुआ करते थे। लड़कों के लिए पगड़ी का का होना आवश्यक रहता था। लड़कियों के माथे पर फूल-पत्तियों से बने अलंकार होते थे। रवींद्रनाथ शांतिनिकेतन के छात्र-छात्राओं को अपना बालक-बालिका कह कर पुकारते थे। शांतिनिकेतन की शिक्षा में 'शैक्षणिक भ्रमण' एक आवश्यक कार्यक्रम है। इसका आरंभ भी रवींद्रनाथ ने ही किया है। शांतिनिकेतन के उत्सव एवं अनुष्ठान में 'आल्पना' (रंगोली) का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रत्येक उत्सव के लिए अलग-अलग आल्पना की जाती थी। उदाहरण स्वरूप 'वर्षा वरण, वर्षा शेष, मंदिर' आदि उत्सवों के समय फूलों के साथ आल्पना दी जाती थी। बाद में कोयला और बालू से आल्पना दी जाती थी। वसंतोत्सव के समय पलाश (टेशू) फूल के साथ आल्पना दी जाती थी। शांतिनिकेतन के आल्पना शिल्प के चित्रांकन में शिल्पाचार्य नंदलाल वसु की पुत्री श्रीमती गौड़ी भंज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। श्रीमती गौड़ी भंज एवं श्रीमती यमुना सेन ने ही फूल-पत्तियों से अलंकार बनाने की परंपरा का भी आरंभ किया। यही नहीं अभिनय के समय सामान्य साड़ी के साथ फूल-पत्तियों के अलंकार से भी अलंकृत किया जाता रहा है। यही वेशभूषा उनके नाटकों में भी व्यवहार में लाई जाती थी।

इस प्रकार रवींद्रनाथ के संगीत नृत्य में शांतिनिकेतन के प्राकृतिक परिवेश के साथ सामंजस्य बैठाते हुए भारतीय संगीत नृत्य की विभिन्न धाराओं के साथ-साथ विदेशी संगीत एवं नृत्य की परंपरा का भी समावेश हुआ है जिन्होंने रवींद्रनाथ के संगीत नृत्य को एक विशिष्टता प्रदान की है जो रवींद्र संगीत नृत्य के रूप की एक विशिष्ट शैली के रूप में सर्वख्यात है। यही नहीं पूरे भारत में संगीत, नृत्य एवं चित्रकला की विद्यालयी शिक्षा के आरंभ के मूल में रवींद्रनाथ की ही देन है। क्योंकि जब रवींद्रनाथ ने नृत्य संगीत की शिक्षा का आरंभ देना आरंभ किया तब तत्कालीन समाज उसे नेक दृष्टि से नहीं देखा करता था एवं इसे कोठे के संगीत नृत्य की ही संज्ञा से ही अभिहित किया जाता था। इसलिए जब उन्होंने इसे सभ्य समाज के समक्ष उपस्थित किया तब इसका नाम कवींद्र ने सांगितिक व्यायाम (Musical Exercise) के नाम से परिचित करवाया।

अध्यापक, मणिपुरी नृत्य, संगीत भवन,
विश्वभारती, शांतिनिकेतन

हिंदी रूपांतरण–डॉ. रामचंद्र राय
रूपांतर, रतनपल्ली (नार्थ), शांतिनिकेतन-731235
पश्चिम बंगाल।

विष्णु प्रभाकर का बाल साहित्य

डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

विष्णु प्रभाकर हिंदी के ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने लंबे समय तक हिंदी साहित्य की सेवा की है। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य की अधिकतर विधाओं में अपनी कलम का जादू जगाया है। इनके व्यक्तित्व की खूबसूरती इसी में रही कि यह किसी तरह की साहित्यिक गुटबंदी में न पड़ कर केवल साहित्य रचते रहे। किसी एक खास विचारधारा के खूंटे में भी बंधना इन्हें स्वीकार नहीं था। जो मैं अपने पठन-पाठन या लेखन-कर्म से समझ पाया हूं वह यह कि विष्णु प्रभाकर का साहित्य आम आदमी की जीवन धारा से जुड़ कर मानवतावादी है। इनके साहित्य ने आदमी होने के गौरव को जगाया है।

हमारा यहां विष्णु प्रभाकर के बाल-साहित्य की जानकारी लेना अभिप्रेत रहा है, परंतु इससे पूर्व यह आवश्यक है कि विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण साहित्य के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट कर दिया जाए कि उन्होंने राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक सम-सामयिक समस्याओं को अपनी कृतियों का वर्ण्य-विषय बनाया है। राजनैतिक, न्यायिक एवं सामयिक विषयों पर तो उन्होंने अपनी कहानियों, नाटकों, उपन्यासों एवं एकांकियों में बेवाक टिप्पणियां ही नहीं की हैं अपितु एक पूर्ण विचार दिया है। अनेक सारे प्रश्न खड़े किए हैं।

विष्णु प्रभाकर बचपन से मेरे प्रिय लेखक रहे हैं। अपनी युवावस्था में मैंने उनकी कहानी 'धरती अब घूम रही है', पढ़ी थी। उसने तब भी और आज भी मानस-पटल पर ऐसा कब्जा जमाया है कि उतरता नहीं। बाद में इसी कहानी का मैंने उनसे हिमाचली में अनुवाद करने और छापने की आज्ञा मांगी थी जो उन्होंने प्रदान की थी। यह उनकी एक ऐसी कहानी है जो बदलते समय में भी प्रासंगिक है। आज मैं यह समझता हूं कि यही विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों के शीर्षस्थ पर रख दी जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं। यह कहानी प्रभाकर जी ने सन् 1954 के अंत में लिखी थी और जनवरी सन् 1955 के कहानी विशेषांक 'पथिक' में प्रकाशित हुई थी। विष्णु प्रभाकर ने खुद माना है—''इस कहानी के कारण इतना प्रसिद्ध हुआ, जितना मैं अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आवारा मसीहा' के कारण भी नहीं हुआ।

जहां तक उनके बाल-साहित्य का ताल्लुक है तो उन्होंने बाल-कहानियों, बाल एकांकी नाटकों और कुछ महापुरुषों की जीवनियां लिख कर इसे समृद्ध किया है। उनका यह बाल-साहित्य सृजन सन् 1954 से लेकर मृत्यु के अंतिम क्षणों तक जारी रहा। विष्णु प्रभाकर का यह बाल साहित्य अधिकतर किताब घर, पराग प्रकाशन, राजपाल एंड सन्ज, प्रकाशन विभाग, साहित्य अकादेमी, प्रभात प्रकाशन और एन.बी.टी. के माध्यम से प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुंचा है।

प्रभाकर जी के प्रमुख बाल नाटक एकांकियों में 'मोटेलाला', 'दादा की कचहरी', 'अभिनव बाल एकांकी', 'हड़ताल', 'नूतन बाल एकांकी', 'ऐसे-ऐसे', 'बाल वर्ष जिंदाबाद', 'जादू की गाय' तथा अन्य बाल एकांकी 'गजनंदन लाल के कारनामे', 'दो मित्र', 'मोती किसके', 'कुंती के बेटे' और 'रामू की हवेली' का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं। उपर्युक्त एकांकियों में उन्होंने बाल मनोविज्ञान और बालकों की मनःस्थितियों को आधार बनाकर इनकी रचना की है। ये बाल एकांकी बालकों के स्वभाव और रुचियों के अनुरूप हैं। यह भी सत्य है कि बच्चों द्वारा दादा-नाना की छड़ी को लेकर, घोड़ा बना कर उसकी सवारी करना या आंखों पर चश्मा पहन कर दादा-दादी, नाना-नानी का अभिनय करना, कुबड़ा हो कर चल कर दिखाना यह सब अनुकरण ही तो है। बच्चों की सच्ची भावनाओं और उनकी इन्हीं इच्छाओं को भी नाट्य रूप में ढाल कर प्रभाकर जी ने पहल की है।

'दो मित्र' एकांकी में दो भिन्न धर्मों में आस्था रखने पर भी उनकी पक्की दोस्ती दिखा कर सांप्रदायिक सद्भावना का अद्भुत संदेश दिया है। दोनों दोस्त एक-दूसरे के काम आते हैं। अक्सर शतरंज खेलते हैं। खेल में प्यार-टकराव, चुहुलबाजी, तकरार, हास्य और रूठ जाना फिर मन-मनौत बहुत कुछ है एकांकी में। कमला भागीरथ और उनके मित्र सैय्यद मेंहदी हसन के इस रोज-रोज के नाटक से भली भांति परिचित हो गई है। एकांकी के चुस्त-दुरुस्त संवाद किसी भी पाठक और दर्शक के मन को छू जाने वले हैं। रूठ गए भागीरथ को मनाने सैय्यद मेंहदी हसन उसके घर के बरामदे में पहुंचते हैं और हांफते-हांफते भागीरथ को बाहों में भींच लेते हैं। भागीरथ छुड़ाने की कोशिश करता है। संवाद द्रष्टव्य है—''भागीरथ! तूने मुझे इतना नीच समझा। मैं तेरी नीयत पर शक करूंगा।'' मेंहदी (उसी तरह जकड़े हुए) ''मुझे माफ कर दो मेरे भाई,

मुझसे गलती हो गई।'' (इसी समय हाथ में दो प्याले चाय के लिए कमला वहां आ जाती है)। कमला—''लीजिए, पहले चाय पी लीजिए दोनों।'' दोनों एकदम अलग हो जाते हैं।

मेंहदी—''अरे भाभी जी, यह आप ठीक वक्त पर चाय कैसे ले आती हैं?'' कमला—''रिहर्सल करते-करते पार्ट पक्का याद हो गया है।'' (तीनों जोर से हंसते हैं)। 'ऐसा-ऐसा', 'पुस्तक कीट' और 'ईमानदार लड़का' विष्णु प्रभाकर प्रणीत ऐसे बाल एकांकी हैं जो बालकों द्वारा मंच पर आसानी से खेले जा सकते हैं।

'ऐसे-ऐसे' एकांकी में तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला 9-10 वर्ष का बालक मोहन छुट्टियों में मौज-मस्ती करता रहा। स्कूल खुलने के एक दिन पहले 'पेट दर्द' का बहाना बनाकर अपने माता-पिता को ठगता है। वे परेशान होकर हड़बड़ाहट में एक साथ वैद्य जी को और डॉक्टर को बुलाते हैं। बालक मोहन सबको पेट दिखा कर कहता इसमें 'ऐसा-ऐसा' होता है। कई बार उल्टी करने का नाटक भी करता है। वैद्य ने पेट साफ करने के लिए पुड़िया ले जाने की बात की तो डॉक्टर ने कहा—''खुराक ले जाओ बदहजमी ठीक हो जाएगी।'' दोनों के जाते ही मास्टर जी धमक पड़ते हैं। मोहन के 'ऐसे-ऐसे' होने के बहाने की असल पोल स्कूल के काम न करने के डर को खोल कर सबको दंग कर देते हैं। भय और चिंता के वातावरण में हंसी फूट पड़ती है। मास्टर जी ने मोहन से आते ही कहा—''अच्छा साहब! दर्द तो दूर हो ही जाएगा। डरो मत बेशक कल स्कूल मत आना। एक बात बताओ, स्कूल का काम पूरा कर लिया है?'' (मोहन चुप ही रहता है)। फिर इनकार में सिर हिला देता है। ''जी सब नहीं हुआ।'' मास्टर—''तो यह बात है। 'ऐसे-ऐसे' काम न करने का डर है।''

मां भौंचक्की। मास्टर मोहन की मां से—''माता जी, महीना भर मौज की। स्कूल का काम रह गया। आज खयाल आया। बस डर के मारे पेट में 'ऐसा-ऐसा' होने लगा।''

मां—''मोहन, तेरे पेट में तो बहुत बड़ी दाढ़ी है।'' (उसके बाद पिता से)—''देखा जी आपने?''

पाठक वृंद! विष्णु प्रभाकर का एक एकांकी पैंतालीस वर्ष पहले पांचवी-छठी कक्षा को पढ़ाया मुझे याद रहा था छलनी बचेने वाले बालक का। कथानक और पात्रों के नाम भूल चुके थे। इस आलेख ने उसे फिर साकार स्वरूप में मेरे सामने प्रकट कर दिया है। यह एकांकी है—'ईमानदार लड़का'। राजकिशोर मजूदरों के नेता हैं। किशनगंज लौटते हुए एक लड़का यही 8-10 वर्ष का छलनी बेचता मिल गया। सन् 1947 के दंगों का अनाथ बालक जिसे भीखू अहीर ने उसके भाई सहित शरण दी थी। बालक का नाम बसंत है जबकि भाई प्रताप। बसंत के यह कहने पर कि उसने आज एक पैसा नहीं कमाया है। राजकिशोर एक छलनी ले लेते हैं एक रुपए का नोट देकर। हालांकि वह बसंत को दान में दो पैसे देते रहे। बसंत ने भीख लेना नहीं स्वीकारी। राजकिशोर के साढ़े 14 आने लौटाने के लिए बसंत नोट भुनाने बाजार को गया, यह कहते, ''बाबू जी थोड़ा रुको, अभी आया।'' राजकिशोर खड़े इंतजार करते हैं थोड़ी देर। उनके एक परिचित कृष्णकुमार ने सावधान भी किया कि आप ठगे गए हैं छोकरे के हाथों। राजकिशोर थोड़ा इंतजार कर घर चले जाते हैं।

दूसरे दृश्य में बसंत के भाई प्रताप से राजकिशोर को पता चलता है कि उस बालक के नोट भुना कर लौटते वक्त दोनों पैर कुचले गए हैं। होश आने पर बसंत ने आपके बचे पैसे साढ़े चौदह आने लौटाए हैं। राजकिशोर बालक बसंत की ईमानदारी को देख कर उसके घर पहुंचते हैं। बसंत की ईमानदारी के दुर्लभ गुण को देख कर अस्पताल पहुंचाने के लिए एंबुलेंस लाते हैं। डॉक्टर से कहते हैं—''इसे बचाना ही होगा। यह गरीब है, पर इसमें एक दुर्लभ गुण है, यह ईमानदार है।'' कहना न होगा कि आज की शिक्षा में इन्हीं जीवन मूल्यों की परम आवश्यकता है जो बच्चों को ईमानदार बनाए। इसी ईमानदारी की आज राष्ट्र भी मांग करता है।

'पुस्तक कीट' एकांकी में विष्णु प्रभाकर ने बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास पर बल दिया है। रटंत विद्या के वह विरुद्ध थे। यह एकांकी 'निर्मला' की इसी प्रवृत्ति को उजागर करने के उद्देश्य से लिखी गई है। उसकी सहेलियां उसके बिना सोचे-समझे किताबी कीड़ा बने रहने के कारण उसका नाम 'तोती' रख देती हैं। कमजोर होने पर भी सहेलियां 'भीमसेनी' पुकारती हैं। मुख्याध्यापिका के पास शिकायत पहुंचती है तो वह उसे दंड भी देती हैं और निदान भी निकालती हैं कुछ इस तरह—''तीन महीनों तक निर्मला किताबों की सूरत न देखे। सब किताबें उसके पास जमा करा दे और इस अरसे में वह किसी पहाड़ी पर जाकर रहे। पहाड़ से लौट कर निर्मला को एक घंटा घूमना और दो घंटे खेलना होगा। इसी शर्त पर वह स्कूल में रह सकती है। अब स्कूल दो महीने के लिए बंद हो रहा है। मैं शिमला जा रही हूं, निर्मला चाहे तो वह मेरे साथ चल सकती है।'' निर्मला मुख्याध्यापिका के इस प्रस्ताव को सहर्ष मान लेती है। हाथ जोड़ कर कहती है—''मैं आपके साथ चलूंगी। आप मुझे अवश्य अपने साथ ले चलिए।''

जहां तक विष्णु प्रभाकर जी की बाल कहानियों का संबंध है उन्होंने शताधिक बाल कहानियों का प्रणयन किया है। प्रभात प्रकाशन ने सन् 2009 में उनकी संपूर्ण बाल कहानियां दो खंडों में प्रकाशित की हैं। 'जब दीदी भूत बनी' (सस्ता साहित्य मंडल), 'स्वराज की कहानी' (एन.बी.टी.), 'तपोवन की कहानियां' (राजपाल एंड संज), 'एक देश एक हृदय' (प्रकाशन विभाग), 'मोतियों की खेती' (राजपाल एंड संज), 'घमंड का फल' (1973, नेशनल पब्लिशिंग हाउस), 'तपोवन की कहानियां', 'पाप का घड़ा', 'मोतियों की खेती', 'हीरे की पहचान' (1976, ज्ञान भारती प्रकाशन), 'गुड़िया खो गई' (1977, अतुल प्रकाशन), 'पहाड़ चले गजनंदन लाल' (1981, प्रकाशन विभाग) तथा 'सुनो कहानी' (1991, साहित्य अकादेमी) से प्रकाशित बाल

कथा संकलन हैं। यहां कुछ बाल कहानियों की भी चर्चा करना प्रासंगिक समझता हूं जिनसे उनकी बाल कहानियों की पृष्ठभूमि, कथ्य और सुगठित शिल्प का पता चलता है। इन बाल कहानियों में देशभक्ति, ईमानदारी, टूटती न्याय व्यवस्था, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी जैसी सामाजिक एवं राजनैतिक बुराइयों पर विष्णु प्रभाकर ने तीखे प्रहार किए हैं। इतना बाल साहित्य लिखने पर भी खेद है इतिहासकारों ने उनके अप्रतिम योगदान को दर्शाने में कंजूसी की है। यही नहीं हिंदी की मशहूर बाल कहानियों के भारतीय संस्करणों में विष्णु प्रभाकर की ये कहानियां है ही नहीं। उन आलोचकों और इतिहासकारों के ऐसा करने से विष्णु प्रभाकर को कोई फर्क नहीं पड़ा। पाठकों के साथ उनका सीधा संवाद बराबर बना रहा है। पाठकों में उनकी लोकप्रियता को देख कर उन्हें कई धमकियों का सामना भी करना पड़ा। वह स्वयं एक जगह लिखते हैं—''धमकियां तो मुझे बहुत मिलती रहीं और ऐसे पत्र भी मिलते रहे कि आपको कहानी लिखनी नहीं आती तो क्यों लिखते हैं और लिखते ही हैं तो मेरे कहानी संग्रह को पढ़ कर लिखिए। कोई अंत नहीं इन प्रतिक्रियाओं का।''

मैं उनकी प्रसिद्ध कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' को हिंदी की श्रेष्ठ बाल कहानी के अंतर्गत रखना पसंद करता हूं। दो बहन-भाई नीना और कमल उम्र यही 10 और 8 वर्ष। मां गुजर चुकी है। पिता को 20 रुपए की रिश्वत लेने के केस में 9 महीने की जेल हुई है। वह चाहता था बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना। मौसी-मौसा अपने घर ले आते हैं। प्यार के कारण या लोक लाज से। पर दो महीनें में उनका व्यवहार बच्चों के प्रति बदल जाता है। नीना अपनी उम्र से पहले सयानी हो जाती है। गिलास टूट जाने पर कमल को मौसी-मौसा के गुस्से का पात्र बनना पड़ा। रात वह बहन को बताता है और पूछता है—''पिता कब आएंगे।'' बहन झूठा दिलासा देती है कल। सुबह घर की साफ-सफाई चमक देख कर मौसी दंग रह जाती है। कमल ने बताया—''रात दीदी कहती थी कि पिता आने वाले हैं।'' मौसी कहती है—''अभी तो दो महीने हुए, उसे 7 महीने आने को बाकी हैं।''

कहानी के दूसरे भाग में छोटे न्यायमूर्ति की लड़की मनमोहिनी की उपनिदेशक पद पर की नियुक्ति पर पार्टी चल रही उन्हीं के घर में दिखाई गई है। इसमें आयोग के सचिव और विभाग के निदेशक हैं। बैरा दूसरी बार पार्टी वाले कमरे में आकर एक चिट्ठी थमा जाता है जिसमें न्यायमूर्ति के बड़े बेटे की इन्कम टैक्स आफिसर के रूप में चयन की खबर है। छोटे न्यायमूर्ति अपनी पत्नी से कहते हैं मुझे पहले ही पता था शर्मा मेरी बात नहीं टाल सकता। सचिव और निदेशक भी टिप्पणी करते हैं—''आप की बात सब मानते हैं।''

इतने में बैरा सूचना देता है, साहब दो छोटे-छोटे बच्चे आपसे मिलना चाहते हैं। छोटे न्यायमूर्ति उन्हें अंदर बुला लेते हैं जहां पार्टी चली है। वे बच्चों से आने का कारण पूछते हैं। बच्चे पूछने पर पहले कतराते हैं। फिर हिम्मत करके नीना बोल उठी—''आपने हमारे पिता को जेल भेजा है। आप उन्हें छोड़ दें।'' कमल भी बोला—''हमारे पास पचास रुपए हैं। आपने 3000 रुपए रिश्वत लेकर एक डाकू को छोड़ा है।'' नीना बोली—''लेकिन हमारे पिता जी डाकू नहीं है। महंगाई बढ़ गई थी। उन्होंने बस बीस रुपए की रिश्वत ली थी।''

कमल ने कहा—''रुपए थोड़े हों तो...''। नीना बोली—''तो मैं एक-दो दिन आपके पास रह सकती हूं।'' कमल ने कहा—''मेरी जीजी खूबसूरत है और आप खूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं।'' पुनश्च रटे हुए पार्ट की तरह एक के बाद एक जब वे दोनों इस प्रकार बोल रहे थे तो न जाने हमारे कथाकार को क्या हुआ, वह वहां से भाग खड़ा हुआ। उसे ऐसे लगा कि धरती सूर्य की चुंबक शक्ति से अलग हो रही है। लेकिन ऐसा होता तो क्या हम यह 'पुनश्च' लिखने को बाकी रहते। धरती अब भी घूम रही है।

कहना न होगा आज की न्याय व्यवस्था, भाई-भतीजावाद, रिश्वत और भ्रष्टाचार के मुखौटों को खोलती यह कहानी आज भी नई है। अनेक सारे प्रश्न पाठकों के समक्ष आज भी अनुत्तरित हैं। विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों में जिज्ञासा, मनोरंजन और हास्य-व्यंग्य मिले-जुले भाव सर्वत्र व्याप्त हैं। प्रभाकर जी के आत्मज अजुल प्रभाकर बताते हैं कि वह अपनी कहानियों के चरित्र और कथानक अपने आसपास के पड़ौसियों, मित्रजनों और रिश्तेदारों के यहां से उठा लेते थे। 'पहाड़ चढ़े गजनंदन लाल' की कहानियां इलाहाबाद के एक दोस्त के हृष्ट-पुष्ट मोटे बच्चे को लेकर बुनी गई है जो हर वक्त खाता-पीता रहता था, मस्ती करता था। 'गजनंदन ने इंटरव्यू दिया' एक मनोरंजनात्मक हास्य कहानी है। इसक कहानी में माता-पिता अपने बालक को स्कूल में प्रवेश दिलाने ले जाते हैं। इंटरव्यू में पूछे जाने वाले कई प्रश्नों के उत्तर रटाए गए। मुख्याध्यापक के सामने सब उत्तर वह भूल गया। मुख्याध्यापक उसे चॉकलेट देते हैं तो वह अपने मन से प्रश्नों का उत्तर देता है। मुख्यध्यापक उसके दिए मौलिक उत्तरों से खुश हो गए और उसे दाखिला मिल गया। यह बाल कहानी भी बालक के सर्वांगीण विकास के भाव को ही पुष्ट करती है।

रमाशंकर द्वारा संपादित 'आधुनिक बाल कहानियों' में विष्णु प्रभाकर की एक अन्य बाल कहानी 'सुंदर लड़की' का जिक्र भी करना चाहूंगा। इस कहानी में प्रभाकर जी ने सुंदरता की बड़ी सरल व्याख्या की है। कथानक समुद्र के किनारे एक गांव का है। जहां कलाकार रहता है। कलाकार का बेटा है हर्ष। उम्र अभी ग्यारह की भी नहीं। समुद्र की लहरों में ऐसे घुस जाता, जैसे तालाब में बत्तख। एक बार कलाकार के रिश्तेदार का एक दोस्त वहां छुट्टियां मनाने आया। उसके साथ उसकी बेटी मंजरी भी थी। यही नौ दस वर्ष की। थी बहुत सुंदर, बिलकुल गुड़िया जैसी। हर्ष से हिल-मिल गई। उसे लहरों से खेलते देखती तो पूछती—''डर नहीं लगता?'' हर्ष बताता है—''डर क्यों लगेगा, लहरें तो हमारे साथ खेलने आती हैं।'' चाहती मंजरी भी थी

लहरों के साथ खेलना पर डरती। जब दूसरी लड़कियों विशेष कर कनक को हर्ष के हाथ में हाथ डाल कर तूफानी लहरों पर दूर निकलता देखती उसका भी मन मचलता। उसके पिता नहीं थे। पिता नाव लेकर क्या गए कि लौटे ही नहीं। मां के साथ कनक छोटे-छोटे शंखों की मालाएं बना कर बेचती। मंजरी को वह काली लड़की जरा न भाती। उसकी दोस्ती उसे कतई पसंद नहीं थी।

एक दिन हर्ष ने देखा पिता सुंदर खिलौना बना रहे हैं। वह पक्षी था। हर्ष की जिज्ञासा शांत करते हुए उसने बताया—दो दिन बाद मंजरी का जन्मदिन है। तुम उसे भेंट में देना। एक दिन फिर हर्ष और मंजरी बातें करते-करते न जाने कब उठे और समुद्र में चले गए। वह मंजरी को छोटी चट्टान तक ले गया। मंजरी निडर हो चली थी। तभी हर्ष को बड़ी चट्टान पर कनक दिख गई। उसने हर्ष को अपने पास बुलाया। मंजरी के साथ वहां तक पहुंचने से इनकार करता है। उसे कहता है—''कनक! तुम्हीं इधर आ जाओ।'' त्यों मंजरी को ईर्ष्या भी हुई कि वह कनक तक क्यों नहीं जा सकती? वह क्या उससे कमजोर है। इतने में सुंदर शंख देख कर मंजरी उस ओर बढ़ी। एक लहर ने उसके पैर उखाड़ दिए। वह बड़ी चट्टान की दिशा में लुढ़क गई। मुंह में खारा पानी भर गया। यह सब आनन-फानन में हुआ। हर्ष बचाने दौड़ा पर एक लहर ने उसे मंजरी से और भी दूर धकेल दिया। इधर कनक ने देखा मंजरी बड़ी चट्टान से टकरा जाएगी। उसके जीवन को खतरा है। वह उसी क्षण लहर और मंजरी के बीच आ कूदी और उसे हाथों से थाम लिया। अब तीनों छोटी चट्टान पर थे। मंजरी के पेट में चले गए खारे पानी को लिटा कर निकाल दिया गया। उसे जरा भी चोट नहीं लगी। पर वह बार-बार कनक को देख रही थी। जन्मदिन की पार्टी पर बिलकुल ठीक थी। सब बच्चों को दावत पर बुलाया गया। सब कुछ न कुछ लेकर आए। अंत में कलाकार की बारी आई। उसने कहा मैंने सबसे सुंदर लड़की के लिए सबसे सुंदर खिलौना बनाया है। वह लड़की कोई और नहीं—मंजरी है। हर्ष ने तभी वह खिलौना मंजरी के हाथ में थमा दिया। मंजरी बार-बार उस खिलौने को देखती और खुश होती।

तभी क्या हुआ, मंजरी अपनी जगह से उठी और उस सुंदर खिलौने को कनक को सौंपते कहती है—''यह पक्षी तुम्हारा है। सबसे सुंदर लड़की तुम्हीं हो।'' विष्णु प्रभाकर ने उपर्युक्त बालकथा में तन की सुंदरता से मन की सुंदरता को बड़ा करार देते हुए सुंदर कर्मों से सुंदर बालक बनने की सहज प्रेरणा दी है। बच्चों का प्रेम निश्चल होता है और निष्कपट भी। उनमें बड़ी ताकत होती है जिसे सही दिशा देने पर उपयोग में लाया जा सकता है।

विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों की खूबसूरती यह भी है कि इन्हें पढ़कर आनंद आता है। पाठक कहानियों के कथ्य के साथ-साथ सफर करते प्रतीत होते हैं। कहानियां ऊबने नहीं देतीं अपितु जिज्ञासा को बराबर बनाए रखती हैं। इन कहानियों में अलग किस्म की किस्सागोई शैली है जिसे विष्णु प्रभाकर ने अपने मापदंडों से सजाया-संवारा, गूंथा-बुना है। आशा है बालकों द्वारा बचपन में पढ़ी ये बाल कथाएं पाठकों को वृद्धावस्था तक भी उनके बचपन को मरने नहीं देंगी।

विष्णु प्रभाकर ने भारतीय महापुरुषों को लेकर उनकी सुंदर बाल जीवनियां लिख कर भी बाल साहित्य में जीवनी शिक्षा की शुरुआत की है। ये जीवनियां राष्ट्र पिता महात्मा गांधी, शरत् चंद्र, सरदार पटेल, रवींद्रनाथ ठाकुर, शंकराचार्य और बंकिमचंद्र की विशेष चर्चा में रही हैं। ये जीवनियां उच्च जीवनादर्शों को लेकर बच्चों की सरल शैली में लिखी गई हैं। बच्चों के भावी जीवन में ये उन्हें प्रेरणादायी रहने वाली हैं।

मुझे यहां यह भी कहना है कि वर्तमान में विष्णु प्रभाकर के समग्र बाल साहित्य के संकलन, संपादन, प्रकाशन एवं उसके सम्यक् मूल्यांकन की परम आवश्यकता है। दुख तब होता है जब बाल साहित्य के शिखर पुरुष कहने जाने वाले भी भारतीय कहानियों, हिंदी कहानियों, नाटकों-एकांकियों का संपादन-प्रकाशन करते समय, बाल साहित्य के इतिहास के आलेख, शोध पत्र अथवा शोध प्रबंध लिखते समय बाल साहित्यकार विष्णु प्रभाकर को नजरअंदाज कर जाते हैं। उम्मीद की जा सकती है कि यह पुनीत कार्य उनके आत्मज अतुल प्रभाकर और विष्णु प्रभाकर के बाल साहित्य के प्रेमी पाठक एवं अध्ययेता अवश्य पूरा करेंगे।

साहित्य की राष्ट्रीय संस्थाओं को भी उनके उपलब्ध-अनुपलब्ध बाल साहित्य को पुनर्मुर्दित, संपादित एवं प्रकाशित कर सर्वजन सुलभ कराने के पग उठाने चाहिएं। कहना न होगा कि यही बाल-साहित्य राष्ट्र की समग्र उन्नति का मूलाधार है। अनेकानेक विसंगतियों के बावजूद विष्णु प्रभाकर की मनुष्य में आस्था रही है। संपूर्ण मनुष्य में। खंडों में बंटे मनुष्य में नहीं। मनुष्यता के भाव का यही पहला पाठ उनके बाल साहित्य में प्रदीप्त है।

कीर्ति कुसुम, सरस्वती नगर, डाकघर-दाड़ी,
धर्मशाला-176507 (हिमाचल प्रदेश)

त्रिलोचन : धरती को दोनों ओर से थामे हुए

आचार्य सारथी रूमी

मैंने कहीं कहा है कि कवि समय का भी समय होता है। अपने इस कथन की व्याख्या यदि मुझे करनी हो तो निश्चित ही मैं त्रिलोचन का नाम लूंगा। त्रिलोचन के शरीर में एक व्यक्ति-चेतना मात्र नहीं, एक समूचा काल खंड सांसें लेता, हंसता-मुस्काता, दर्द से कराहता, मानवीय जिजीविषा की ध्वजा फहराता, बतियाता और शब्द-साधना करता दिखता है। वे सब जिन्होंने ऋषियों के बारे में सिर्फ पुस्तकों में पढ़ा है, काश! उनकी मुलाकात त्रिलोचन से हुई होती। मैं और त्रिलोचन एक-दूसरे को कब से जानते थे? शायद अनंत काल से... ज्ञान-पिपासा और जिज्ञासा की समस्त सीमाओं से परे... संभवतः ऐसे जैसे त्रिलोचन निराला को जानते थे। मैंने निराला को नहीं देखा था, पर त्रिलोचन से मिल कर निराला का साक्षात्कार मैंने कर लिया था। मैंने किसी ऋषि को नहीं देखा था। त्रिलोचन का आशीष पा कर मैंने खुद को ऋषि-परंपरा से जुड़ा अनुभव किया। मैं शब्द-कर्म से जुड़े असंख्य अग्रजों और अनुजों से मिला, पर, त्रिलोचन जैसी सात्विक हंसी, वैसा छल-रहित व्यवहार, प्रतिभा और ज्ञान का वैसा संतुलन, वैसा सगापन किसी के पास नहीं मिला...

मानवीय संबंधों की सहजता और उस सहजता में घुली हुई जटिलता की कितनी ही परिभाषाएं गढ़ीं। इनकी कितनी ही व्याख्याएं करो, प्रेम की तरह मानवीय संबंध भी पूरी तरह, संपूर्णता की लय के साथ कभी भी परिभाषित नहीं किए जा सकते। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनकी प्रत्येक श्वास मनुष्य और जीवन की गरिमा को रेखांकित करने का दुष्कर कार्य अपना धर्म मान कर करती है, त्रिलोचन ऐसे ही युग-पुरुष थे। कैसे एक व्यक्ति का यथार्थ एक युग का यथार्थ बन जाता है और कैसे एक युग किसी व्यक्ति के जीवन-संदर्भों में प्रवाहित होता नजर आने लगता है, त्रिलोचन इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। मेरे लिए त्रिलोचन गुरु-तुल्य तो हैं ही, साथ ही मित्रवत् भी हैं। उन्होंने अपनी गुरुता से किसी को कभी आतंकित नहीं किया। मेरी उनसे कितनी मुलाकातें है? सौ, दो सौ... हजार या उससे भी अधिक.... त्रिलोचन से अपनी बातों, मुलाकातों और उनसे जुड़ी यादों पर एक स्वतंत्र पुस्तक की दरकार है। मेरा सौभाग्य कि मुझे त्रिलोचन का अविरल स्नेह मिला। ऐसी आत्मीयता जिसे व्यक्त करने को शब्दों का अभाव सालने लगा। शमशेर बहादुर सिंह ने एक कविता सन् 1941 ई. में लिखी थी—'कठोर साधना के कवि'—

''हे त्रिलोचन,
मौन के मोचन-सरस्वती
के
स्वन!
बिहर वन-उपवन
सघन घन का-
सा
मुक्त स्वर-साधन!
क्या—
नहीं प्रस्तर सुमन
कोमल, गहन
मन में
कला-जीवन में
चिरंतन?
उसी प्रस्तर सुमन से
कोमल
मित्र-जन मन में
अमर घन-से
हे त्रिलोचन!''

शमशेर बहादुर सिंह त्रिलोचन के मित्र और सहयात्री तो थे ही, शमशेर त्रिलोचन के मुरीद भी थे। एक कविता में त्रिलोचन कहते हैं—

''आजकल का ढंग ही विचित्र है
हमारे घर
जितने ही निकट-निकट होते हैं
उतने ही दूर-दूर
हमारे मन होते हैं।''

मन से मन की दूरी त्रिलोचन को स्वीकार नहीं। आत्मीयता से इतर त्रिलोचन के लिए कोई मकाम नहीं। विराट चेतना के कवि त्रिलोचन अपने निजत्व में और मौलिकता में आत्मपरकता के विस्तार की जैसे एक व्याख्या रचते हैं। यह अकारण नहीं कि उनकी कविताएं सीधा संवाद करती हैं—

''मैं तुमसे, तुम्हीं से बात किया करता
और यह बात मेरी कविता है...
मैं सबके साथ हूं,
अलग-अलग सबका हूं
मैं सबका अपना हूं,
सब मेरे अपने हैं
मुझे शब्द-शब्द में देखो
मैं कहां हूं!''

त्रिलोचन कालातीत कवि-व्यक्तित्व हैं। भूत,

सन् 1986 में सागर में त्रिलोचन अपनी धर्मपत्नी के साथ

भविष्य, वर्तमान, इन तीनों के मिलने से जो भाव-बोध, काल-बोध बनता है, उसी की कुछ-कुछ झलक त्रिलोचन में आप खोज सकते हैं, किसी विशिष्ट समयावधि में बांध कर त्रिलोचन के बारे में सोचना, त्रिलोचन की कद-काठी से अन्याय करना होगा। यही बात विचारधाराओं या वैचारिक पक्षधरता को लेकर भी है, त्रिलोचन भले ही प्रगतिशील कवियों में गिने जाते हैं, पर कभी-कभी मुझे ऐसा पता नहीं क्यूं लगता है कि विचारधाराओं ने जैसे त्रिलोचन में खुद को तलाश लिया है, वरना त्रिलोचन तो सिर्फ निष्काम-साधक और शब्द-पंथी हैं, अग्निधर्मा सचेतक—

''रवि, सोम, भौम, बुद्ध
गुरु, शुक्र और शनि
इन्हीं सात दिनों में से
किसी एक दिन मैं भी
मर जाऊंगा...
मैंने करने जैसा
क्या कोई काम किया
शब्द ही तो थे केवल
खेलता रहा जिनसे
मैं जी-भर
कुछ होंगे आगे भी
जिनका नाता होगा शब्दों से
वे ही उन शब्दों को देखेंगे
जिन्हें मैंने बांधा है
मुझे अपने मरने का
थोड़ा भी दुख नहीं
मेरे मर जाने पर
शब्दों से
मेरा संबंध टूट जाएगा।''

डॉ. नामवर सिंह ने बहुत सटीक कहा है कि— ''त्रिलोचन के लिए कविता वस्तुतः शब्द की कला है और शब्द-साधना ही उनके लिए परम काव्य-मूल्य। कबीर की तरह लेकिन अपने ढंग से जैसे त्रिलोचन भी हर वक्त यही जपते रहते हैं—''साधो! शबद-साधना कीजै!''

त्रिलोचन से मेरा अति परिचय रहा है, कहा जाता है कि अति परिचय में दिनोंदिन आकर्षण और खिंचाव कम होते जाते है, पर, त्रिलोचन की संगत अपवाद थी मेरे लिए और कुछ ऐसा जैसा कि एक संस्कृत कवि ने कहा है—

''कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते,

कुल्लू-मनाली साहित्य उत्सव (सन् 1995) में कवियों के साथ त्रिलोचन

सा काम धुक् कामितमेव दोग्धि।
चिंतामणिश्चांतिमेव दत्ते,
सतां हि संगः सकलंप्रसूते।।''

—(सुभाषितावली, 501)

(कल्पवृक्ष केवल संकलित वस्तुएं ही देता है। कामधेनु काम्य वस्तुएं ही प्रदान करती है। चिंतामणि भी चिंतित पदार्थ देने में समर्थ है, किंतु, सत्पुरुषों का संग सब कुछ देने का सामर्थ्य रखता है।)

त्रिलोचन के रचना-कर्म और व्यक्तित्व के अनेकानेक पहलू मेरे सामने हैं, ''क्या भूलूं, क्या याद करूं?'' जैसी स्थिति मेरी है। डोगरी कवयित्री पद्मा सचदेव ने जैसा चित्र त्रिलोचन का खींचा है, वह एकदम सच्चा और प्रामाणिक लगता है—''मृत्यु जीवन का सबसे अंतिम पड़ाव है। मृत्यु जो सुखद है, शांत है, शाश्वत् है, रहस्य है, इश्क का आखिरी कतरा है। इसके बाद सचमुच चिरागों में रोशनी नहीं रहती, और अगर रहती भी है तो उस रोशनी में कौन नहाता है, कौन जलता है, कौन उसे देख कर भस्म हो जाता है, कौन उस आग के दरिया में डूब कर पार उतरता है या बह जाता है, ये रहस्य कोई नहीं जानता, लेकिन, जीवन की ताजा, कुंवारी अछूती सुबह में जो कोई प्राची से नई-नवेली शर्माती दुल्हन की तरह झांकती, पहली किरण के पीछे खड़ी, ताजापन मृत्यु को देख लेता है, वो सारा जीवन किसी चीज से नहीं डरता। उसे रात भर नींद अच्छी तरह से आती है। वो ऋषि है, मलंग है, साधू है। कमल के फूल की तरह उस पर कोई विकार नहीं रुकता। मोती की तरह ढुलकती पानी की बूंद कमल की रंगीन पत्ती पर जरा-सा घूम कर बेआवाज धरती में समा जाती है। शायद यही जीवन है। भारतवर्ष में कई मलंग साधु-संन्यासी नाना वेष में घूमते रहते हैं। ये रमते जोगी ''जो दे उसका भला, जो न दे उसका भी भला।'' लेने का लोभ इन्हें नहीं है, देने की आतुरता है। उम्रभर संचित किया तजुरबे का शहद, उम्र भर हृदय की दीवार पर उकेरे अक्षरों के गंवई बेल-बूटे, पांवों तले रौंदे रास्ते, सड़कें, गलियां, कूचे, शाह राहें। एक ऐसे बनजोर रमते साधू का पता हम आपको देते हैं—

श्री त्रिलोचन शास्त्री,
सुल्तानपुर अवध,
जिला-गांव चिरानी पट्टी
डाकखाना—कटघरा पट्टी

कटघरा पट्टी का होते हुए भी ये रमता जोगी कभी कटघरे में नहीं रहा। कोई कटघरा क्या किसी शब्द को बांच सका है। शब्द जो खुशबू है, शब्द जो पुरुवा है, शब्द जो बादल है, बिजली है, उजास है।''

त्रिलोचन के बारे में केदारनाथ सिंह ने कहा था—''...'ताप के ताए हुए दिन' की कविताओं की जड़ें बहुत दूर तक फैली हुई

त्रिलोचन के साथ लेखक (सन् 1994)

हैं। साहित्यिक स्तर पर इन कविताओं के पीछे एक भरा-पूरा अतीत है, जिससे इनका गहरा और जीवित संबंध है। इस संबंध का सबसे सीधा प्रमाण इन कविताओं की भाषा में मिलता है। त्रिलोचन ने अपने समय की प्रचलित साहित्यिक हिंदी से अलग और अंग्रेजी-वाक्य-विन्यास तथा मुहावरों के प्रभाव से बिलकुल अछूती एक ऐसी काव्य-भाषा विकसित की है, जो पूरी तरह हिंदी है। यह एक ऐसी हिंदी है, जिसके शब्दों में लगभग एक हजार वर्षों के संघर्षों की गूंजें हैं और त्रिलोचन अपनी कविता में उन गूंजों का भरपूर इस्तेमाल करते हैं—

''समझ सुगबुगाइ
नहीं तो कहीं से
धुन आई कथा आई
....
चादर फिर फैलाई
फिर फिर तहि आई।''

हिंदी की क्लासिक कविता के सुपरिचित पाठक को यह पहचानते देर नहीं लगेगी कि त्रिलोचन की इस 'चादर' के ताने-बाने कितनी दूर तक फैले हुए हैं। एक ओर यदि उसके सूत कबीर की 'झीनी चदरिया' से मिले हुए हैं तो दूसरी ओर चादर को फिर फैलाने और फिर-फिर तहिआने की यह क्रिया अपनी तहों में तुलसी की उस वेदना को भी समेटे हुए है—

''डासत ही गई बीति निशा सब
कबहुं न नाथ नींद भरि सोयो।।''

शब्द की ऐसी गूजें कवि के संघर्ष और उसकी पीड़ा को पूरे इतिहास से जोड़ देती है।''

त्रिलोचन के संग्रह 'धरती' की एक समीक्षा गजानन माधव मुक्तिबोध ने जुलाई 1946 के हंस में लिखी थी। इसमें मुक्तिबोध ने कहा था—''...कवि की अपनी अनुभूतियां बहुत संयम के साथ प्रकट होती हैं। उसमें चीख-पुकार या अट्टहास का आलोड़न नहीं है। न वह चीज है जिसे आप अतृप्त वासना कह सकते हैं। इन सब दोषों से मुक्त, विचारों और भावनाओं से आलोकित काव्य मिलना कठिन है। साथ ही कवि की प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण क्षति-पूर्ति के रूप में नहीं आई है, वरन कवि के अपने जीवन-संघर्ष से मंज-घिसकर तैयार हुई है। इसीलिए कवि कह उठा—

''मुझमें जीवन की लय जागी
मैं धरती का हूं अनुरागी,
जड़ीभूत करती है मुझको
वह संपूर्ण निराशा त्यागी''

काशीनाथ सिंह ने ठीक ही कहा है—''कालातीत हैं त्रिलोचन। कोई सदी नहीं—कोई स्थान नहीं, कोई भाषा नहीं, जहां और जिसमें न घूमा हो त्रिलोचन।''

20 अगस्त, 1917 को जन्मे त्रिलोचन अपने

जीवन-काल में ही किंवदंती पुरुष बन चुके थे। प्रभाकर श्रोत्रिय ने त्रिलोचन के बारे में एकदम ठीक कहा है—''वे एक कसी हुई वीणा की तरह हैं कि कोई एक तार कहीं से छू दे तो देर तक झंकार, गूंज, अनुगूंज सुने। त्रिलोचन में ज्ञान सिर्फ ज्ञानराशि के रूप में नहीं है, वह 'वाक... हलंत... राशि' के रूप में भी है। ...आप किसी देशकाल, समाज, दर्शन, विचारधारा, व्यक्ति, इतिहास, संबंध, युद्ध, अर्थ, कानून, ज्योतिष, गणित, व्याकरण, छंद, शास्त्र, काव्य, आधुनिकता, परंपरा, कला यहां तक कि पेड़-पौधे, वनस्पति और पशु-पक्षियों के बारे में बारीक जानकारी त्रिलोचन से पा सकते हैं।''

शमशेर बहादुर सिंह ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था—''भाई मैं पहले यह अर्ज कर दूं कि, त्रिलोचन पर बहस करने के लिए कोई संस्कृत-दां-चाहिए, शमशेर नहीं। ऐसा शख्स, जो पिंगल शास्त्र, संस्कृत, अवधी और ब्रज को अच्छी तरह जानता हो, और हिंदी साहित्य से पूरी तरह परिचित हो।''

शमशेर बहादुर सिंह ने ही त्रिलोचन पर लिखी एक कविता में कहा—

''ओ अर्थ के साधक, शक्ति के साधक
तू धरती को दोनों ओर से
थामे हुए और
आंख मीचे हुए ऐसे ही सूंघ रहा है उसे
जाने कब से
तुझे केवल मैं जानता हूं।''

धरती को दोनों ओर से थामे हुए, सूंघते हुए त्रिलोचन की कल्पना शमशेर जैसा कवि-चित्रकार ही कर सकता है। त्रिलोचन की काव्य-संवेदना और उनके व्यक्तित्व को जैसे एक बिंब में समेट दिया है शमशेर ने। एक वक्तव्य में त्रिलोचन कहते हैं—''याद रखिए कि हिंदी में छायानुवाद युग में गद्य-काव्य लिखा गया। इस गद्य-काव्य पर छंदोबद्ध काव्य की शब्दावली और मुहावरे का पूरा असर था। तो मैंने यह चाहा कि भाषा तो एक

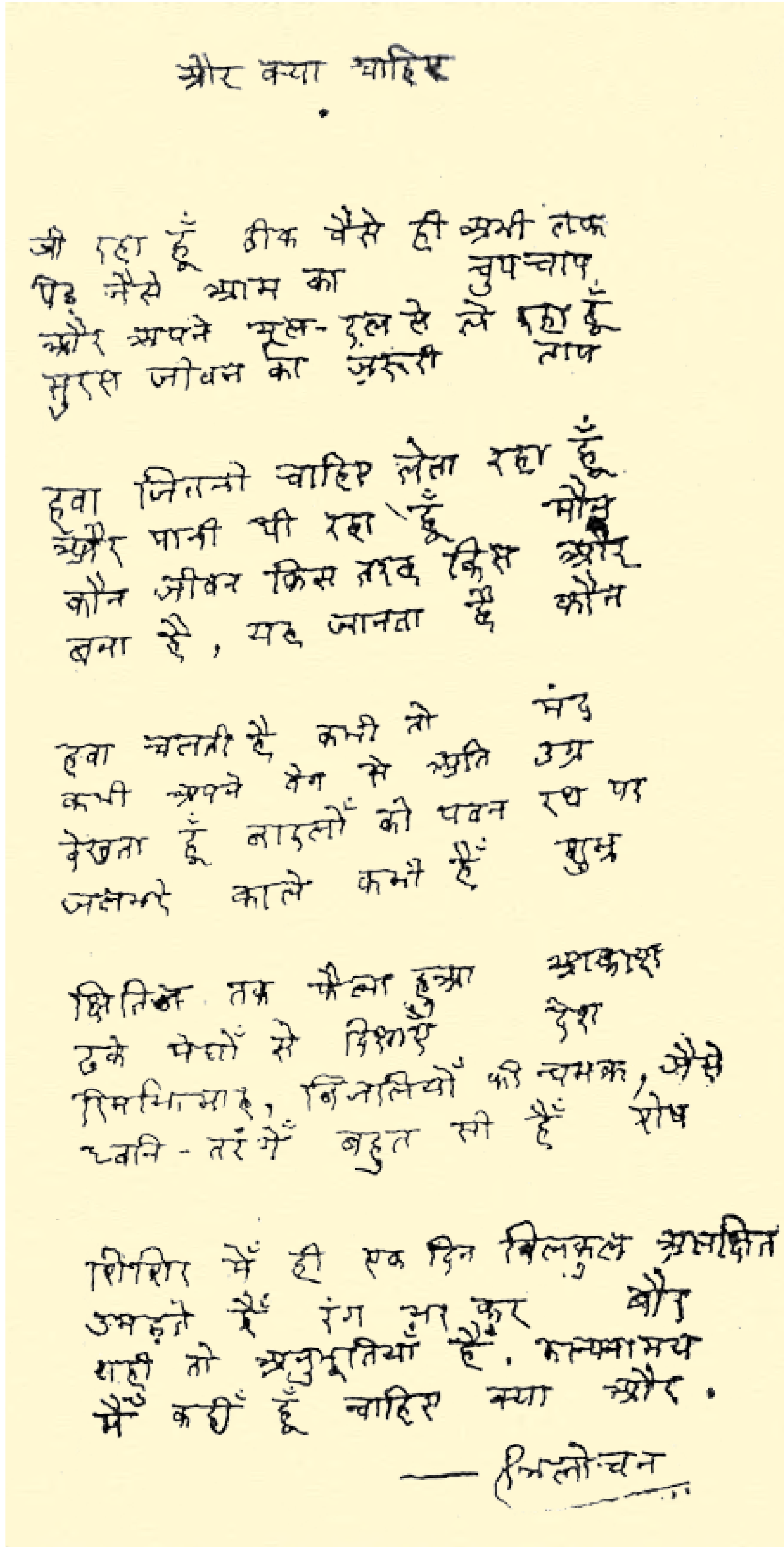
और क्या चाहिए

जी रहा हूँ ठीक वैसे ही अभी तक
पेड़ जैसे आम का चुपचाप
और अपने मूल-दल से ले रहा हूँ
सुरस जीवन का ज़रूरी ताप

हवा जितनी चाहिए लेता रहा हूँ
और पानी पी रहा हूँ मौन
कौन जीवन किस तरह किस ओर
बना है, यह जानता हूँ कौन

हवा चलती है कभी तो मंद
कभी अपने वेग से अति उग्र
देखता हूँ बादलों को पवन रथ पर
जलभरे काले कभी हैं शुभ्र

क्षितिज तक फैला हुआ आकाश
ढके पेड़ों से दिशाएँ देश
रिमझिमाहट, बिजलियों की चमक, ऐसे
ध्वनि-तरंगें बहुत सी हैं शेष

शिशिर में ही एक दिन बिलकुल अलक्षित
उभरते हैं रंग आ कर बौर
यही तो अनुभूतियाँ हैं, कल्पनामय
मैं कहीं हूँ चाहिए क्या और।

— त्रिलोचन

त्रिलोचन की हस्तलिपि में लिखित एक गीत

ही है, इसे छंद में बांधिए चाहे छंद से छूटने दीजिए, भाषा की लय पकड़िए। लय तो गद्य और पद्य दोनों में होती है। गद्य की लय थोड़ा अलग ताजी है, वह अनियंत्रित होती है और पद्य की लय नियंत्रित होती है। कवि वहां पंक्ति के अनुवर्तन में है, उसे हर पंक्ति को पूरा करना ही है, चाहे भाव हर पंक्ति के पूरा होने से पहले ही खत्म हो जाए। विचार-प्रधान कविता का विरोध अमेरिका में शुरू हुआ। कारण यह कि प्रगतिशील रचनाएं जो आ रही थीं उनसे उनके पूंजीवाद को खतरा था। आज भी उनके यहां विचार-प्रधान कविता आए तो विरोध होगा। तो हमारे यहां के मनीषियों ने समझा कि विचार को डांटो, विचार-शून्य कविता लिखो। भैया, विचार को डांट दीजिएगा तब भी विचार रहेगा। कवि पंत ने दो पंक्तियां लिखी हैं—''मुझे रूप ही भाता। प्राण! रूप ही मेरे मन में मधुर भाव बन जाता।'' याद रखिए, कवि-चित्रकार-मूर्तिकार रूप ही को देखते हैं और कवि जिस बात में आगे जाता है चित्रकार से, वह बात यह है कि जो रूप देखा, उस पर निष्कर्ष दे सकता है। लेकिन, चित्रकार-मूर्तिकार शरीर की जितनी चेष्टाएं एक साथ दे सकते हैं, उसे आप सिर्फ पथक्रम देंगे। माने काल-प्रवाह के साथ वे समांतर होंगी। समांतर चलने की क्षमता चित्रकार में है। वह क्षण के सहस्रांश को पकड़ सकता है और कवि प्रवाहित काल को पकड़ सकता है।''

त्रिलोचन की सौंदर्य-चेतना इतनी विराट है कि उसमें जगती का समूचा सौंदर्य झांकता, सिमटता नजर आता है। उनकी काव्य-दृष्टि इतनी सुमुखी और सौंदर्यमयी है कि उससे अस्वस्थ मानव-मन स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर सकता है। मेरी एक कविता है—''सजना और संवरना''। हिंदी कवि अजित कुमार का इस पर अभिमत था कि इसमें न सिर्फ त्रिलोचन की शैली का सहारा लिया गया है, बल्कि सौंदर्य और शृंगार के प्रति इसमें एक अलग तरह का भाव-बोध भी है—

''उस दिन देखा तुम्हें संवरते देर तलक जो
मेरे मन को प्यार बहुत तुम पर आया था,
तुम्हें पता है सजना और संवरना हर दिन
आंसू वाले कई दृगों को ढांढस देता,
वे सब जिनको नहीं मिला है प्यार किसी का
तुम्हें देखकर इक पल का सुख पा लेते हैं,
वे सब जिनको सदा दुखों ने पाला पोसा
उन्हें तुम्हारा रूप बहुत कुछ दे जाता है,
कवियों में है एक त्रिलोचन नाम पुराना
जीवन की कविता में उनका रंग अलग है,
पता नहीं मैं कितनी बार मिला हूं उनसे
जीवन के संदर्भों पर बातें करने को,
उस दिन देखा तुम्हें संवरते देर तलक जो
मुझे त्रिलोचन की भी उस क्षण याद आ गई,
बड़े प्यार से एक बार मुझे बोले थे—
''अपने मन की बात आज जाहिर करता हूं,
सजती और संवरती है जब कोई युवती
इसे आप सोशल-सर्विस भी कह सकते हैं,
सजना और संवरना खुद में बड़ी बात है,
बड़ी बात है औरों की नजरों में होना,
आकर्षण में बंधे हुए हैं अर्थ बहुत-से
अर्थ कई सुंदर मुखड़ों से सदा झलकते।''
कह सकते हैं ऐसी बातें सिर्फ त्रिलोचन।
जीवन की कविता पर उनकी पकड़ निराली,
जितनी अच्छी तुम लगती हो मुझे संवर कर
उससे भी ज्यादा भीतर से तुम अच्छी हो,
मन का सुंदर होना खुद में बड़ी बात है
मगर संवर कर अच्छा दिखना भी अच्छा है,
तुम अच्छी हो, इसीलिए तो तुम सजती हो
उकसाती हो मुझे और अच्छा बनने को।''

हिंदी में सर्वाधिक सॉनेट लिखने वाले त्रिलोचन अकेले कवि हैं। शेक्सपियर, दांते और प्रेट्रार्क के सॉनेट में रचे काव्य की ख्याति सर्वविदित है। शेक्सपियर ने अपने मित्र के प्रति, दांते ने अपनी प्रेयसी विएट्रिस के प्रति और प्रेट्रार्क ने अपनी परकीया प्रिया लारा के प्रति प्रेम का अप्रतिम चित्रण सॉनेट के माध्यम से किया है। त्रिलोचन के अनेक सॉनेट प्रेम की विविधवर्णी चेतना के मोहक रूप को सामने रखते हैं—

''मैं सुनता था
मौनमयी वर्णों की भाषा, सहचरता से
अनिल धन्य था, जैसे संजीवनी लहर हो
नील गगन में प्राणवायु से रली मिली सी
कली समान मनोज्ञ वृंत पर खिली खिली सी
प्राणोत्सव का जैसे पावन सजग प्रहर हो
फूल तुम्हारी सत्ता से ही मेरा जीवन
पोषित है, विकसित है, मुक्ति रूप है बंधन।

×××

फूल मुझे भाए बबूल के तूली जैसे
राशि-राशि हंसते, मानो आनंद मनाते
चेतन कण हों, हरित पीत वर्णच्छवि, ऐसे
भाव वर्ण की प्रीति कहां है।

×××

मौर फूल का बांध, कर रहा मुझे इशारा
पास पहुंचने के बबूल एकाकी प्यारा।''

त्रिलोचन ने अपने 'अमृत महोत्सव' कार्यक्रम में कहा था—''अच्छी कविता पूरा जीवन मांगती है। कवि अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से सीखता है। सामाजिक स्थिति ओर आसपास के माहौल से ऊर्जा पाता है और अपनी अनुभूतियों से प्रेरणा लेकर कविता गढ़ता है। असली कविता वही है जिसमें लोक तत्त्व हो और जीवन की धड़कन रची-बसी हो।'' लोक तत्त्व वस्तुतः त्रिलोचन की काव्य-संवेदना के अभिन्न सहचर है। उनकी अनेक रचनाएं लोक तत्त्व के पथ पर ही दौड़ती दीखती हैं—

''उस जनपद का कवि हूं जो भूखा दूखा है
नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता
कैसी होती है, क्या है वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है, कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है, वह उदासीन बिलकुल अपने से
अलग नहीं मानता, उसे कुछ भी नहीं पता
दुनिया कहां से कहां पहुंची, अब समाज में
वे विचार रह गए नहीं जिनको ढोता
चला जा रहा है वह, अपने आंसू बोता
विकल मनोरथ होने पर अथवा अकाज में
धरम कमाता है, वह तुलसीकृत रामायण
सुन-पढ़कर, जपता है नारायण नारायण।''

मेरी अनेक कविताओं में त्रिलोचन का संदर्भ

आया है, कुछ कविताएं सीधे त्रिलोचन को संबोधित हैं। ऐसी ही कुछ कविताएं मैंने त्रिलोचन को भेजी थीं। 27 जून, 1997 का सागर विश्वविद्यालय से भेजा गया त्रिलोचन का यह पत्र मेरे सामने है—

''प्रिय सारथी जी,

आपकी तीन कविताएं मिलीं... पहली कविता जिस मानसिकता में लिखी गई है, इसमें कहीं 'त्रिलोचन'- नाम न भी होता, तो भी कविता ही है। दूसरी कविता भी, उसमें 'त्रिलोचन' नाम अनिवार्य हो गया है, क्योंकि इसमें जो बातें कही गई हैं उनका समर्थन त्रिलोचन को जानने वाला ही कर सकता है, और जो नहीं जानता उसके लिए दूसरी कविता नहीं। आपकी तीनों कविताएं मुझे पसंद आई और पसंद आने का कारण यह है कि आपने इसमें गद्य और कविता का अंतर मिलाया है...'' इस पत्र में जिस दूसरी कविता का उल्लेख है, वह इस तरह है—

''त्रिलोचन!
तुम्हारी 'धरती' की गंध को
समेट नहीं पाया मैं
अपने शब्दों के ताप में,
फिर भी, मिट्टी के खिंचाव
हमारे जनपदों की काव्य-गुण-संपन्नता को
एकात्म करते हैं।
गोबर लिए आंगनों में गूंजती लोकधुनें
शब्दों में ढल कर
जीने लगती हैं
मोहार और दुआर के फर्क को।
कई बार तो लगता है
मेरे-तुम्हारे बीच की दूरी
मोहार और दुआर के बीच की दूरी है।
और तुम्हारी 'धरती' की गंध
उस दूरी को लगातार पाट रही है
और मैं जी रहा हूं फिर... फिर...
मिट्टी के खिंचाव
और अपनी चेतना पर
लोकधुनों के रचाव।''

आज जब त्रिलोचन सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, तो उनसे जुड़ी स्मृतियां एक झिलमिलाती हुई शृंखला जैसी प्रतीत होती हैं... मौन सजग हो जाता है और वाणी अवरुद्ध... शब्द शोकग्रस्त-से दिखते हैं और छंद टूटे हुए, लय लड़खड़ाती हुई... ऐसे में त्रिलोचन की अंतिम विदाई के बाद 'कवि की मृत्यु पर शोक गीत' शीर्षक से लिखी अपनी एक कविता मन-मस्तिष्क में कौंधती है—

''मौन हुआ सरताज धरा के गाते मन का
मौन हुआ संकेत धरा पर मुग्ध गगन का,
मौन हुआ संगीत हृदय के भव्य सुमन का
मौन हुआ अनुराग आज सौरभ, गुंजन का
कवि जन्मा तो इन सब ने था नेह उड़ेला
आज सभी ये मौन, शोक संतप्त हुए हैं,
जगती की पीड़ा का गायक मौन हुआ तो
रस-प्लावित सब गीत विकल हो लुप्त हुए हैं,
कवि का मरना, काल-खंड का चुप हो जाना!
कवि का जाना, एक मुखर स्वर का खो जाना!

कविवर! तुमने पांव उठाया और बढ़ चले
एक अपरिचित, अनदेखी, खामोश डगर पर!
क्षण में त्यागे राग, द्वेष, ममता, मोह सारे,
त्याग दिया अधिकार स्वयं ही अपने घर पर!
वह जगती, जिसको माना अपना घर तुमने
उसके ही सुख, दुख से नाता तोड़ लिया क्यों?
आज तुम्हारा मौन बना प्रश्नाकुल पीड़ा
शब्द-कर्म से पल में ही मुंह मोड़ लिया क्यों?

तुम गायक थे दृश्यमान हर एक सत्य के
वही दृश्य अब ढूंढ रहे मुस्कान तुम्हारी
दंतकथाओं के तुम जीते जी नायक थे
कौन व्यथाएं लील गईं पहचान तुम्हारी
मन तो जब-तब यों भी भारी हो जाता है
अक्सर गीले हो जाते हैं नयन प्रभा के!
मगर तुम्हारा जाना, जैसे चले गए हैं
जीने के सौ रंग साथ ही तेज हवा के।

शब्द-साधकों का सिरमौर कहूं तो तुमको
तो मृत्यु भी तुमसे मिल कर धन्य हो गई!
साथ तुम्हारे शब्द तुम्हारे अमर हो गए
मरता है संसार मगर कब मरते साधक!
वह कवि जिसके आगे नाच नाचता जीवन
जीवन के संघर्ष उसी की चर्चा करते!
नव-संघर्षों से जब-जब भी परिचय होगा
शब्द तुम्हारे तब पथ में आलोक भरेंगे!
आज विवश हैं और धैर्य ही रखना होगा
जाओ कविवर! तुम्हें सदा हम याद रखेंगे!''

1/5786, बलबीर नगर चौक,
शाहदरा, दिल्ली-110032

सार्थकता की तलाश में आज का हिंदी और नेपाली बाल-साहित्य

प्रो. डॉ. उषा ठाकुर

किसी भी भाषा के साहित्य में बाल-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह वह साहित्य है जो समाज के भावी कर्णधारों का मानसिक विकास करके जिम्मेवार, सफल और आदर्श बच्चों का चरित्र निर्माण करता है। बाल-साहित्य के बारे में पाल हेजार्ड का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है—''वे पुस्तकें जो बच्चों को ऐसा सरल सौंदर्य दें जिसे वे सरलता से ग्रहण कर सकें और बच्चों की आत्मा में ऐसी भावना का संचार करें जो उनके जीवन में चिरस्थाई बन जाए। वे प्राणिमात्र के प्रति मन में आस्था जाग्रत करें और साहस तथा सत्कर्म के प्रति आदर भाव बनाएं।''

साहित्य का प्रयोजन मानसिक संतुष्टि प्रदान करने, आनंद की अनुभूति प्रदान करने के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थितियों और देश-काल की यथार्थ स्थिति से अवगत करवाना तो है ही, साथ ही समाज का दिशा-निर्देशन, मार्गदर्शन करना भी है। जहां तक बाल-साहित्य का प्रश्न है, साहित्य का उत्तरदायित्व तो बाल-साहित्य के संदर्भ में और भी गुरुतर हो जाता है।

बच्चे देश के भविष्य होते हैं, समाज के सुनहले सपने होते हैं। आने वाला कल उन्हीं के कोमल हाथों में सुरक्षित होता है। अतः उस सजग-सचेत पीढ़ी के निर्माण के लिए साहित्यकार का दायित्व अत्यंत गुरुतर हो जाता है।

बच्चे देश के निर्माता हैं इसलिए बचपन से ही उन्हें एक सही दिशा में मोड़ना आवश्यक है। एक प्रचलित कहावत है कि ''बच्चों का मन-मस्तिष्क उस कच्ची मिट्टी की तरह होता है जिससे मनचाहा खिलौना बनाया जा सकता है।'' बच्चों को शैशवावस्था में जो संस्कार दिए जाते हैं, ज्ञान की जो बातें बताई जाती हैं, उन्हीं के आधार पर उनका भविष्य निर्माण होता है। बच्चे चाहे भारत के हों, नेपाल के हों या दुनिया के किसी देश के हों, उनके बचपन में ही उनका चरित्र निर्माण आवश्यक है। बच्चों के माता-पिता, दादा-दादी परिवार के अन्य गुरुजन तथा शिक्षकवृंद बचपन से ही बच्चों में सद्गुणों के संचार के लिए जो प्रयास करते हैं, उन्हीं के आधार पर उनके भावी विकास की रूपरेखा तैयार की जाती है। अतः आदर्श, वैज्ञानिक और व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर रचा गया बाल-साहित्य बच्चों को प्रदान कर युग के अनुरूप बाल-मन को मोड़ने का गंभीर दायित्व आज के साहित्यकारों पर हैं। बच्चों के चारित्रिक और बौद्धिक विकास में निश्चित रूप से बाल-साहित्य के महत्त्वपूर्ण योगदान की बात निर्विवाद है। बच्चों में चारित्रिक गुणों के समावेश करवाने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम बाल-साहित्य है। इसी बाल-साहित्य के माध्यम से भावी पीढ़ी का सुंदर और स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण संभव है। अतः इस सार्थक और उपयोगी बाल-साहित्य के विकास और संवर्द्धन में संबंधित सभी क्षेत्रों से आवश्यक सहयोग की आकांक्षा और आवश्यकता है।

बदलते हुए युग, बदलती हुई मान्यताओं के अनुरूप आज बच्चों के लिए नितांत नवीन, वैज्ञानिक और व्यावहारिक ज्ञान देने वाले साहित्य की आवश्यकता है। ऐसा साहित्य जो बच्चों के मानस पटल में वर्तमान को परिलक्षित करने के साथ ही भविष्य के लिए सुंदर मार्गदर्शन भी दे। एक ओर बाल-सुलभ प्रश्नों और जिज्ञासाओं का समाधान करे, स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करे, साथ ही उसे विकास की सही दिशा दे।

आज के जटिल, बोझिल और विषम वातावरण में कल्पनालोक की परी कथाएं, अजीबोगरीब विचित्र कथाएं, दुस्साहसिक कारनामों वाली रोचक रचनाएं, सुपरमैन की आधारहीन कल्पना आदि हमारे बच्चों को गुमराह कर रही हैं। हमारी आगामी पीढ़ी रुग्ण मानसिकता का शिकार हो रही है। यदि समय पर ही बाल साहित्य की उपयोगिता और सार्थकता पर सजग होकर विचार नहीं किया गया तो आने वाली पीढ़ी निश्चित ही दिग्भ्रमित हो कर रह जाएगी।

आज बच्चों को सामाजिक और सांसारिक ज्ञान की जितनी आवश्यकता है, अंतर्ज्ञान की भी उतनी ही आवश्यकता है। आज के जटिल सामाजिक जीवन में यह अंतर्ज्ञान ही बच्चों को सही रूप में ढाल सकेगा और विषम परिस्थितियों से लड़ने के लिए आत्म-शक्ति और अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकेगा। इस तरह बच्चों को अंतर्ज्ञान और वास्तविकता का ज्ञान दोनों ही मिलना चाहिए। सुकोमल बाल मन को प्रभावित करने वाले ऐसे ठोस साहित्य की आज नितांत आवश्यकता है जिसमें वैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाएं हों, जो वर्तमान देशकाल और परिस्थिति का व्यापक बोध कराए। बदलते हुए समय के साथ-साथ आज जिस तरह मानवीय विकास की परिक्रियाएं बढ़ती जा रही हैं, ज्ञान-विज्ञान

का क्षेत्र विस्तृत और व्यापक होता जा रहा है, उस परिप्रेक्ष्य में तदनुरूप बाल-बालिकाओं के लिए वैसी पठनीय सामग्री प्रदान करना साहित्यकार का मूल दायित्व है। ऐसी सामग्री जिसमें बच्चों की अनंत जिज्ञासाओं का शमन हो तथा जो बच्चों को मानसिक और भावनात्मक संतोष प्रदान कर सके साथ ही विकास के लिए उनका मार्ग प्रशस्त कर सके। बच्चों की चिंतन शक्ति की क्षमता को बढ़ाने तथा उनकी भावी जिम्मेवारियों के प्रति चेतना प्रदान करने का गहन दायित्व आज के बाल-साहित्यकार पर है।

साधारणतया सामान्य दृष्टि से देखने पर बाल-साहित्य की सृजनशीलता बहुत ही आसान दिखती है लेकिन सूक्ष्म और गहरी दृष्टि से देखने पर यह कार्य अत्यंत कठिन है। बाल मानसिकता को देखते हुए उन बच्चों के साथ वैचारिक तादात्म्यता स्थापित करते हुए सहज, सरल भाषा में ऐसे बाल-साहित्य की सृजना करना, जिसे पढ़कर बच्चों में बाल-साहित्य-पठन के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि जाग्रत हो, उनकी चिंतन क्षमता का विकास हो, देशकाल में हो रही घटनाओं की उन्हें जानकारी हो, समस्त जीव-जगत के बारे में उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो तथा उनके भीतर के आत्मबल को बढ़ावा मिले, उनमें प्रेरणा और प्रोत्साहन की भावना पल्लवित एवं पुष्पित हो सके।

शैशवावस्था जीवन का आधार-स्तंभ है और इस आधार-स्तंभ को अधिक से अधिक टिकाऊ और चिरस्थाई बनाने के लिए उतनी ही अधिक उपयोगी, सार्थक बाल-साहित्य की आवश्यकता है लेकिन दुख का विषय है कि आज जब सामाजिक, सांस्कृति और नैतिक मूल्यों में बड़ी तेजी से गिरावट आ रही है, हम अपने बच्चों को बाल-साहित्य की उर्वरता से अलग और दूर करते जा रहे हैं। माता-पिता बच्चों को बालोपयोगी पुस्तकें न देकर कॉमिक्स खरीद देते हैं, टी.वी. के असंख्य चैनलों का प्रोग्राम सुबह से शाम तक देखने के लिए छोड़ देते हैं। साहित्यकार बच्चों के प्रति अपने फर्ज और उत्तरदायित्व को बिलकुल भूल जाते हैं, प्रकाशक केवल आर्थिक लाभ के बारे में सोचते हैं, रेडियो और दूरदर्शन के पास भी बच्चों के लिए कोई सार्थक कार्यक्रम नहीं है। इस कारण बच्चे दिशाहीन हो रहे हैं। बाल-साहित्य व बच्चों की दूरी बढ़ती जा रही है। बाल-साहित्यकारों का स्थान व्यावसायिक लेखक लेते जा रहे हैं। इन समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है।

वैसे तो हिंदी साहित्य में बाल-साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा रही है और 'बालक', 'पराग', 'मेला', 'बाल मेला', 'नन्हें तारे' जैसी बाल पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। लेकिन परिस्थितिवश ये पत्रिकाएं बंद हो गईं। अन्य बाल पत्रिकाओं 'नंदन', 'चंदा मामा', 'चपंक' आदि अपने-अपने ढंग से बच्चों में मनोरंजन के साथ-साथ देशप्रेम, वीरता के भाव और सांस्कृतिक, चारित्रिक निर्माण में अपना सहयोग दे रही हैं। हिंदी साहित्य के अंतर्गत बाल-साहित्य को संवर्द्धन देने में आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामधारी सिंह 'दिनकर', मोहनलाल महतो वियोगी, हंसकुमार तिवारी, छविनाथ पांडेय, रामगोपाल शर्मा 'रुद्र', ब्रजकिशोर नारायण, रायदयाल पांडेय, कलक्टर सिंह केसरी, आरसीप्रसाद सिंह आदि साहित्यकारों का बहुमूल्य योगदान भुलाया नहीं जा सकता और आज भी डॉ. कन्हैयालाल नंदन, हिमांशु श्रीवास्तव, रॉबिन शॉ पुष्प, डॉ. भगवती शरण मिश्र, गीता पुष्प शॉ, डॉ. श्रीरंजन सूरि देव, आचार्य विष्णुकांत पांडेय, प्रो. सीताराम सिंह पंकज, डॉ. स्वर्ण करण, श्री नयनकुमार राठी, डॉ. मुनिलाल उपाध्याय 'सरस', दीनदयाल शर्मा, नागेश पांडेय 'संजय', डॉ. भेरूलाल गर्ग, प्रो. जीवन महता, डॉ. श्री प्रसाद, सीता राम गुप्त, परमानंद दोषी, पांडेय अजेय सिन्हा आदि बाल-साहित्यकार हिंदी बाल-साहित्य को दिशा देने में समर्पित हैं।

जहां तक नेपाली साहित्य के स्वरूप का प्रश्न है, महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने इसकी शुरुआत की थी। उनकी 'राजकुमार प्रभाकर' प्रसिद्ध बाल-खंडकाव्य माना जाता है। इसी तरह उन्होंने 'पुतली', 'सुनको विहान', 'चिल पातहरू' और 'छांगा संग कुरा' आदि बाल-साहित्य की संरचना करके नेपाली बाल-साहित्य को समृद्ध किया है। इसी तरह कवि सिद्धिचरण श्रेष्ठ की प्रसिद्ध बाल कविता संग्रह 'तिरमिर तारा' में प्रकृति, राष्ट्र तथा प्रेरणा और जागरण संबंधी विभिन्न गीतों का समावेश है। उनकी अनेकानेक बाल-कविताएं विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में तथा 'कोपिला' और 'मेरो प्रतिबिंब' कविता-संग्रह में भी संकलित हैं।

नेपाली साहित्य के बाल-साहित्यकारों में राष्ट्रकवि माधव घिमिरे का योगदान स्तुत्य है। उनकी 'घामपानी', 'बाल लहरी' आदि पुस्तकों में बाल-कविताएं संग्रहीत हैं।

इसी तरह अन्य महत्त्वपूर्ण बाल-साहित्यकारों में देवकुमारी थापा, प्रो. डॉ. चूड़ामणि बंधु, कृष्णप्रसाद पराजुली, परशु प्रधान, देवे रा राज न्योपाने आदि का नाम श्रद्धापूर्वक लिया जाता है।

श्री कृष्णप्रसाद पराजुली जी का 'रमाइला नानी' के तीन भाग (कविता-संग्रह) तथा 'सात गेड़ी को कथा', 'सुनौला तीन कुरा', 'चार चुङ्गेरी', 'लुकामारी', 'सुनकेस्त्रा' आदि कथा-संग्रह प्रकाशित हैं जिनमें बाल मनोविज्ञान का पूरा ध्यान रखा गया है।

इसी तरह कल्पना प्रधान, जनक प्रसाद हुमागाई, रमेश विकाल, प्रेमा शाह, विश्वंभर चंचल, गोपाल पराजुली, भागीरथी श्रेष्ठ, रमेश खकुरेल, अशेष पलम, शारदा अधिकारी, डॉ. मोहन राज शर्मा, प्रमोद प्रधान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नेपाली बाल-पत्रिकाएं भी उन्नति पथ पर अग्रसर हैं। प्रो. डॉ. चूड़ामणि बंधु के संपादन में प्रकाशित 'बाल-साहित्य' पत्रिका काफी उपयोगी और लोकप्रिय रही। इसी प्रकार अन्य बाल-पत्रिकाओं में 'प्रतिभा', 'किशोर', 'बाल सरोकार', 'बालमंच', 'बाल-सुधा', 'बाल-

साथी', 'बाल अमृतधारा', 'नव-प्रतिभा', 'मुना', आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

समग्रतः हिंदी और नेपाली साहित्य के अंतर्गत कविता, गीत, खंडकाव्य, कथा, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी, यात्रा-वर्णन आदि अपने विविध विधाओं में ये बाल-साहित्य प्रगति पथ पर अग्रसर हैं।

यह हर्ष का विषय है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आपसी सद्भाव के विकास के लिए बाल-साहित्य का आदान-प्रदान अनुवाद के द्वारा हो रहा है। 'पंचतंत्र' और 'ईसप की कहानियां' ने भौगोलिक सीमाओं को पार करके विश्व भर के बच्चों में विश्व-बंधुत्व की भावना का प्रसार कर रही हैं। 'गुलिवर ट्रैवल्ज' और 'रॉबिंसन क्रूसो' की कहानियों का अनुवाद भी विश्वभर के बालकों को एकता के सूत्र में बांधने में सफल हो रही है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद', पं. द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, पं. सुदर्शन आदि ने अनेक प्रसिद्ध अंग्रेजी कहानियों का अनुवाद करके हिंदी बाल-साहित्य को समृद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कुछ चीनी और रशियन बाल पुस्तकों और कहानियों के अनुवाद भी हिंदी में प्रकाशित हुए किंतु अफसोस है कि हिंदी बाल-साहित्य का अनुवाद अन्य विदेशी भाषाओं में नहीं हो पा रहा है।

इसी तरह नेपाली साहित्य के अंतर्गत भी विशेष कर अंग्रेजी और रूसी भाषा में ही बाल-साहित्य का नेपाली अनुवाद किया गया है। इस दिशा में विश्वंभर चंचल, प्रो. चूड़ामणि बंधु, विजय घालिसे आदि ने प्रशंसनीय कार्य किया है। कृष्ण प्रकाश श्रेष्ठ, राजेंद्र यास्के आदि के अनुवाद कार्य भी उल्लेखनीय हैं।

विगत की तुलना में क्रमशः हिंदी और नेपाली साहित्य में बाल-साहित्य की भी वृद्धि हो रही है। बाल साहित्य में विकास और संवर्द्धन के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं, पुरस्कारों के द्वारा प्रोत्साहन कार्य भी जारी है। हिंदी साहित्य में भी सुदीर्घ बाल-साहित्य सेवा के लिए डॉ. श्रीप्रसाद (वाराणसी) को मनोहर सिंह मेहता स्मृति बाल-साहित्य पुरस्कार एवं श्री सीताराम गुप्त (जयपुर) को 'तीजबाई मेहता स्मृति बाल-साहित्य पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। बाल साहित्य की श्रीवृद्धि और विकास के लिए ऐसे प्रयास सराहनीय हैं किंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में सरकारी और जनता दोनों ही स्तर पर सक्रियता और सहयोग की आवश्यकता है। हम सबों को एकजुट हो कर अपने भावी कर्णधारों के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में संलग्न हो जाना चाहिए।

बाल-साहित्य रचना के लिए उन्मुख साहित्यकारों के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें बाल मनोविज्ञान का, बाल अभिरुचि का, बच्चों की बाल सुलभ प्रवृत्तियों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। इसी तरह बाल पत्रिका के संपादन क्षेत्र में भी कुशल संपादक के साथ ही बाल मनोविज्ञान का ज्ञान, मनोरंजनपूर्ण रचनाएं, रोचक प्रस्तुति की जानकारी, रचनाओं का सुंदर संयोजन और संतुलन, भाषागत सरलता, आकर्षक चित्रांकन तथा सुंदर साज-सज्जा आदि की आवश्यकता दिखाई देती है। साथ ही पुस्तक के मूल्य, वितरण और व्यवस्थापन आदि का भी बाल साहित्य की समृद्धि में पूरा असर पड़ता है, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। बाल-साहित्य अर्थ लाभ की दृष्टि से नहीं बल्कि बच्चों के भावी भविष्य निर्माण की दृष्टि से सुलभ किए जाने चाहिए। इसके लिए सरकारी सहयोग, शैक्षिक संघ, संस्थाओं का सहयोग और सद्भावनाएं अपेक्षित हैं। खास करके 'यूनेस्को' जैसी संस्थाएं इस क्षेत्र में अधिक से अधिक सहयोग देकर अधिक कामयाबी प्रदान कर सकती हैं। बाल-साहित्यकारों को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'सरस्वती सम्मान', 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' जैसे महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित किया जाना चाहिए तभी बाल-साहित्यकार निस्वार्थ भाव से साहित्य साधना में पूरी तरह समर्पित हो सकेंगे।

निष्कर्षतः उपयोगी बाल पत्रिकाओं, सार्थक बाल पुस्तकों के निर्माण में लेखक, प्रकाशक, माता-पिता, शिक्षकवृंद तथा सरकार सभी का यह सामूहिक दायित्व है कि अपने बच्चों को संतुलित मानसिक खुराक देने में कृपणता न दिखाएं। बाल-साहित्य स्वर्णिम प्रभात की आशाएं हैं। हम सभी बच्चों को ठोस, समृद्ध, सार्थक बाल-साहित्य सुलभ कराने के लिए दृढ़ संकल्प लें तथा तदनुरूप अपने अपने क्षेत्र से क्रियाशील हों। यही समय की मांग और युग की आवश्यकता है।

प्राध्यापक एवं प्रमुख, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
कीर्तिपुर कैंपस, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल

लोक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

धीरा वर्मा

''कांगरेसी गोदनवा गोदाय दे बालमा,
कांगरेसी गोदना गोदाय दे
मोहे बिंदिया मंगाय दे।
मोरी बिंदिया में (हो) मोरी बिंदिया में
जैहिंद लिखाय दे बालमा,
हो लिखाय दे बालमा
कांगरेसी...।''

प्रस्तुत लोकगीत में एक नारी अपने बालमा (पति) से आग्रह करती है कि मेरे हाथों में कांगरेसी गोदना गोदवा दो और मेरे माथे के लिए ऐसी बिंदिया लाओ जिस पर जैहिंद लिखा हो।

अधिक समय नहीं हुआ जब राष्ट्रीय चेतना का पर्याय 'कांग्रेस' और 'जै हिंद' ये दो शब्द थे। कांग्रेस केवल एक राजनीतिक दल ही नहीं था, वह एक ऐसा अवधारणामूलक शब्द था जिसका अर्थ था देश के वे समस्त लोग जिनका एकमात्र लक्ष्य था 'स्वराज' और इस 'स्वराज' के लिए एकजुट होकर राष्ट्रीय संघर्ष।

साहित्य मूलतः एक सामाजिक अभिव्यक्ति है। अपने परिवेश से प्रभावित होकर साहित्यकार अपने भावों और विचारों की जो अभिव्यक्ति करता है वह जहां साहित्यकार को एक ओर आत्म संतोष देता है, वहीं दूसरी ओर उसको यह भी लगता है कि समाज में होने वाली घटनाओं के प्रति उसकी जो प्रतिक्रिया है, उसको ईमानदारी से वह अभिव्यक्त कर सका है। ये प्रतिक्रिया जहां परिनिष्ठित साहित्य में विभिन्न सामाजिक और साहित्यिक मर्यादाओं में रह कर अभिव्यक्त होती है, वहीं लोक साहित्य में वह अधिक निश्छल, मार्मिक और तीखी होती है। लोक की अपनी एक मर्यादा है किंतु अभिव्यक्ति की ईमानदारी उसकी पहली शर्त है। यही कारण है कि लोक साहित्य मन पर गहरा प्रभाव डालता है।

हिंदी, भारत के एक बहुत बड़े भू-भाग की भाषा है। पूर्व में मिथिला से लेकर पश्चिम में बाड़मेर और जैसलमेर तक तथा उत्तर में नेपा की तराई से लेकर दक्षिण रायपुर और खंडवा तक हिंदी का मातृभाषा-भाषी क्षेत्र है। इतना बड़ा भू-भाग भारत के ग्यारह प्रदेशों का क्षेत्र है (उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, अंडमान निकोबार) जो देश का लगभग आधा हिस्सा है। इतने व्यापक क्षेत्र में जो कुछ राजनीतिक और सामाजिक हलचल होती है, उसका जनमानस पर प्रभाव पड़ता है और ये प्रभाव उसके वाचिक साहित्य में देखा जा सकता है। यह क्षेत्र जहां एक ओर राम और कृष्ण का क्षेत्र है वहीं दूसरी ओर शताब्दियों से भारतीय राजनीति का भी क्षेत्र है।

भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप विविध कालों में अलख जला रहा है। किंतु वह भारतेंदु काल में अर्थात् उन्नीसवीं शती के आठवें दशक से बहुत अधिक मुखर होने लगा है। यही कारण है कि केवल भारतेंदु हरिश्चंद्र ही नहीं, भारतेंदु मंडल के सभी प्रमुख स्तंभों जैसे बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और चौधरी बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' सभी की रचनाओं में दिखेगा। इतना ही नहीं ये सभी लेखक-संपादक राष्ट्रीय चेतना को देशव्यापी और प्रभावी बनाने के लिए लोक शैलियों का प्रयोग करने लगे जिससे उनका संदेश जनसामान्य के मध्य दूर-दराज के क्षेत्रों में फैल सके। एक समय वह था जब राष्ट्र छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था किंतु अंग्रेजों के समय में भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप बदला और यह राष्ट्रीय चेतना उस समय और भी बलवती हो गई जब महात्मा गांधी ने सारे राष्ट्र को जिसमें पुरुषों के साथ स्त्रियां भी सम्मिलित थीं, किसान के साथ पूंजीपति भी थे, राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों और विधिवेत्ताओं के साथ उद्योगपति भी शामिल थे। गांधी ने सबको साथ लेकर राष्ट्रीय चेतना का बिगुल बजाया और अंग्रेजों को, जिन्हें भारतीयों ने फिरंगी नाम दिया था, भारत से खदेड़ कर 'स्वराज' को स्थापित करने की बात उठाई हीं नहीं, जन-जन तक पहुंचाई थी। वे राष्ट्रीय चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है वहीं लोकमानस भी अपनी बोली में अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता है। सन् 1920 के विदेशी बायकॉट आंदोलन की स्मृति तथा महात्मा गांधी का लोकप्रभाव प्रस्तुत गीत में दिखाई पड़ता है–

''दुनियां में मचा दिया शोर,
महात्म गांधी ने।
घर-घर में चरखे चलवाए,
सूऽऽऽत कतवाए,
महात्मा गांधी ने।
विधवा को दिए रुजगार,
महात्मा गांधी ने।
खद्दर-गाढ़े सबने बुनवाए,
लट्ठा रेसम जलवाए,
महात्मा गांधी ने।।''

हिंदी जैसे व्यापक भू-भाग की भाषा में राष्ट्रीय चेतना का स्वर हिंदी के सभी क्षेत्रीय भाषा रूपों में अभिव्यक्त है। एक ओर जहां जनमानस गांधी के स्वराज के सपने देखता है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना के रूप में पर्दे में रहने वाली एक भारतीय नारी अपनी स्थिति में आमूल परिवर्तन चाहती है। शिक्षा प्राप्त कर वह एक आधुनिका के रूप में अपने अस्तित्व की तलाश में दिखती है। प्रस्तुत गीत में एक स्त्री घर से निकल कर बाहर की दुनियां देखना चाहती है। वह आधुनिक प्रसाधनों का प्रयोग करना चाहती है–

''लिखाय नहि देत्यो, पढ़ाय नहिं देत्यो,
सैंया फिरंगिन बनाय नहिं देत्यो।
लहंगा दुपट्टा नीक न लागे,
मैमन का गउना मंगाय नहिं देत्यो।
हम न सोबे कोठा अटरिया,
नदिया पै बंगला छबाय नहिं देत्यो।
सरसों का उबटन हम न लगइबे,
साबुन से देहिया मलाय नहि देत्यो।
कब लग बैठी काढ़े घुंघटवा,
मेला तमासा में जाए नहि देत्यो।
गोबर से न लीपब पोतब,
चूना से भितिया पोताय नहिं देत्यो।।''

पूंजीपति स्वराज के लिए अपने विदेशी वस्त्र भंडार में आग लगा कर, अपने को इसलिए गौरवान्वित अनुभव करता है क्योंकि वह विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर रहा है जिससे स्वदेशी उद्योग को मान्यता मिले और जन समाज आत्मनिर्भर बन सके। स्वयं सूत कात कर, अपने हाथों से कपड़ा बुनकर, खद्दर पहन कर आत्मनिर्भर बनने का जो मंत्र गांधी ने दिया था, उसको जनमानस ने पूर्णतः स्वीकार करते हुए गांधी के आंदोलन में अपनी आस्था दिखाई थी। यही भाव इस गीत में देखा जा सकता है–

''बिदेशी करो बहिष्कार, ई होरी मां,
मलमल डारौ, मखमल डारौ,
लंकासायर का लट्ठा, ई होरी मां।
मेनचेस्टर की तंजेब, होय धुआंधार,
ई होरी मां।
गांधी महातमा, चरखा चलाइन।
खद्दर से कर लो पियार,
ई होरी मां...।''

भारतीय नारी जिस प्रकार से अपने पूरे परिवार के लिए समर्पित है, परिवार के हर सदस्य का ध्यान रखते हुए सबसे जुड़ी हुई है, अपने समाज, अपने राष्ट्र के लिए भी सब कुछ करना चाहती है व हर प्रकार से अपने देश पर मर मिटने को तैयार है। लोकगीत में ये भावना इस प्रकार से अभिव्यक्त है–

''प्रीतम चलूं तुम्हारे संग,
जंग में पकड़ूंगी तलवार।
खद्दर के सब वस्त्र बनाऊं,
सारी पबलिक को पहनाऊं।
मैं भी करूं सूत तैयार,
प्रीतम चलूं तुम्हारे संग...।।
भारत को आजाद करूंगी,
दुश्मन को बरबाद करूंगी।
मैं भी करूं नमक तैयार,
प्रीतम चलूं तुम्हारे संग...।।
जेल तोप से नहीं डरूंगी,
बिना मौत के नहीं मरूंगी।
गोली खाने को तैयार,
प्रीतम चलूं तुम्हारे संग...।''

समाज में व्याप्त कुरीतियों को हटाने के लिए भी महिलाएं पीछे नहीं रही हैं। यह भी राष्ट्रीय चेतना ही है जो इस समय संपूर्ण भारत के नारी समाज में व्याप्त दिखाई देती है। एक लंबे समय से शराबी, जुआरी पति से पिटती, दुत्कारी गई स्त्री इतनी जागरूक हो गई है। वह कमर कस लेती है कि इसमें सुधार लाकर ही रहेगी। डांट कर, समझा-बुझा कर एक जुआरी को जुआ न खेलने की नेक सलाह दे रही है–

''जुआ मत खेलो, रे जुआरी।
सिलुआ भी हार आए, चादर भी हार आए,
टीका मत हारो, रे जुआरी।
हंसला भी हार आए, कठला भी हार आए,
ये बेंदी मत हारो, रे जुआरी।
अम्मा भी हार आए, बहना भी हार आए,
हमें तो मत हारो, एरे जुआरी।।''

साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। जो कुछ समाज में घटित होता है वह उस समय के साहित्य में उभर कर आता है। यदि किसी देश के इतिहास को जानना है तो साहित्य उसका सबसे प्रामाणिक दस्तावेज है और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के प्रति मानवीय संवेदनाओं का सबसे सच्चा स्वरूप उस देश के लोकगीतों में आपको दिखेगा। सामाजिक परिस्थितियों के प्रति सबसे पहली प्रतिक्रिया लोकमानस की होती है जिसे कालांतर में मुनिमानस एक सजे संवरे ढंग से अभिव्यक्त करता है। विवाहगीत या हमारे संस्कार गीतों तक में भी राष्ट्रीय चेतना का स्वर गूंजता है–

''तिरंगा झंडा लग रहा बन्ने के कमरे में।
बाबाजी पूनी बांट रहे, बन्ने कमरे में।
दादी भी चरखा कात रहीं, बन्ने के कमरे में।
गांधी का झंडा लग रहा, बन्ने के कमरे में।।''

देश की दुर्दशा और विदेशी शक्तियों का आतंक देख कर और देश में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को देख कर जड़ से उखाड़ने के लिए जन-मन संकल्प लेता है और उसकी ये मनोभावना लोकगीतों में किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है उसे भारतेंदु-युग के लोकप्रिय कवि 'परसन' की इस रचना में देख सकते हैं जिसमें वह विदेशी सत्ता के प्रभाव का वर्णन 'बिरहा' शैली में करते हैं–

''पतिबरता का रोटी नाही, बिसुआ का पूरी।
भई का मार मार पठवे मंजूरी।।
आप चढ़े बड़ घोड़ बिरीहिया,
आप चढ़े बढ़ घोड़,
भूखौ ऊपर टिक्कस लागे, दुखिया बेगारी।
काम करावै डाट डाट कै, दै दै मार गारी।।
अंगरेजी सरकार बिहिया, अंग्रेजी सरकार।
चोर को तो धरती नहीं, भल मनई पकड़ती।
थाना कोतवाली मां, बैठ बैठ है अकड़ती।।
पुलिस है जालिम जोर बिरहिया,
पुलिस है जालिम जोर...।।''

देश में राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रबल हो सके और सारा देश एकजुट हो कर विदेशी शक्तियों से मुक्ति के लिए सक्षम बन सके, इसके लिए

आवश्यक था कि देश के छोटे-छोटे राज्य एक हो कर और बड़ी राष्ट्रीय शक्ति के रूप में उभरे जिससे विदेशी प्रभुओं का सफल विरोध हो सके। यह स्थिति लोकमानस समझता है कि देश की शक्ति सब राज्यों के मिलने से बढ़ेगी और तभी देश स्वतंत्र हो सकेगा। एक राजस्थानी लोकगीत में यह स्वर कितना मुखर है—

''आज तो सोणारो सूरज,
उग्यो उग्यो रे लाल।
मोतिड़ा रा तोरण जगमगावेरे,
हो राजस्थान प्यारो लागे जिये भावे रे।
एक हुआ रजवाड़ा सगला ही आन मिल्या,
सोणारो सूरज ऊग गो।
तलवारा टांक दी, ऊंची खूंटी रे माय।
झगड़ा सूं मनड़ो ऊब गयो,
मन में करुणा घणा हरषावेरे।।
हो राजस्थान प्यारो लागे जियो भावे रे।
बिलख बिलग टाबरियां रोवेला नाहि।
गाढ़ी मेहनत रो फल पावांला।
कर करने खेतियां, धान निपजावाला।
गावां ने स्वर्ग बनावाला।
हो राजस्थान प्यारो लागे जिये भावे रे।।''

राष्ट्रीय संघर्ष के मूल में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप विविध रूपों में देखा जा सकता है। सभी अब यह अनुभव करने लगे थे कि अंग्रेज जो इस देश में विदेशी व्यापारी बन कर आए थे, वे इस देश के सुख और संपत्ति का निरंतर दोहन कर देश को कमजोर बनाते जा रहे हैं। उनके शोषण से देश निरंतर जर्जर होता जा रहा है इसिलए देश का कल्याण, उनको देश से निकाल कर ही संभव है। ये बात राष्ट्रीय चेतना के रूप में हर देशवासी के मन में बैठ गई थी, इसीलिए इस राष्ट्रीय चेतना ने एक बड़े राष्ट्र आंदोलन को जन्म दिया और इसका नेतृत्व गांधी ने किया। कैसे राज्य की कल्पना एक जनमानस के मन में बैठ गई थी, इसका स्वरूप इस लोकगीत में देखा जा सकता है जहां सिख, ईसाई, हिंदू, मुसलमान सब मिल कर के बापू के सपने को साकार करने में लगे हुए हैं—

''जगि रहि बापू केर सपन।
महकि उठे खेतवा, लहकि उठी रेतवा।
चमकि उठे कलियां, गमक उठी गलियां।
मिट गई जियरा केरि तपन।।
भागि गए बिदेसिया, जागि गए सुदेसिया।
टूटी हथकड़ियां आई सुभ घड़ियां।
सजनिया अब है देस अपन।।''

राष्ट्रीय चेतना जितने जीवंत और प्रखर रूप में हिंदी लोकगीतों में मुखर दिखती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इतिहास जहां घटनाओं का व्यवस्थित और प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है, परिनिष्ठित साहित्य जहां भावनाओं को सीमित और संयमित रूप में रखता है, वहीं लोक साहित्य मानव मन के निश्छल भावों को जो अपने आस-पास की घटनाओं के प्रति उसकी उन्मुक्त और ईमानदार प्रतिक्रिया होती है, उसको अभिव्यक्ति देने के कारण बड़ा प्रभावपूर्ण और मर्मस्पर्शी हो जाता है। देश की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति जन-मन की सच्ची प्रतिक्रिया जानने के लिए लोक साहित्य से अधिक प्रामाणिक और पारदर्शी विवरण अन्यत्र दुर्लभ है।

73, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110088

रिश्तों की जरूरत होती है

सोनरूपा विशाल

जब इंद्रधनुष से लम्हों को
रंगों की जरूरत होती है
तब होठों की खामोशी को
लफ्जों की जरूरत होती है

जब वक्त मेहरबां होता है
तो याद नहीं आते अपने
जब वक्त बुरा आ जाता है
अपनों की जरूरत होती है

सच बोलने वाले लोगों को भी
हौसला हमसे मिलता है
जिस वक्त भी उनके तरकश को
तीरों की जरूरत होती है

अफसोस हमारी आंखों से
उस वक्त ही नींदे उड़ती हैं
जिस वक्त हमारी आंखों को
ख्वाबों की जरूरत होती है

अब वक्त नहीं जब बच्चों से
हर बात हम अपनी मनवाएं
सच बात तो ये है नरमी भी
रिश्तों की जरूरत होती है।

नमन प्रोफेसर्स कॉलोनी, बदायूं (उ.प्र.)

बाउल लोकगीत की अंतरराष्ट्रीय आध्यात्मिक संस्कृति

डॉ. शुभंकर बनर्जी

भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा में बंगाल की देन अभूतपूर्व रही है। विशेषतः लोक सांस्कृतिक गायन के क्षेत्र में बंगाल का महत्त्वपूर्ण योगदान स्वयंसिद्ध है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण है—लोक-संगीत 'बाउल'। रोचक तथ्य यह भी है कि 'बाउल' लोक-संगीत ने धर्म और देश की सीमा के पार जाकर सर्वधर्म समभाव तथा सार्वभौमिक स्वरूप धारण किया है। न केवल पश्चिम बंगाल बल्कि त्रिपुरा, असम, ओडिशा, मैथिली आदि क्षेत्रों में तथा भारत की सीमा के पार बांग्लादेश में भी बाउल लोक सांस्कृतिक संगीत अत्यंत प्रचलित तथा लोकप्रिय है। गांव की गलियों से लेकर लोक सांस्कृतिक उत्सवों तक बाउल गायकों की आध्यात्मिक लोक संस्कृति से परिचय हो जाता है।

बाउल गायकी की विशेषता है—''सूफी और सनातन दोनों की भक्ति परंपरा का अनोखा संगम' जोकि भारतीय गंगा-यमुनी संस्कृति की प्रतिनिधी लोक संस्कृति की संगीतमय प्रस्तुति है। बाउल गायक वास्तव में हिंदू-मुसलमान की शुद्ध भक्ति की अभिव्यक्ति की संयुक्त परंपरा के पथ के आध्यात्मिक यात्री हैं। परंतु वर्तमान अत्याधुनिक विश्व समाज में बाउल लोक-संगीत, अपनी सार्वभौमिकता के बावजूद, उपेक्षित लोक संस्कृति है।

सोलहवीं शताब्दी के पूर्व इस लोकसंस्कृति का शुभारंभ हुआ था। उपर्युक्त उपेक्षित परिस्थिति में रहते हुए भी बंग-भाषा की संस्कृति में बाउल-संगीत की उपस्थिति अहम बनी हुई है। अतः यहां बाउल परंपरा की सशक्त नींव की समझ आवश्यक है। दरअसल बाउल गायन में अवतारी पुरुष श्रीकृष्ण चैतन्य गौरांग महाप्रभु की वैश्विक भक्ति आंदोलन (प्रेम भक्ति) की छाया तो है ही, साथ ही निर्गुण भक्ति परंपरा के अंतर्गत संत कबीर तथा लोक भक्ति-संगीत के प्रतिनिधि कवि एवं गायक महात्मा चंडीदास की भक्ति धारा की भी छाप है। बाउल गायकी में संपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा सहित सहजिया वैष्णव संप्रदाय का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। अलमस्त बेसुधी यदि सूफियों से मिली है तो दूसरी ओर प्रेम भक्ति का बेसुध रंग की चैतन्यावस्था श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु से मिली है।

भारतीय संत साहित्य में सामाजिक चेतना की प्रबलता थी और बाउल की समस्त परंपरा में इसकी सांस्कृतिक छाप गहनतम थी। बाउल लोक गायकों में हिंदू-मुसलमान का कोई भेद नहीं होता है, वह हिंदू या मुसलमान दोनों ही हो सकते हैं। जिस तरह कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं में 'मनेर मानुष' के लिए प्रेम गीत की रचना निबद्ध है और वे 'रवींद्र संगीत' के रूप में चिह्नित है उसी तरह बाउल परंपरा में भी इस परंपरा के प्रधान गुरु लालन फकीर ने 'मनेर मानुष' के लिए प्रेम संगीत की रचना की जोकि 'बाउल-गीत' के रूप में जन-साधारण में लोकप्रिय है।

लालन फकीर ने प्रायः इस तथ्य पर बल प्रदान किया, ''जन्मते हुए, मरते हुए, मैंने कभी जात नहीं देखी। दो टके की ताबीज पहन कर कोई मुसलमान हो जाता है तो जनेऊ पहन कर कोई हिंदू।'' उन्होंने जातिवादी विचार पर आध्यात्मिक भक्ति को प्राथमिकता देते हुए आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा, ''बाजार में यदि जात-पात से घिरी मानवता मैंने पाई होती तो मैं उसे जला डालता।''

दरअसल बाउल गायक कर्मयोगी हैं। वे भिक्षा मांग कर अपना जीविकोपार्जन नहीं करते। उनके प्रथम गुरुदेव लालन फकीर स्वयं पान की दुकान चलाते थे। श्री उपेंद्रनाथ दास ने लगभग बीस वर्ष की कठिन लंबी साधना के बाद 'बाउल लोकसंस्कृति' की परंपरा का पालन करने वाल बाउल गायकों के जीवन पर अपनी पुस्तक तैयार की थी। उनके अलावा कई अन्य महान विभूतियों (जैसे—क्षितीज मोहन सेन, सौमेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय, गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर और धर्मवीर भारती) ने बाउल गायकों के जीवन और संदेश पर अहम कार्य किया।

वर्तमान वर्षों में बाउल लोकसंस्कृति पर हिंदी में सबसे महत्त्वपूर्ण तथा समृद्ध कार्य डॉ. हरिश्चंद्र मिश्र, विश्व भारती शांतिनिकेतन के आचार्य ने अपनी पुस्तक 'बंगाल के बाउल ओर उनका काव्य' में किया है। दूसरी ओर बंगाल के इन लोक कलाकारों के जीवन पर पद्मभूषण से सम्मानित कलाकार यामिनी राय ने भी कई शानदार चित्र बनाए हैं। इस प्रकार से कूची की सहायता से इन समर्पित कलाकारों को आदर-सम्मान प्रदान करने का सार्थक प्रयास किया गया है।

भारतीय 'अध्यात्म दर्शन' में 'पुरुष' (अर्थात् परमात्मा, परमेश्वर, परब्रह्म, सर्वेश्वर) स्वयं ही 'चैतन्य स्वरूप' है। चैतन्य उनका स्वभाव है। अतः बाउल तंत्र साधन में 'मनेर मानुष' (मन के पुरुष) व्याख्यायित है। पुरुष साक्षी चैतन्य

स्वरूप है तथा प्रत्येक जीवात्मा में भी इसी का चैतन्य, वास्तव में, प्रकाशित है। बाउल संस्कृति में पुरुष की प्रकृति (नारी) होती है। अतः अपने जीवन में भी वे स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि बिना प्रकृति की सहायता से इनकी साधना पूर्ण नहीं होती है। नर-नारी एक दूसरे के परिपूरक हैं। पुरुष (परमेश्वर) भी प्रकृति (आदि शक्ति) के बिना अपूर्ण है। परमेश्वर को वे अपने मन का 'पुरुष' (मनेर मानुष) मानते हैं (अर्थात् परमात्मा का निवास आत्मा के भीतर है)। परमेश्वर ही मानव मन का पुरुष है। उदाहरणतः संत कबीर ने जीवात्मा का स्वतंत्र रूप अस्वीकार किया है। उन्होंने जीवात्मा के भीतर की आत्मा को परमात्मा के परम तत्त्व का ही लघु (अर्थात् सूक्ष्म) रूप माना है। संत कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के इस अद्वैत भाव (अभिन्नता की अवधारणा) को बूंद और समुद्र के उदाहरण के साथ समझाया है। अतः संत कबीर ने यह मान्यता सिद्ध की है कि ब्रह्म का साक्षात्कार (ब्रह्मज्ञानी या ब्रह्मानंदी की अवस्थिति) होने पर आत्मा-परमात्मा में और परमात्मा-आत्मा में पूर्णतः लीन हो जाता है। अतः अपने पृथक अस्तित्व से अग्रसर होकर, परमात्मा से अभिन्न होने की स्थिति प्राप्त करते हुए, 'परम तत्त्व ज्ञान' की उपलब्धि के बाद जीवात्मा का पृथक अस्तित्व नहीं रह जाता है।

उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार ही, बाउल का दर्शन भी रूप से स्वरूप की ओर अग्रसर होता है। उदाहरणतः बाउल की भक्ति परंपरा की अभिधारणा यह है—''कृष्ण रूप है, राधा स्वरूप है।'' इस प्रक्रिया के अंतर्गत कृष्ण और राधा का द्वैत 'मनेर मानुष' को आह्लादित करता है। सृष्टि में प्रकृति तत्त्व की सर्वोपरि भूमिका की स्वीकृति बाउल परंपरा के रजस्वला प्रकृति (स्त्री) की पूजा होती है।

उल्लेखनीय है कि सहजिया वैष्णवों के साथ ही सूफी प्रभाव से भी बाउल परंपरा प्रभावित है जिसके अंतर्गत गुरुदेव का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी तरह भक्ति काल में नाथ साहित्य में भी गुरु का महत्त्व स्वयंसिद्ध ही है। वैसे नाथपंथियों ने वैराग्य से मुक्ति प्राप्त करने की संभावना मानी है जबकि वैराग्य सद्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। अतः गुरुदीक्षा एवं गुरुमंत्र को अनमोल माना गया है। परंतु नाथ परंपरा के साथ बाउल परंपरा का यह अंतर भी है कि नाथ परंपरा में नारी से दूरी है जबकि बाउल में नारी से सामीप्य है।

सबसे अहम त्रासदी तो यह भी है कि बाउल लोकसंस्कृति के लिखित इतिहास का नितांत अभाव रहा है। अतः जनश्रुति ही जानकारी का मुख्य आधार है। बाउल कवि गुरु लालन फकीर के देहांत के बाद बाउल-गीत आदि के संग्रह हेतु कार्य प्रारंभ हुआ। उनके जीवित रहते इस ओर कोई कार्य नहीं हुआ था।

साधारणतः बाउल संन्यासी श्वेत वस्त्र पहनते हैं और बाउल महिलाएं श्वेत साड़ी पहनती हैं। शेष बाउल संप्रदाय के लोग गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। महिला संन्यासिन सेवादासी के रूप में होती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में, युनेस्को ने सन् 2005 में इस लोक गायनकला की परंपरा को 'मानवता की अमूर्त धरोहर' के रूप में पहचान दी। सूफी संत परंपरा के प्रभाव से युक्त बाउल-गीत की परंपरा में जाति भेद का कोई स्थान नहीं है। इस तरह धर्म की भी कोई दीवार नहीं है, हिंदू-मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं है।

सूफी भक्ति-दर्शन के सबसे बड़े संत कवि मलिक मोहम्मद जायसी ने भी हिंदू-मुसलमान के भेद को अस्वीकार करके अपनी सूफी रचनाएं प्रस्तुत की थी। इस क्रमानुसार, अन्य सूफी संतों, जैसे—मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, नूर मुहम्मद (स्वाभाविक रूप से कवि जायसी भी इन कवियों में सम्मिलित हैं) आदि ने प्रचलित हिंदू प्रेम कहानियों को कथानक बना कर रचनाएं की। जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती को परमात्मा मान कर उसके रूप सौंदर्य की छटा की व्याख्या की। संत कवि जायसी की मान्यता यह थी कि ''इश्क मिजाजी'' अर्थात् लौकिक प्रेम से ''इश्क हकीकी' अर्थात् ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति हो सकती है। यदि सूफी कवि जायसी की सूफी रचनाओं का गहन अध्ययन करके मूल भाव का पता लगाने का प्रयास किया जाए तो यह तथ्य उभर कर आता है कि हमें भी वही प्रेमभाव प्राप्त होगा जो 'मनेर मानुष' (मन के मानुष) की खोज की ओर स्पष्ट इंगित करता है।

सूफी कवि जायसी ने 'पद्मावत' में सिंहलद्वीप (श्रीलंका) की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का चित्रण किया है। इस रचना में उन्होंने चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन को जीवात्मा प्रतीक माना है और पद्मावती को परमात्मा का। यहां जायसी का मत है कि प्रेम की चिंगारी यदि हमारे हृदय में पड़ गई और उसे सुलगाते रहने से उस अद्भुत दैवीय अग्नि से सारा लोक विचलित और प्रकाशित हो जाता है। भगवत् प्रेम की यह चिंगारी हमारे हृदय में सद्गुरु द्वारा ही डाली जाती है। परंतु उस दिव्य अग्नि को और सुलगाने का कार्य साधक ही करता है। कवि जायसी धर्म से मुसलमान थे परंतु पद्मावत में उन्होंने हिंदू धर्म की होली, दीवाली जैसी सांस्कृतिक परंपराओं तथा भारत के पौराणिक आख्यानों का भरपूर सहारा लिया। इसमें भारत में प्रचलित लोकाचारों का उल्लेख भी किया गया है। देवी की आराधना, राम, कृष्ण, अर्जुन आदि सभी पौराणिक एवं प्रागैतिहासिक नायकों की पूजा, उनकी काव्यधारा में समाविष्ट हैं। उनकी रचना में सभी देवियों और देवों की आराधना स्वतः स्फूर्त प्रवाहित है।

अतः सूफी और सहजिया वैष्णव की संस्कृति से प्रभावित बाउल परंपरा की धारा में 'हम सभी' परमात्मा (परब्रह्म या परमेश्वर) के ही अनमोल उपहार हैं। हमारा शरीर एक अमूल्य मंदिर है और संगीत (संकीर्तन) का पथ ही हमें उस परमेश्वर से मिला सकता है। बाउल परंपरा की इस धारणा पर गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी यूरोप यात्रा की अवधि में,

इस परिप्रेक्ष्य में, विभिन्न स्थानों पर व्याख्यान दिया। उल्लेखनीय है कि उनकी रचनाओं (रवींद्र संगीत) में बाउल संस्कृति की इस अवधारणा की स्पष्ट छाप है। कविगुरु ने अपनी पुस्तक 'द रिलिजन ऑफ मैन' (मानव का धर्म) में इस विषय पर चर्चा करते हुए प्रकाश डाला है।

बाउल लोकगीत में ''आनि कोथाए पाबो तारे... आमार मनेर मानुष जे रे...' (मैं उसे कहां प्राप्त करूं... मेरे मन का मानुष है वह...) इस तरह के भावमूलक पंक्तियों का प्रायः उपयोग किया गया है जिन्हें कविगुरु ने भी अपनी रचनाओं और संगीत दोनों में समाविष्ट किया है।

यह रोचक तथ्य है कि विद्रोही कवि काजी नजरूल इस्लाम की कविताओं (नजरूल गीती) पर भी बाउल संस्कृति की गहरी छाप थी। बाउल की 'वैष्णव सूफी' की संयुक्त परंपरा के अंतर्गत प्रस्तुत गायन में बाउल गायक 'एकतारा' अवश्य बजाते हैं। इस लोकगीत प्रधान वाद्ययंत्र के बिना बाउल की संपूर्ण छवि नहीं बन पाती है। स्पष्टतः और अनिवार्यतः 'एकतारा और बाउल' एक दूसरे के पूरक तथा अभिन्न अंग हैं। बाउल को छोड़ कर एकतारा और एकतारा को छोड़ कर बाउल का अस्तित्व अपूर्ण है।

भारत के साथ ही बांग्लादेश में भी बाउल लोकगीत की सांस्कृतिक परंपरा की नींव अत्यंत दृढ़ है। बांग्लोदश के कुश्तिया नामक स्थान में प्रति वर्ष फरवरी-मार्च में 'लालन स्मृति उत्सव' मनाया जाता है। बाउल संस्कृति के प्रथम गुरु लालन फकीर द्वारा संस्थापित इस परंपरा और दर्शन के संरक्षण के लिए बांग्लादेश की संस्था 'बाउल समाज उन्नयन अकादमी' सक्रिय है। यह संस्था बाउल लोक संस्कृति पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन और समारोह का आयोजन करती है।

भारत में पौष मेला के अवसर पर शांतिनिकेतन के चतुर्दिक बाउल ही बाउल एकत्रित होते हैं। विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन में कई दिनों तक चलने वाले पौष मेला में प्रत्येक दिन बाउल लोकगायकों द्वारा महोत्सव मनाया जाता है। शांतिनकेतन के आचार्य तथा अन्य व्याख्याताओं के अनुभवों के आधार पर यह तथ्य उजागर होता है कि पौष मेला की समयावधि कम हो सकती है परंतु बाउल संस्कृति को कविगुरु रवींद्रनाथ की माटी वर्ष भर जीवित रखती है।

शांतिनकेतन में आने वाले यात्रियों और पर्यटकों को फुटपाथ से लेकर यहां की दुकानों में सजा बाउल का एकतारा उनकी अध्यात्मिक स्मृति में सभी को सराबोर कर देगा। आधुनिक युग के अनेक संगीतकारों ने, बाउल लोकगीतों के बोल, धुन तथा भाव को आत्मसात करके, अपने संगीत को बाउल रचना के साथ जोड़ा है।

पश्चिम बंगाल में पानागढ़ के 'माटी उत्सव' में बाउल संगीत का महोत्सव मनाया जाता है। यह सुखद एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उत्साहवर्द्धक समाचार है कि पश्चिम बंगाल राज्य सरकार तथा भारत सरकार दोनों की ओर से बाउल परंपरा के फकीरों को अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों से जोड़ने की घोषणा की गई है तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने की पहल भी की गई है। अतः बाउल गायकों के आंकड़े (डेटाबेस) तैयार किया जा रहा है ताकि उनकी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का स्थाई समाधान हो सके। इन विकास योजनाओं से जन-जुड़ाव बढ़ाने के लिए प्रचारक के तौर पर बंगभूमि में इन लोक कलाकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका अपेक्षित है। लोकसंस्कृति के संरक्षण और विकास हेतु राजकीय सहायता की पहल निश्चित तौर पर लालन फकीर द्वारा डाली गई सांस्कृतिक नींव को सुदृढ़ करेगी।

अंततः बाउल गुरु लालन फकीर की वाणी ''आपन घरेर खबर होए ना, बांछा करि पर किचना, लालन बोले, पर, पर कि पमरेश्वर से केमन रूप, आमि कि रूप ओरे' (अपने घर की खबर नहीं, दूसरे की इच्छा करते हैं, लालन कहते हैं, परमेश्वर पराए नहीं, उसका रूप कैसा, मेरा रूप कैसा रे) को आत्मसात करके मानवता अमूर्त धरोहर की अनुभूति अवश्य की जा सकती है। बाउल लोकसंस्कृति सर्वधर्म समन्वय, अंतर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक चिंतन तथा परमेश्वरीय प्रेम की अमोघ प्रतिनिधि है जहां जाति-धर्म, ऊंच-नीच, बड़े-छोटे आदि की कोई दीवार नहीं होती है।

अनुवादक : श्रीराधा कृष्ण
5-ए, 4/9, स्वर्ग आश्रम,
वेस्ट मुखर्जी नगर, मेन रोड के सामने,
परमानंद चौक, दिल्ली-110009

डोगरी कहानी

आस्था

नरसिंह देव जम्वाल

मन में आ रहा था कि पापा को सब कुछ साफ-साफ लिख दूं... लेकिन, क्या इससे उनके सीधे-सच्चे दिल और भोली आस्था को जबरदस्त धक्का नहीं लगेगा? क्या इससे उनके हृदय में फलने-फूलने वाले आपसी रिश्तों का कोमल पौधा हमेशा के लिए मुरझा नहीं जाएगा...?

आपसी रिश्ते, हुम—!

युवावस्था को दस्तक दे चुके लड़की के होठों पर एक व्यंग्य भरी मुस्कान फैल गई। निगाहें सामने दूर बर्फीली चोटियों से लिपटते बादलों पर जा टिकीं।

कुछ पलों के लिए बादलों ने सूरज को अपनी ओट में छिपा लिया। गुलमर्ग के सुंदर, सपाट मैदान में बिछी अंगूरी चादर का रंग और भी गहरा हो गया। जिस्म को हल्की सिहरन-सी छूने लगी, लेकिन शीघ्र ही सूरज की सशक्त किरणों ने बादलों के घेरे को तोड़ा और फिर उजागर हो गई। पूरे मैदान में दूर-दूर तक एक नई चमक बिखर गई। जिस्म में धूप की मीठी-मीठी तपन ने और सोच में एक नई गर्मी ने अंगड़ाई ली।

सामनी पगडंडी पर घोड़े पर सवार अपनी मां को वह उसकी साड़ी और ऊपर चटख रंग के कॉर्डिगन से ठीक-ठीक पहचान पा रही थी। घोड़े वाला कंबल में लिपटा घोड़े की लगाम थामे आगे-आगे चल रहा था और एक अन्य घोड़े पर सवार अंकल मां के साथ-साथ चल रहे थे...

आखिर पापा की ऐसी क्या मजबूरी थी कि वे स्वयं तो नहीं आ सके, लेकिन अंकल की एक चिट्ठी मिलते ही उन्होंने हमें तुरंत कश्मीर भेज दिया?

अगर पाप किसी मजबूरीवश खुद नहीं आ सकते थे तो हमें भी यहां न भेजते! पिछले दो वर्षों से, अंकल कश्मीर में पोस्टेड हैं, पापा ऐसा ही तो करते आ रहे हैं—लेकिन, क्यों?

पारली पगडंडी पर दोनों घोड़े अब रुक गए हैं। उसने देखा, अंकल मम्मी को सहारा देकर घोड़े पर से नीचे उतार रहे थे। मम्मी लगभग पूरी तरह से उनकी बाहों के घेरे में थीं। घोड़े वाला अब अपने घोड़े लेकर दूर जा चुका था... अरे, अठखेलियां करते-करते मम्मी और अंकल अब एक-दूसरे के पीछे दौड़ने लगे हैं—नर्म हरी घास पर बादलों संग लुका-छिपी का खेल खेलती सुनहरी धूप की रोशनी में।

उसने एक बार फिर घृणा से आंखें दूसरी ओर घुमा ली हैं।

प्रायः हर फिल्म में इसी प्रकार के तो दृश्य हुआ करते हैं। नानाजी का कहना कितना सही है कि बच्चों को फिल्में नहीं देखनी चाहिए। पापा को भी फिल्में देखना बहुत कम पसंद है। हां, कभी-कभार उन्हें मजबूर होकर जाना पड़ जाता है। विशेष कर तब, जब किसी बात में मम्मी से सुलह-सफाई हेतु वे उन्हें फिल्म दिखाने ले जाया करते हैं। कितने भोले हैं पापा भी, बतौर रिश्वत मम्मी को फिल्म दिखलाने का गुर अपनाना पड़ता हैं उन्हें! तब सिर्फ मम्मी-पापा ही नहीं, मैं और राजी भी फिल्म देखने जाया करते हैं। वैसे, मम्मी को हमारा उन दोनों के संग जाना पसंद नहीं है, लेकिन पापा नहीं मानते।

कितना प्यार करते हैं पापा मुझे और राजी को। प्यार तो मम्मी भी हमें खूब करती हैं, लेकिन जाने क्यों कश्मीर आकर उनका रवैया सहसा बदल क्यों जाता है! पता नहीं कैसे कोई अदृश्य दीवार उनके और हमारे बीच आकर खड़ी हो जाती है।

हरी घास पर चमकती धूप में अंकल की उजली पोशाक खूब चमक रही है। उनके करीब बैठी मम्मी अपने बालों के जूड़े को दुरुस्त कर रही हैं या जूड़े में ठुंसे फूल को—इतने लम्बे फासले से कुछ भी ठीक से दिख नहीं रहा है। वे लोग बस जरा-सा दौड़े और फिर फौरन बैठ भी गए। इस मामले में, वैसे मम्मी हैं एकदम निकम्मी ही! दस-बीस कदम भी पैदल चलना उनके लिए मुहाल हो जाता है। जबलपुर में तो माना भीड़ भरी सड़कें हैं, लेकिन यहां तो खुला मैदान है। मुझे कोई कहे तो मैं पूरे मैदान में दौड़ कर कई-कई चक्कर लगा आऊं। लेकिन, मैं अकेली दौडूंगी तो हो सकता है कि लोग मुझे पागल समझ बैठें। जबलपुर में घर से जब स्कूल जाना होता है तो रास्ते में अनेक जोड़ी आंखें चुभती महसूस होती हैं, फिर यहां तो और भी अजीब महसूस होगा।

एक तो इस राजी को किसी से कुछ लेना-देना ही नहीं रहता है। अंकल ने जरा-सा उकसा क्या दिया, फौरन घोड़े पर बैठ कर अकेले ही खिलनमर्ग चलता बना! क्या हम सब भला एक-साथ खिलनमर्ग नहीं जा सकते थे?

मम्मी ने तो सुनते ही इनकार कर दिया था, ''नहीं, मुझे नहीं जाना है खिलनमर्ग...राजी, तू अकेला ही निकल जा।''

राजी को तो अकेले भटकने का बहाना चाहिए था, बस फौरन घोड़े वाले के साथ निकल पड़ा। इस वक्त अगर वह यहां होता तो कम से कम अंकल और मम्मी की बातचीत को टोह तो ले सकता था। मुझसे यह काम नहीं हो पाता।

दरअसल, मुझे अंकल अब मुझे बिलकुल भी अच्छे नहीं लगते। पहले भी कहां अच्छे लगते थे, लेकिन ये मरी टाफियां और चाकलेट हमेशा से मेरी कमजोरी रहे हैं, इसलिए...लेकिन, उम्र का वह हिस्सा अब दूर कहीं पीछे छूट चुका

है। अब दसवीं कक्षा में पढ़ते हुए मैं पाठ्य-पुस्तकें और सहेलियों की गूढ़ बातें ही नहीं, अन्य बहुत सारी बातें समझने लगी हूं। पापा द्वारा घर लाई जाने वाली पत्रिकाएं-पुस्तकें भी मैं पढ़ने लगी हूं, टी.वी. कई प्रोग्राम देखने लगी हूं जिससे बहुत कुछ नया-नया समझ में आने लगा है।

पापा तो भूल कर भी कभी सस्ती, अश्लील पत्रिकाएं घर में नहीं लाते हैं, लेकिन इधर अंकल के पास इस प्रकार के साहित्य की भरमार रहती है। मम्मी इन पत्रिकाओं को बड़े चाव से पढ़ती हैं। हो सकता है अपने इसी प्रकार के चाव पूरे करने के लिए ही मम्मी बिना पापा के कश्मीर आया करती हैं। अगर मम्मी चाहें तो अपने घर में ही वह पापा से कहकर इस प्रकार की चीजें मंगवा सकती हैं। पापा भला उन्हें क्यों मना करने लगें। लेकिन, अंकल मम्मी की इन कमजोरियों को भला कैसे जानते हैं? कहीं यह इन दोनों की मिली-भगत तो नहीं कि अंकल पापा को पत्र लिखकर कश्मीर आने को आमंत्रित किया करें...

लेकिन, अंकल तो हर बार पापा को पत्र भेज कर सपरिवार कश्मीर आने का निमंत्रण दिया करते हैं...हां, यह बात अलग है कि आते सिर्फ हम ही हैं, पापा कभी नहीं आते। आखिर क्यों? क्या पापा सचमुच इतने व्यस्त रहते हैं कि आ ही नहीं पाते? कहीं उनके मन में कुछ दिनों के लिए हम सबसे पीछा छुड़ाने की चाहत तो नहीं हुआ करती है?

हमसे नहीं तो मम्मी से तो शायद वे पीछा छुड़ाना चाहते ही रहे होंगे, मम्मी घर में हमेशा जली-भुनी जो रहा करती हैं। हर समय लड़ाई-झगड़ा, हर समय रूठना-मनाना। लेकिन, कश्मीर पहुंचते ही मम्मी के स्वभाव में कितना बदलाव आ जाता है—सूरत में भी और बनाव शृंगार में भी। उनमें सहसा होने वाले इस परिवर्तन को देख कर पापा को जरूर खुशी होती... शायद वे आश्चर्य भी महसूस करते, लेकिन वे तो यहां मौजूद ही नहीं हैं। वे तो जबलपुर में हैं। कितना अच्छा हो यदि कुछ पलों के लिए वे उड़कर एकदम से यहां पहुंच जाएं, तो अपनी आंखों से वे सब कुछ...

उसकी निगाह हवा में ऊपर-नीचे डोलते पक्षियों पर से फिसलती हुई फिर मम्मी पर जा टिकी हैं। अंकल एक विशाल देवदार के तने के पीछे चले गए हैं। मम्मी भी उसी तरफ चली गई हैं। दोनों ओझल हो चुके हैं। उसकी आंखों के सामने जब वृक्ष तने का मात्र घेरा ही रह गया है।

यदि पापा इन दोनों को इस प्रकार से देवदार के पीछे अदृश्य होते अपनी आंखों से देख लेते

तो भला कैसा महसूस करते? शायद गुस्सा होते, शायद सुख महसूस करते या फिर शायद कुछ भी महसूस न करते। कितने भले मानस हैं पापा! कभी तो जरा-सी नकारी बात को भी बेहद महत्त्व दे देते हैं, और कभी बड़ी से बड़ी बात को भी अनदेखा कर देते हैं। लेकिन, आज की बात कोई मामूली बात नहीं है। मुझे पापा का ध्यान इस ओर जरूर दिलाना चाहिए—लेकिन, कैसे? मैं उन्हें ये सब कुछ कैसे लिख पाऊंगी? एक तो वह राजी भी।

मम्मी और अंकल शायद लौट रहे हैं। सोचा होगा कि मैं यहां अकेली बैठी हूं, चलो चलते हैं—हुम! उन्हें भला मेरी चिंता क्यों कर होने लगी?

यह क्या, चलते-चलते दोनों रुक गए हैं...अरे, ये लोग उस घोड़े की तरफ क्यों दौड़ने लगे? हुआ क्या है?

अं...यह तो राजी ही दिखता है। हां-हां राजी ही है। लेकिन, यह इतनी जल्दी खिलनमर्ग से वापस कैसे लौट आया? और राजी के सिर पर यह सफेद-सा कपड़ा क्यों बंधा हुआ है? चलूं, चलकर देखती हूं कि आखिर हुआ क्या है?

''भई, अच्छे और बहादुर बच्चे न तो रोते हैं और नहीं जिद्द किया करते हैं...'' नजदीक पहुंचते-पहुंचते अंकल के ये शब्द लड़की के कानों से टकराए।

राजी रोते हुए पापा को भी कश्मीर बुलाने या स्वयं को जबलपुर भेजे जाने की जिद्द कर रहा था। घोड़े पर से फिसल कर नीचे गिरने के कारण उसके माथे पर हल्की-सी चोट लग गई थी...घोड़े वाले ने फुर्ती से संभाल लिया था, नहीं तो चोट ज्यादा भी लग सकती थी। ''मैं बस एक पल के लिए बीड़ी सुलगाने के लिए रुका ही था कि बेटा जी फिसल पड़े...'' घोड़े वाला डरते-डरते सफाई पेश कर रहा था। एक सहज-सी मासूमियत उसके चेहरे से झलक रही थी।

''तुम घबराओ मत भाई, तुम्हें तुम्हारी मजदूरी अवश्य मिलेगी—'' कहते हुए अंकल ने पचास का एक करारा नोट घोड़े वाले की ओर बढ़ाया—''लो, जितने बाजिव हैं, उतने काट लो।'' उन्होंने हंसते हुए उदारता दिखाई। वैसे भी, मम्मी के सामने उनका हाथ और उनकी जेब कभी भी कंजूसी नहीं दिखाते।

''इसे तो चलो चोट आई है, लेकिन तुम क्यों मरी जा रही हो जो चेहरा ऐसे फुला रखा है?'' सारे घटनाक्रम के दौरान म्ममी ने पहली बार मुंह खोला है। सुनकर लड़की एकदम से सिकुड़ गई है। मम्मी ही नहीं, अंकल भी लड़की को निगल जाने वाली नजरों से देख रहे हैं।

राजी की सिसकियों के कारण उन दोनों का ध्यान फिर राजी की ओर बंट गया है। राजी ने एक बार फिर जबलपुर लौटने की जिद्द पकड़ ली है। इससे बहन को खूब प्रसन्नता हो रही है।

पापा इतना तो पूछेंगे ही कि राजी को अकेले खिलनमर्ग क्यों भेज दिया?

तब मैं उन्हें अवश्य बताऊंगी—''पापा! राजी तो अकेला खिलनमर्ग गया ही था, मैं भी तो कितनी ही देर तक टेकरी के पीछे वाली दुकानों के पास अकेली बैठी रही थी... मम्मी और अंकल तो उस वक्त वहां से बहुत दूर...''

उम्मीद है पापा सब कुछ समझ जाएंगे... आखिर वे इतने भी तो भोले नहीं हो सकते!

द्वारा मै. कमला प्रकाशन, गांव एवं डाकघर–भलवाल, जम्मू (जे. एंड के.)-181122

अनुवादक : कृष्ण शर्मा
152/119, पक्की ढक्की, जम्मू–180001

रोज लगा लेते हैं मजमा तारे नभ में रात को

रामअवतार बैरवा

रोज लगा लेते हैं मजमा
तारे नभ में रात को
किस सजनी ने रोक लिया था
जाती हुई बारात को
दिखता था गुलफाम बदन से
चिपका रेशा साड़ी का
किस मजनूं की नजर लग गई
उस गोरी बरसात को
बिल्कुल अनजां गांव में मेरी
राह काटते वो बोली
बाबू यहीं आराम करो
कहां जाओगे रात को
सब ख्वाब-ख्याल झूठे निकले
उस एक हक़ीकत के आगे
क्या दूं नाम समझ नहीं आता
उस पहली मुलाकात को
इससे पहले कि हो जाए
रब में विलीं मेरी यह रूह
अपने ही तुम नाम पे लिख लो
मेरी शेष हयात को।।

बी–9/101, सेक्टर-4,
रोहिणी, नई दिल्ली-110085

कहानी

प्लीज टेक केयर

डॉ. कमल कुमार

शायद उसकी रात की फ्लाइट थी। वह हड़बड़ी में था। मोबाइल पर बार-बार उठाए जाने की धुन बज रही थी। मोबाइल पर बात खत्म करता तो आस-पास खड़े लोगों से मिसेज जार्ज का ध्यान रखने के लिए कहता। मिसेज जार्ज की बेड पर लेटी देह निश्चल थी पर उनकी आंखों में एक बेचैनी थी। उनकी आंखें जार्ज के हिलते-बोलते चेहरे के साथ दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे देख रही थीं। कमरे में दीवार के साथ टॉक का एयर बैग पड़ा था कमर में बंधा ट्रेवलर मनी बैग था। टॉम के जाने का समय हो गया था। वह मिसेज जार्ज के चेहरे पर झुका था। उनके शरीर को अपनी दाईं बांह बढ़ा कर घेर लिया था। ओ.के. मम्मा। इट्स टाइम टू गो नाउ। प्लीज टेक केयर। आई लव यू मम्मा। वह अपना बैग उठा कर बाहर आ गया था। उसके साथ आस-पड़ोस के लोग भी बाहर आ गए थे। टॉम ने ऐलिस के हाथ में पांच सौ रुपए का एक नोट थमाया था, ''मम्मा का ध्यान रखना। ओ.के.।''

वह रुक गई थी। कुर्सी खिसका कर उनके बैड के एकदम समीप लाकर बैठ गई थी। मिसेज जार्ज ने अपना चेहरा दीवार की तरफ घुमा लिया था। उसने उनके हाथों को छुआ तो उनकी उंगलियों के कंपन को महसूसा था। थोड़ी देर वहां रुक कर वह भी लौट आई थी। एक अजीब-सी बेचैनी महसूस कर रही थी। आंखों के सामने झिप-झिप करते कई चेहरे दृश्य और अदृश्य हो रहे थे। मिस्टर जार्ज की मृत्यु के बाद से टॉम, मिसेज जार्ज को अपने साथ ले गया था। लेकिन वह तीन महीने बाद ही लौट आई थी। तब से वह अकेली यहां रह रही थी। उसकी लड़की रोज़ी कलकत्ता में थी। उसका अपना परिवार था। वह व्यस्त थी। डेढ़-दो साल में कभी चार-छह दिन के लिए आती और लौट जाती। मिसेज जार्ज सुबह उठ कर घर के सामने जो थोड़ी-सी कच्ची जमीन थी, वहां पौधों को पानी देती, फूल-पत्तों को सहलाती। सर्दियों में वहीं बैठ कर चाय-नाश्ता करती। फिर तैयार होकर चैरिटी के काम से निकल जाती। सिल्वी कई सालों से उसके साथ थी। वह घर की देखभाल करती, खाना बनाती और मिसेज जार्ज के छोटे-मोटे काम भी कर देती थी। पहले पांच दिन समाज सेवा के लिए जाती थी फिर कुछ साल बाद तीन दिन जाने लगी थी। फिर दो दिन जाती थी। अब घर में फोन पर ही लोगों से संपर्क करके चंदा इकट्ठा करके चर्च में भेज देती। वह जब भी उसके घर के सामने से गुजरती, वह उसे आवाज देती, ''हाऊ यू माई डार्लिंग?''

वह जवाब देती, ''मैं ठीक हूं, आप कैसी हैं?''

वह मुस्कराकर कहती, ''वैरी फाइन।''

उनको कभी उदास या हताशा नहीं देखा था। सिल्वी छुट्टी पर गई तो वह पड़ोसी के नाते पूछ लेती, ''आपके लिए कुछ बनवा कर भेज दूं? बताइए क्या पसंद करेंगी?''

वह हंसती, ''टिफिन सर्विस है न। चाहो तो उसका फोन तुम्हें भी दे देती हूं। कभी घर में मेहमान आ जाएं। खाना न बना सकें किन्हीं दूसरे कारणों से तो फोन कर दो। एक-डेढ़ घंटे में खाना तैयार होकर घर भिजवा देती है।''

मिसेज जार्ज फोन पर ही सारे घरेलू सामान सब्जी, फल, दूध, दवाइयां 'फ्री होम डिलीवरी' से मंगवा लेती थीं। कॉलोनी में बुजुर्गों की पीढ़ी थी जो या तो दोनों अकेले रहते थे, या अकेले-अकेले भी रहते थे। मिसेज टॉमस ने मुस्करा कर कहा था, ''दोनों में से एक न एक तो पहले जाना ही होता है और बच्चे भी अपने रास्ते निकल ही जाते हैं।''

उसकी मुस्कराहट के पीछे का दर्द पिघल कर आंखों में तैर गया था। मिसेज और मिस्टर गुप्ता आठ-नौ महीने अपने बेटे के पास शिकागो में रहते और तीन-चार महीने यहां आकर रहते। आने पर बंद पड़े घर की सफाई में और व्यवस्था में पंद्रह दिन लग जाते। गर्मी, बिजली, पानी न आने से बेहाल वे वहां की सुख-सुविधाओं की चर्चा करते। जब तक इस वातावरण में रहते-खपते तब तक फिर उनके जाने का समय हो जाता।

''वी आर टार्न अपार्ट।'' पर क्या करें वहां बेटे-बहू दोनों काम पर जाते हैं। बेटे के बच्चे छोटे हैं। बेटा-बहू किसी मल्टीनेशनल में हैं। घर आने का कोई समय नहीं होता। हम वहां बच्चों को और घर को देख लेते हैं। हमारा एक ही बेटा है। पर अब ठीक ही है। सब जानते थे कि बेटे ने मां-बाप को डिपेंडेंट दिखा रखा है। मोटी रकम उनकी पेंशन की मिलती है।

मिसेज जार्ज भी उस दिन मूड में थीं। बताने लगी थीं, ''बेटा-बहू दोनों सुबह ही निकल जाते थे। दोनों देर रात को लौटते थे। बच्चों की अपनी दिनचर्या थी। स्कूल से आकर खाना खाकर वे म्यूजिक स्कूल में जाते हैं। फिर शाम को स्विमिंग के लिए चले जाते। सात बजे लौट कर नहा-धोकर खाना खाकर आठ बजे तक सो जाते हैं। टॉम नहीं चाहता

था मैं वापस आऊं। जब बच्चों की छुट्टियां हों तो एक महीने के लिए चली जाया करूं और फिर लौट आऊं। परंतु मैं नहीं मानी थी। टॉम ने बहुत बार कहा था पर मैं वहां रह ही नहीं सकती थी। पेंशन की उसकी रकम भी बंद हो जानी थी।''

इसी बात पर टॉम के साथ मिसेज जार्ज की बहस हुई थी। वहां अकेले रहने में क्या तुक है? यहां भी अकेली ही रहती हूं। पांच दिन उनके काम के होते हैं, छठा और सातवां दिन सोशलाईजेशन के लिए और घर के रुके हुए काम करने के लिए। सब कुछ यंत्रवत होता था। वह पांच दिन उनके जाने पर और छठे-सातवें दिन घर में था। घर से बाहर पार्टियों में भी अकेली और फालतू-सी हो जाती थीं। टॉम ने बहुत जोर लगाया पर वह नहीं गई थीं। उनके न आने से पेंशन भी बंद हो गई थी। टॉम भी नहीं आता था। मिसेज जॉर्ज पूछने पर मुस्करा देतीं, ''अपने बच्चे हैं, खुश रहें, जहां भी रहें।''

मिसेज रमा गुप्ता अकेली रहती थीं। छाती फुलाकर अपने बेटे के गुणगान करतीं, उसने फूड प्लस भेजा है। घुटनों के दर्द के लिए। पहले यह वार्मर भेजा था। वह हीटिंग पैड भी उसी ने भेजा था। बहुत ध्यान रखता है मेरा।

कॉलोनी में सीनियर सिटिजन का एक क्लब भी था। क्लब के नाम से एक छोटी-सी कैंटीन जहां, चाय, कॉफी, ठंडा और कुछ नमकीन मिल जाता था। एक कमरा था जिसके एक कोने में टेबल टेनिस की मेज थी, दूसरी तरफ एक और गोल मेज थी जिसके चारों तरफ कुर्सियां लगी थीं, जहां औरतें दोपहर में और आदमी शाम को ताश खेलते थे। विशेष दिनों पर और त्योहारों पर कुछ कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते थे। लोग आपस में मिल-जुल कर अपनी खुशी-गमी बांट लेते थे। मोबाइल पर एमएमएस आता 'टेक केयर', ई-मेल में लिखा होता, 'टेक केयर', फोन पर बच्चे कहते, 'टेक केयर'। सभी जानते थे, उन्हें अपनी ही सामर्थ्य पर जीना है। सुबह सैर को जाना जरूरी था। कुछ लोगों ने हेल्थ क्लब भी ज्वॉइन किया हुआ था। एक-दूसरे को हेल्थ के लिए टिप्स भी देते रहते। मिसेज मैनन दिल की मरीज थी उसकी बायपास सर्जरी हो चुकी थी। अकेले घर में रात बीत जाने और सुबह होने के इंतजार में कई बार रात भर सो नहीं पाती थी। कॉलोनी में ये सब साथ-साथ थे पर अपने में सभी अकेले, उदास, हताश और परास्त थे।

मिसेज खन्ना के हाथ से अखबार छूट कर नीचे गिर गया था। एक दबी-सी चीख के

साथ वह कुर्सी पर ढिलक गई थी, ''यह देखो, पढ़ा क्या आपने, साथ की कॉलोनी में अकेले रह रहे एक बुजुर्ग की दिन दहाड़े हत्या''। मेज के कोने की कुर्सी पर बैठे मिस्टर गुप्ता मंद-मंद मुस्करा रहे थे। उनके बेटा-बहू इसी शहर में थे पर उनका घर अलग था कंपनी के दिए घर में रहते थे। मिस्टर गुप्ता यहां अकेले ही थे। बड़ा अनुशासित जीवन था उनका। सब उन्हीं का उदाहरण देते थे। आखिर में क्या हुआ। अखबार वाले ने बताया था। बाहर कई दिनों के अखबार पड़े हैं। घंटी का भी कोई उत्तर नहीं। दरवाजा तोड़ा तो पता चला। डॉक्टर को बुलाया गया। बाथरूम के बीचोबीच गिरे पड़े थे। लाखों-करोड़ों चीटियों ने उनकी देह को ढक रखा था। डॉक्टर ने डिक्लेयर किया था। उनकी मृत्यु ब्रेन हेमरेज से हुई थी और तीन दिन पहले हुई थी। सबके चेहरे स्याह हो गए थे। उनका बेटा-बहू भी आए थे। अंतिम संस्कार निपटा कर चले गए थे। अगले महीने वे उस घर में शिफ्ट कर गए थे।

इस कॉलोनी में रहते पच्चीस साल हो गए थे। बच्चों के स्कूल बैग उठा कर चलने वाली मांओं के बालों से चांदी के तार झिलमिलाने लगे थे। उछल-उछल कर, भाग-भाग कर, 'देर हो गई' कहती जाती मिसेज नीलम के घुटने ऑस्टोपरोसिस से टेढ़े हो गए थे। उन्हें ऑपरेशन से डर लगता था। मिसेज अहमद समझदार थी। दोनों घुटनों का ऑपरेशन करवा लिा था। साल भर तो लगा ठीक होने में, पर अब तो वह दूसरी मंजिल पर अपने फ्लैट में आराम से नीचे-ऊपर जाती हैं। आखिर मिसेज नीलम ने चहक कर घोषित किया था, ''शांतनु और शैल दोनों आ रहे हैं। ऑपरेशन की तारीख निश्चित हो गई है।'' वह आश्वस्त और प्रसन्न लगी थी। पर ऐन मौके पर दोनों ही नहीं आए थे। फोन पर कहा गया था, ''प्लीज एक नर्स रख लो। पैसे की चिंता न करें। वी लव यू मम्मा। प्लीज टेक केयर।''

पहली नर्स सुबह आठ बजे आती शाम को आठ बजे जाती और दूसरी रात को आठ बजे से सुबह आठ बजे तक साथ रहती। नीलम की आंखें नम थीं। रात वाली नर्स अक्सर रात में सो जाती है। आवाजें मार कर थक जाती हूं। बाथरूम जाना था, वह उठी ही नहीं। वह गुर्राई थी, ''रुकना चाहिए था। बच्चों की तरह, देखो सब गंदा कर दिया।''

रातभर वह पिघलती रही। नींद ही नहीं आ रही थी। अंधेरे में जुगनुओं की तरह झिलमिल दृश्य होती और अदृश्य होती छायाओं का खेल चलता रहा। शायद सुबह आंख लग गई थी। फोन की लगातार बजती घंटी से चौंक उठ बैठी थी, ''जल्दी आइए, मिसेज जार्ज शायद अब नहीं रहीं।'' कॉलोनी वेलफेयर एसोसिएशन के अध्यक्ष और मंत्री दोनों खड़े थे। टॉम तो अभी पहुंचा भी नहीं है। रास्ते में है। उसने कहा दिया है, ''फोन पर चर्च में सूचना दे दें वह आ जाएंगे। बाकी आप लोग हैं। प्लीज डू द नीडफुल।'' कॉलोनी के लोगों ने चर्च से आए लोगों के साथ मिल कर अंतिम संस्कार किया था। कुछ लोग साथ गए थे। कुछ वहीं से लौट आए थे। वह भी घर आ गई थी। मोबाइल पर बेटे का संदेश था, आखिर में लिखा था, ''आई व यू मम्मा, प्लीज टेक केयर।''

डी-38, प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नई दिल्ली-110017

कहानी

सैकंड इनिंग

क्षमा शर्मा

मनोहर ने एक नजर सेमल को देखा। गाड़ी की छत बीच में आ जाने के कारण वह सिर्फ उसका सीधा लंबा तना ही देख सका एक नजर उसने उस अशोक पर भी डाली जो जैसे उसकी ही उम्र का गवाह था। जब वह वहां आया था तब वह शिशु था और अब बूढ़ा हो गया। हर साल जब सेमल पर फूल खिलने लगते थे, तो वह उस दिन को याद करता था जब इस ऑफिस में आया था। डरता घबराया। नौकरी जैसे-तैसे मिली थी अब उसे बनाए रखना था। उस दिन फरवरी की वह ढलती शाम को, सालों पहले घर लौटते हुए, उसने पेड़ के नीचे गिरे ढेर सारे फूलों को देखा था और तब से आज तक जब भी सेमल फूलता अचानक वह उछाह से भर उठता। जैसे उसकी गुजरी उम्र वापस आ जाती। आज भी उसे सबसे ज्यादा सेमल से बिछड़ने का दुख हो रहा था। वह मन ही मन बुदबुदाता था—अलविदा दोस्त। शायद सेमल ने भी कुछ कहा हो, मगर वह सुन नहीं सका था। अशोक की कुछ डालियां जैसे कार की खिड़की तक झुककर कहने लगीं—फिर कब मिलोगे। कब आओगे? औरों की तरह भूल तो नहीं जाओगे। मनोहर का मन किया कि उन पर हाथ फेरे मगर पीछे बजते हार्न और उनके शोरगुल के कारण गाड़ी रुक नहीं सकीं। मनोहर ने आंखें बंद कर लीं। अब वह कुछ नहीं देखना चाहता था। उन सबको भी जो उसे छोड़ने आए थे। वह जानता था कि उन सबकी उसे बहुत याद आएगी मगर याद को पीछे धकेल, वह सड़क पर रेड लाइट पर रुकी गाड़ियों को देखने लगा। सड़क पर पहुंचकर ड्राइवर ने कहा—सर तेल खत्म है।

ठीक है कोने वाले पेट्रोल पंप से ले लो।

गाड़ी उधर मुड़ी तो उसे कुछ छूटने का अहसास हुआ। क्या दफ्तर, नहीं दफ्तर नहीं, वहां के लोग। उनकी गपशप, छेड़खानी, निंदा तारीफ, बात में से बात निकालने का शौक, तरह-तरह के भोजन की प्रविधियां, एक-दूसरे को खिलाने का शौक, लड़ाई-झगड़ा, नाराजगी और बाकी सब कुछ। कल तक जो चीजें बहुत मामूली लगती थीं आज उनकी कमी मन को मथे डाल रही थी। वह कुर्सी, वह मेज, अपनी अलमारी, ड्राअर, सामने की खिड़की से झांकते पेड़ के पत्ते बारिश के दिनों में उन पर पड़ती बौछारें, और खिड़कियों को छूने की प्रतियोगिता करती डालियां, फोन, कंप्यूटर और तो और अपना फुट रेस्ट। आज के बाद इनको छूना तो दूर देख भी नहीं पाएगा। चेहरे बदलते ही जैसे सब चीजें कितनी पराई हो जाती हैं।

मनोहर ने आंखें बंद कीं और गहरी सांस लेने लगा। वह किसी दुख, किसी अकेलेपन को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहता था। बहुत पहले एक बार जब अपने पहले अफसर से रिटायर होने के बाद मिलने गया था। जैसे ही उसने पूछा था कि सर कैसे हैं आप, तो उनके ओठ कांपे, चेहरा भीग गया और वह उसका हाथ पकड़ कर फूट-फूटकर रोने लगे थे। उस समय वह उनके रोने को कतई नहीं समझ सका था।

लौटते हुए जब उनके रोने पर तरह-तरह के कयास लगाता रहा था। आखिर क्या कमी है इन्हें अपना घर है। गाड़ी है। अच्छा-खासा पी एफ और पेंशन है। बच्चे दोनों विदेश में हैं। बहुत अच्छा कमाते हैं। जिद करके हमेशा इन्हें बुलाते रहते हैं। बिना पूछे टिकट भेज देते हैं। वरना आज बच्चे एक बार पीठ फेरने के बाद, पलटकर देखते तक नहीं हैं। तब उसे उनका रोने का एकमात्र कारण लालच ही लगा था। साला दो-चार साल कुरसी पर बैठकर और ज्यादा पैसे रोरना चाहता था। आदमी के घर में खजाना और खत्तियां खाली कर दो, मगर उसका पेट नहीं भरता। मनोहर ने दफ्तर की सीढ़ी चढ़ते हुए सोचा था। उनके रोने का क्लू मिल जाने की अपनी होशियारी पर तब शैतानी से मुसकराया भी था।

लेकिन वह कितना गलत था। समय कई बार पूरे सच को देखने नहीं देता।

सब कुछ होने के बाद भी आदमी अपने बंधे बंधाए रुटीन को मिस करता है। शायद यही, इसीलिए तो वह रोए होंगे। आज जब खुद इस स्थिति में पहुंचा तो समझ पाया है।

अगली सुबह वह हड़बड़ाकर उठा। बाप रे सात बज गए। नौ बजे से मीटिंग है कि अचानक दूध पर आता झाग बैठ गया। कौन सी मीटिंग, कहां? उसने अपना झल्लाहट पत्नी पर उतारने की कोशिश की—इतनी देर हो गई। उठाया क्यों नहीं?

क्या उठाती? लगा कि सो रहे हैं, तो सोने दो। अब कौन सा कहीं जाना है। पत्नी की आखिरी बात मनोहर को तीर की तरह चुभी, मगर वह

कुछ नहीं बोला।

वह फ्रेश होकर आया तो पत्नी चाय ले आई। हमेशा की तरह उसने अखबार उठा लिया। लेकिन अखबार के पन्नों पर नजरें फिसलती रहीं कुछ दिख ही नही रहा था। क्या अखबार आज किसी भी न्यूज से खाली हैं। वहां कुछ नहीं है। पूरे देश, मोहल्ले, दुनिया में कुछ नहीं हुआ। सेंसेक्स उछला-गिरा, कोई लूटपाट हत्या, बलात्कार, मार-पिटाई, ग्रोथ रेट, अपहरण, भ्रष्टाचार। क्या देश सुधर गया। कागजों वाला रामराज्य सचमुच आ गया।

पत्नी थाल में भिंडी उठा लाई। वहीं बैठकर काटती हुई बोली, आसपास वाले पार्टी मांग रहे हैं।

किस बात की?—मनोहर ने रिमोट से एक के बाद एक चैनल बदलते हुए कहा।

सब कह रहे हैं कि साहब की सैकंड इनिंग शुरू हो रही है पार्टी दो।

मनोहर ने हंसने की कोशिश की—कौन सा साहब, किसका साहब? याद नहीं अपनी तो शादी पर भी कोई पार्टी नहीं हुई थी। न बच्चों के जन्म पर कुछ किया था, तो अब क्यों करें?

सब याद है। तभी तो सब रिश्तेदारों और अड़ोसी-पड़ोसियों ने कंजूस मक्खीचूस नाम रख छोड़ा है—कहती हुई पत्नी रसोई में जाकर सब्जी बनाने लगी। मनोहर को लगा कि छौंक तो रोज ही लगता होगा, मगर इससे पहले उसने यह खुशबू कभी महसूस ही नहीं की। शायद कुछ भी महसूस नहीं किया सिवाय भागमभाग के। पत्नी रसोई में चली गई। सब्जी के छौंक की खुशबू पूरे घर में फैल गई।

मनोहर उठकर शेव करने लगा तो पत्नी ने पूछा—एक कप चाय और दूं।

दे दो।—वह बोला

शेव करते-करते ही उसने ट्रांजिस्टर ऑन कर दिया। गाना बज रहा था—बत्तमीज दिल, बत्तमीज दिल। गाने की धुन अच्छी थी मगर वह उसके कानों में फटे ढोल की तरह बजीं। उसने ट्रांजिस्टर ऑफ कर दिया।

रसोई से पत्नी बोली—अरे गाना अच्छा तो है। बंद क्यों कर दिया। उसने बेमन से चालू करते ट्रांजिस्टर के बटन के खूब कान उमेठे। अपनी चिढ़ छिपाने के लिए। गाना फिर से चालू कर दिया। नहा कर आया तो पत्नी नाश्ता बना चुकी थी। नाश्ता करने के बाद उसने कहा—बाजार से कुछ मंगाना है?

उसकी बात सुनकर पत्नी जोर से हंसी—आज कितने दिनों बाद तुम्हें बाजार से घर के लिए कुछ लाने की याद आई। अभी रहने दो। लाना होगा तो शाम को मैं नीचे उतरती ही हूं, ले आऊंगी।

पत्नी का व्यंग्य समझते हुए भी उसने बात को ज्यादा तूल नहीं दिया। बोला—ठीक है मैं, थोड़ी देर नीचे टहल कर आता हूं।

कहता हुआ मनोहर नीचे उतरा तो पड़ोस वाले सिन्हाजी मिल गए—अरे आज आप ऑफिस नहीं गए। छुट्टी है कि देर से जाएंगे।

वह आगे बढ़ते हुए मुसकराया भर—सालों को सब मालूम है, मगर जान-बूझकर पूछ रहे हैं। पार्क के दो चक्कर लगाए। एक बिल्ली को पार्क के एक छेद में चूहे की तलाश में नाक घुमाते देखा। दो गौरैय्या एक खिड़की के नीचे पड़ी रोटी खा रही थीं। कबूतर और कौए उनके बीच में आ रहे थे जिन्हें वे चोंच फाड़कर डराने की कोशिश भी करतीं। सफाई वाला झाड़ू लगा रहा था। कबाड़ी वाला तेजी से आवाज लगाता गुजरा था। गेट के ऐन सामने एक वैन खड़ी थी। जहां सब्जी खरीदने वालों की लंबी लाइन लगी थीं। कुछ घरेलू नौकरानियां स्टिल्ट पर बैठी गपशप कर रही थीं और उसे देख भी रही थीं।

लौटा तो कामवाली उसे देखकर हड़बड़ा कर पीछे हट गई। इससे पहले तो वह उसके ऑफिस जाने के बाद आती थी। वह झाडू लगाने लगी। पत्नी की आवाज सुनाई दे रही थी—उस स्टूल को हटाकर साफ कर। किसी चीज को हटाकर तुम लोग साफ नहीं करते हो। जिस दिन तू नहीं आती है और मैं झाडू लगाती हूं, तो पता है कितना कूड़ा निकलता है।

पत्नी उसे सुनाते हुए बोली—मैं नहाने जा रही हूं। जैसे कह रही हो ध्यान रखना काम वाली का।

ऐसा लग रहा था जैसे इतने सालों में उसे बस दो ही बातें याद रहीं—एक दफ्तर और दूसरा भी दफ्तर ही।

घर तो बस जीवन में आया-गया भर। बच्चा जब पैदा हुआ उसके कुछ सालों तक तो जरूर वह उसकी कुछ छोटी-मोटी जरूरतों का ध्यान रख पाया मगर जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता गया वह व्यस्त और अधिक व्यस्त होता गया। कब उसका स्कूल खत्म हुआ, कब कॉलेज, कब नौकरी लगी, शादी हुई जैसे घटनाएं एक के बाद एक घटती गई। नौकरी के सामने वह किसी भी चीज का ख्याल नहीं रख पाया। जब उसके जूनियर हर वक्त घर-घर चिल्लाकर आए दिन छुट्टी मांगते थे तो वह बड़े गर्व से कहता था—क्या सिर्फ आप लोगों का ही घर है, मेरा घर नहीं। मैं लेता हूं कभी छुट्टी। मेरे तो पिताजी की मृत्यु हुई थी तब भी अगले दिन ही ऑफिस आ गया था। मनोहर को लगता था दफ्तर उसका है और वह दफ्तर का। दोनों एक-दूसरे के लिए बने हैं। यह साथ कभी छूटने वाला नहीं है। इसीलिए जब एक महीने पहले उससे कहा गया कि आप एक माह बाद रिटायर होने वाले हैं। जो छुट्टियां बची हैं ले लें तो उसे अजीब लगा। समझ में नहीं आया कि ऐसा कैसे हो सकता है। उसे लगा हर साल उसकी सारी छुट्टियां लैप्स हो जाती थीं, तब तो कभी किसी ने याद नहीं दिलाया।

अब जब जाने की नौबत आ गई तो अच्छा बनने का नाटक कर रहे हैं। धक्का लगा मनोहर को लगना नहीं चाहिए था। इससे पहले तो जब भी कोई रिटायर होता था और उदास होते हुए उसके पास आता था तो वह संस्कृत ग्रंथों में घुस जाता और तरह-तरह के ज्ञान की पोटलियां निकाल कर लाता।

वहां से देखकर कुछ रटे-रटाए शब्द बोलता—दुनिया में सब कुछ माया है। एक दिन सभी को जाना है, मुझे भी। आएगा सो जाएगा, राजा-रंक फकीर। एक बार पिताजी के सामने उसने यह कहा तो वह नाराज हो गए। कहने लगे—इसका मतलब जानता है, मौत और तू रिटायर होने वालों से यह कहता है। क्या सोचते होंगे वे सब। तब से वह यह न कहकर और बहुत सी बातें कहता था मगर साथ में यह जोड़ना कभी नहीं भूलता था—कुर्सी आखिर किसकी सगी है। आज आप बैठे हैं कल कोई और बैठेगा। हालांकि खुद से वह यह जरूर कहता था कि जिस कुर्सी पर वह बैठा है, वह उसकी है और उसकी ही रहेगी। जब ऐसा नहीं हुआ तो उसे लगा जिस दफ्तर में आप जिंदगी लगा देते हैं। अपना दफ्तर अपना दफ्तर करते हैं वह एक दिन अपनी सीमाओं से आप को बाहर कर देता है। कभी मुड़कर भी नहीं देखता। जिसे लॉयल्टी कहा जाता है, से कोई याद नहीं करता। और आप न घर याद रखते हैं न बीबी न बच्चे। मनोहर के बेटे को भी तो यह महसूस हुआ होगा, मगर कभी कहा नहीं उसने। बल्कि कल बेटा फोन पर इसरार कर रहा था—पापा अब तो आप फ्री हो गए। आ जाइए यहां। मगर जल्दी से हां नहीं कह पाया। अब तक तो दफ्तर के अलावा कहीं भी जाने के लिए हमेशा ना ही कहता आया था। बेटा इतने सालों से बंगलौर में था मगर सिर्फ एक ही बार जा पाया था वहां, वह भी भाग-दौड़ में।

उसे याद आया कि पिछले एक हफ्ते से वह कहीं नहीं गया था। नहाकर जो कुरता-पाजामा पहनता वह अगले दिन धुल जाता। फिर अगला अगले दिन। उसका वार्डरोब कपड़ों से भर पड़ा था। शर्ट, पैंट, टी शर्ट, मोजे टाइयां, बनियान, तरह-तरह के परफ्यूम्स। जब कहीं आना-जाना ही नहीं तो इनका क्या होगा।

एक रात जब बेटे का फोन आया, उससे कपड़ों के बारे में कहा तो वह हंसते हुए बोला—आपको पुरानी चीजें हटाने की आदत भी तो नहीं है अलमारी तो अपने आप भरेगी। वैसे भी अभी आप ब्रेक ले रहे हैं। आपने कैसे मान लिया कि अब आपको

कहीं आना-जाना नहीं है। क्या पता कल फिर से आपका जॉब करने का मूड कर जाए। मामाजी को देख लो। रिटायर हुए दस साल हो गए। अभी तक जॉब करते हैं। मार्केट में कितनी डिमांड है उनकी। एक क्लास लेने जाते हैं दस हजार मिलते हैं। उनकी यह बात सही लगती है कि बाहर निकलने से लोगों से मिलना-जुलना बना रहता है। आदमी लोनली फील नहीं करता है।

उसकी बात सुनकर मनोहर बोला—ना बाबा न कब तक खुद को घिसूंगा। चालीस साल हो गए दौड़ते-गिरते-पड़ते। कहने को तो मनोहर ने कहा मगर उसे पता था कि बेटा सही कह रहा है।

मैं कब कह रहा हूं कि आप ऐसा करो मगर आप हर बात से परेशान मत हुआ करो, मुझे अच्छा नहीं लगता। और कुछ नहीं तो टी वी देखिए, मार्निंग वॉक पर जाओ।

मनोहर सोचने लगा सचमुच टी वी न हो तो वक्त कैसे कटे। फिर उसे अपने बाबा याद आए जिनका निधन अभी कुछ ही दिन पहले हुआ था। वह एक सौ साल तक जिए। आखिरी वक्त तक खेतों पर जाते थे। अपना सारा काम खुद करते थे। अड़ोस-पड़ोस के सब कामों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे। वह कभी मनोहर की तरह रिटायर नहीं हुए। उन्हें कभी नहीं लगा कि अब अगला दिन कैसे कटेगा उन्होंने हमेशा दूसरों के लिए खुद को जरूरी बनाए रखा। बाबा गए तो गांव से नाता ही टूट गया। अब तो वहां अपना कहने को कुछ नहीं, खेत भी नहीं। घर भी नहीं।

आजकल उसे फ्री की सलाह देने वाले भी खूब मिल रहे थे। कोई कहता-ऐसा करो, वर्ल्ड टूर पर चले जाओ। किसी के पास सलाह गरीब बच्चों को पढ़ाने की तो। कोई किसी राजनीतिक दल से जुड़ जाने की बात करता।

मनोहर को पहली बार लगा कि पत्नी पूरे दिन किसी न किसी काम में लगी रहती थी। वह कभी रिटायर नहीं होगी उसकी तरह। वह घर में रहती थी, खूब सज-संवर कर। एक तरफ बालों में मेंहदी लगाती तो दूसरे हाथ में कपड़ा उठाकर डस्टिंग करने लगती। टी वी पर सीरियल देखती या फिल्म, मगर हाथ कभी सब्जी काटने या कभी कुछ बीनने में लगे रहते। किसी सीरियल को देखकर वह हंस-हंसकर लोट-पोट हो जाती। चेहरा लाल पड़ जाता, आंसू बहने लगते। जो कुछ काट रही होती वह नीचे बिखर जाता।

मनोहर देखता तो ऐसा लगता, वह इस तरह खिलखिलाकर कब से नहीं हंसा है, एक हफ्ते से, नहीं महीना, महीना नहीं छह महीने, शायद साल, साल नहीं सालों। मगर क्यों? किसने हंसने से रोका। क्या समय ने। समय ही नहीं था हंसने का या इस उसके सामने कैसे हंसे या तो छोटा हो जाएगा या किसी को छोटा कर देगा।

मनोहर ने सोचा कि वह भी पत्नी की तरह ही हंसेगा। किसी प्रोग्राम पर या फिल्म पर या मास्टर शैफ, एनीमल प्लेनेट के प्रोग्राम देखते हुए। वह हंसने की कोशिश करता मगर हंसने की जगह उसके ओठ-तिरछे कंपकंपाने लगते। पत्नी ने देखा तो टोका—यह क्या हो गया। तुम्हारे मुंह में क्या हो गया?

मनोहर पत्नी को कैसे बताए कि सिर्फ वह ही नहीं उसके शरीर की मसल्स ही हंसना भूल चुकी हैं। पत्नी को खुश देखता तो उसकी खुशी से ईर्ष्या होती।

उसने टोकाटाकी शुरू की—क्या फूहड़ प्रोग्राम देखती रहती हो रात-दिन। अरे कुछ पढ़ा-लिखा करो तो दिमाग भी खुले।

एक-दो बार तो पत्नी ने सुन लिया फिर एक दिन चिढ़कर बोली—तुम घर में क्या रहने लगे हर काम में कमी निकालते हो। कैसे रहती हूं, कैसे सजती हूं। आज दाल में नमक कम था, कल हींग ज्यादा। अब क्या देखूं क्या न देखूं इसकी आज्ञा भी मुझे तुमसे लेनी पड़ेगी।

मनोहर भी चुप नहीं रहा—नौकरी क्या चली गई तुम्हारे लिए में गली का कुत्ता हो गया। कहो तो सड़क पर कटोरा लेकर बैठ जाऊं। शाम तक कुछ तो कमा लाया करूंगा। चैन पड़ेगा तुमको।

पत्नी ने तीखी आवाज में कहा—और सोच ही क्या सकते हो तुम। पहले हर रोज दफ्तर जाने की भड़ास निकालते थे अब न जाने की निकाल रहे हो। बेचारे कुत्ते को क्यों बदनाम करते हो। रोटी देने वाले पर तो सड़क का कुत्ता भी नहीं भौंकता है।

मनोहर सन्न रह गया। फिर चीखते हुए बोला—तुम्हें तकलीफ यह है कि अब तक जो तुम इस घर नामक साम्राज्य की महारानी बनी हुई थीं। पूरे दिन का ऐश और मेरे सामने सवेरे-शाम काम-काम चिल्लाती थीं। अब देखता हूं कि सिवाय खाना पकाने के तुम करती ही क्या हो?

पत्नी के हाथ में बेलन था, उसने उसे उठाकर दीवार दे मारा। गनीमत थी कि मनोहर की तरफ नहीं उछाला-ठीक है आज से खाना बनाना भी बंद। जहां ठीक लगे वहां से खा लेना।

मनोहर गुस्सा दिखा रहा था मगर उसे बढ़ती जाती बात अच्छी नहीं लग रही थी। वह वहां से हटा और बाथरूम में घुस गया।

वहां से निकला तो बात खत्म करने के लिए बोला—लाओ एक कप चाय पिलाओ।

पत्नी कुछ नहीं बोली जब उसने बात

दोहराई तो चीखकर बोली—चाय बनाए मेरी जूती। तुम्हारे कामों की लिस्ट में सिर्फ मेरा खाना बनाना ही शामिल है चाय बनाना नहीं, समझे।

मनोहर कुछ नहीं बोला अखबार लेकर बैठ गया। फिर थोड़ी देर बाद खुद ही उठकर चाय बनाने लगा। पत्नी को चाय का प्याला थमाने लगा तो वह खिलखिलाते हुए बोली—अभी तो ऐसी अकड़ दिखा रहे थे कि इस आसमान को फाड़कर थेगली लगा दोगे।

उसने माहौल को और हलका-फुलका करने के लिए कहा—थेगली लगाकर क्या करूंगा। आजकर कोई पुराने कपड़े नहीं पहनता है। वैसे भी यदि एक कप चाय में दोनों वक्त का खाना पक्का हो जाए तो क्या बुरा है?

मनोहर को रह-रहकर ऑफिस के सपने आते। कभी वह कैंटीन में बैठा होता, कभी किसी मीटिंग में, कभी कहीं पहुंचने के लिए फास्ट ड्राइव कर रहा होता। मगर आंख खुलती तो वह खुद को उसी बिस्तर पर पाता जिस पर सोया था। वह कई बार सोचता ऑफिस को भूलने के लिए जरूरी है वहां की बुरी बातों को सोचा जाए। वह प्रयास करके सोचने की कोशिश करता। किसी लगाई के बारे में, चुगली के बारे में, अपने नुकसान और दूसरों के फायदे के बारे में। मगर बहुत देर तक ये चीजें याद न रहतीं।

अखबार वालों से कहकर वह ढेर सारे अखबार मंगाने लगा। टी वी पर कब क्या आता है वह उसे याद रहने लगा। पार्क में जाता तो आधा घंटे की जगह एक घंटा टहलता। इस उम्र में हैल्थ चाहिए, वरना कौन करेगा। बेटा तो बाहर है। हालांकि जब बेटे को पंद्रह लाख का पैकेज मिला था तो वह ही दुनिया को बताता फिरा था कि वह रिटायर होने को आया, अब तक उसे इतने पैसे नहीं मिलते। वह अपनी अलमारी ठीक करता। सोने के बाद बिस्तर को तह करता। नहाने से पहले अपने कपड़े भी धो लेता। जूठे बरतन उठाकर सिंक में रख आता। जरूरत होने पर बाथरूम भी साफ कर देता। एक शाम उसने पत्नी से कहा—आजकल कितनी जल्दी शाम हो जाती है। पूरा दिन कहां जाता है, पता ही नहीं चलता।

पत्नी भेलपूरी की प्लेट उसे थमाते बोली—कितना अच्छा होता कि तुम कई साल पहले रिटायर हो जाते।

फिर दोनों खूब देर तक हंसते रहे।

तब और अब के गुरु

जयकिशन उन्नियाल

तब के गुरु थे शिष्य बनाते
अब के स्टूडेंट बनाते हैं
तब के गुरु आश्रम में रखते
अब घर-घर ट्यूशन पढ़ाने जाते हैं
तब के गुरु पाठ के संग में
जीवन का मूल्य बताते थे
अब के गुरु का मूल्य है पैसा
वो बच्चों को भी वही सिखाते
तब के गुरु जुड़वाते थे नाता
इनसान का भगवान से
अब के गुरु का तो भैया
पैसा ही भगवान है
तब के गुरु पैदा करते थे
अर्जुन और एकलव्य
अब के गुरु का लक्ष्य है
भवन हो मेरा भव्य
तब के गुरु चाणक्य समान थे
जो नीति का पाठ पढ़ाते थे
अब के गुरु तो केवल भैया
मनी अर्निंग बताते हैं
तब के गुरु को सत् सत् प्रणाम
अब के गुरु को गुड मार्निंग है
तब के गुरु थे सूर्य चंद्र से
अब के गुरु खग्योत् हैं
टिमक-टिमक के ज्ञान फैलाते
नहीं है ज्ञान से ओत-प्रोत।

4/19, सावित्री अपार्टमेंट, सेक्टर-2,
राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)

कहानी

पिंजरा

डॉ. करुणा शंकर दुबे

शहर के बढ़ते शोरगुल ने बहेलिए को विवश कर दिया था कि वह गांव के उस छोर की ओर शिकार के लिए चले, जिधर पक्षियों ने अपना बसेरा बना रखा है, आखिर हम जैसे शुकों के साथ मजबूरी भी थी, कि हमारा गुजर-बसर भी वहीं संभव है, जहां हमारी क्षुधा शांत हो सके, क्योंकि सभी पेड़ों पर तो व्यापारियों ने अपना अधिकार बना रखा है। शहरी विक्रेताओं के कब्जे में जो अमरूद है। वह हमको मुयस्सर ही नहीं हो सकता, वह अब अखबारी कागजों में होता है, जहां हमारे चोंच की पहुंच ही नहीं हो सकती है। यहां आकर बहेलिया भी वही कर रहा है, जो मैं यहां रहकर कर रहा हूं। मैं तो चिरईगांव में हूं यहां चंद्रिका सिंह उपासक का अमरूदों का बगीचा है, स्वयं उपासकजी तो बड़े बौद्ध विद्वान् हैं, हम शुकों को उनकी विद्वता से क्या लेना-देना, हमें तो उनका शांत-चित्त रहना ही अच्छा लगता है, क्योंकि हमें तो अपने मतलब के फलों की चिंता थी और उन वृक्षों के कोटरों की भी चिंता थी, जिसमें हमारा बसेरा था। सब कुछ निःशुल्क यहां सुलभ था, हालांकि बहेलिए यहां पहले भी आए थे, उनकी आहट कौओं की कांव-कांव से चल पाई थी, किंतु इस बार तो मेरे ही इलाके में बहेलिए की गंध थी, जाल की महक थी, शायद हम सब पर उसकी निगाह थी, जैसे दीपावली से पहले उल्लूओं की धर-पकड़ होती है। पितरपक्ष से पहले कौओं की धरपकड़ होती है, परंतु हमारी तो बारहों महीने होती रहती है। शायद हम किसी बंगाली बाबू के घर की समृद्धि के रूप में सराहे जाते हैं, या फिर किसी बेरोजगार पंडितजी के लिए कामगार ज्योतिर्विद् सहायक बनकर पंडित जी की स्थापना पं. तोताराम शास्त्री के रूप में कराते हैं।

चिंता यह थी कि आज कोटर से बाहर निकलूं या नहीं निकलूं? यदि बाहर नहीं निकलता हूं, तो भूख के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त कर जाऊंगा, यदि बाहर निकलता हूं तो बहेलिया कोई न कोई उपक्रम करके अपने जाल में पकड़ ले जाएगा।

भोर होने को आई, पेट की व्याकुलता और पंख के कसरती स्वभाव ने मुझे कोटर से बाहर निकाल ही दिया, और मैं लकदक भरे कचखरे अमरूद के झुरमुट में बैठने का प्रयास कर ही रहा था कि पहले से उलझे शुकों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। मैं बात कुछ समझता, मैं भी उसी जाल में फंस गया। अब मामला समझ में आ गया कि बहेलिया तो अमरूदी रंग का परिधान पहन कर उसी पेड़ पर, जाल बिछा कर बैठा था, जो भी पक्षी वहां लालच में बैठता, झट बहेलिया ताना-बाना कस देता। पक्षियों के चीं-चीं करने से पहले वह उसे अपने वश में कर लेता अैर अपनी जाली से अपने ढके खोमचे में रख लेता, मैं भी उसी खोमचे में पहले से दुःखी शुकों के साथ शामिल हो गया। आज अमरूद भी न मिला और मेरा विस्तार लिया हुआ चिरई का गांव अब खोमचे में सिमट गया, जहां कुछ दुःखी शुक मात्र थे। इतनी देर में उपासकजी को वहां आता देखकर लगा था कि शायद अहिंसा का पाठ वे इस बहेलिए को उसी प्रकार पढ़ाएंगे जैसे देवदत्त को तथागत ने पढ़ाया था और बहेलिया मुझे छोड़ देगा। किंतु बहेलिया चालाक था।

उसने उपासकजी के समीप आने से पहले ही उस खेत को छोड़ देने में अपनी भलाई समझाी, उसने बस एक काम यह किया कि खेत से बाहर निकलते समय खोमचे के ऊपर एक कपड़ा डालकर उसे ढक दिया। अब उस बहेलिए के पैर किधर, किस दिशा में चल रहे थे, मुझे क्या मेरे साथी शुकों को भी पता नहीं चल पा रहा था। हमारे खोमचे के अंदर मात्र हल्की रोशनी थी, जिसमें एक शुक दूसरे शुक की आंखें देख सकता था, कोई किसी से बात नहीं कर पा रहा था। सबके कष्ट समान थे, सबका उपचार एक था, परंतु सबका उपचारक कोई नहीं था। इतने में अहसास हुआ कि हम सब सड़क के किनारे आ गए। यहां शहर में चलने वाली गाड़ियों की आवाजें आने लगी थीं, अब हमारे खोमचे का आवरण हटा दिया गया था, किंतु इस समय तक गोधूलि बेला हो चली थी। हमारा खोमचा एक ट्रैक्टर के डाला पर रखकर, बहेलिया भी उसी पर सवार हो गया, हम घड़र-घड़र आवाज के बीच रेलवे क्रासिंग पार करते आशापुर चौराहे से आगे बढ़े चले जा रहे थे, दोनों ओर सामाजिक वानिकी की हरियाली और बनारस के साहूकारों के बड़े-बड़े खेतों में बने भवनों का ऊपरी भाग दिख रहा था। अब शोर बढ़ने लगा था, लग रहा था, पांडेयपुर-पिसानहरियां भी अब आ चुका है, इसके आगे फिर शांत शोर और शांति के बीच आधुनिकता और ग्रामीण परिवेश के बीच बसा यह शहर सभी के मन को मोह लेता है, मुझ जैसे पक्षी को भी इसी कारण बनारस प्रिय था।

सोचता चला जा रहा था, यकायक बहेलिए ने ट्रैक्टर से खोमचा उतारने की तैयारी शुरू कर दी, यहां तो बसों का रेला था, रोशनी तो थी अंधेरा भी उतना ही था, ट्रैक्टर रुका। हमारा खोमचा खुद बहेलिए ने बस के ऊपर सुरक्षित रख दिया, अब हमें बहेलिया आस-पास कहीं दिख नहीं रहा था, हमारे ऊपर सिर्फ जाल का बंधन था। उसके पार खुला आसमान और उस पर छिटकी हुई तरई थी। हम सब तरई की रातों में कभी-कभार घूमा करते थे। इसमें भटकने का डर रहता है। इसलिए हमारे बुजुर्ग इन रातों में बाहर निकलने के लिए मना करते थे। कहते थे कि जितनी घुप्प अंधेरी होगी। उतनी ज्यादा तरई की चमक होगी। आज हमारी जिंदगी में अंधेरा है। तरई चमक रही है।

आज हमें बाहर रहने की मजबूरी है। हम पराधीन हैं। हमारे ऊपर बंधन हैं, नहीं तो हम कबके फुर्र हो जाते, हम तारों को पढ़ते जाते थे। मार्ग को समझते जाते थे। आगे शिवपुर, जलालपुर, जौनपुर क्या पीछे छूटता जा रहा है। हवा रास्तों को काट रही है, अब अंधेरे में रोशनी के रास्ते भी कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं। यहां कुछ अधिक रोशनी है बस ठहर गई, पीछे से कोई आदमी हमारी बस पर आ रहा है अरे यह तो बहेलिया ही है, उसने हमारे जाल में एक ओर रस्सी ढीली की खोमचे के अंदर भात बिखेर दिया। वैसे रात में भात खाने की हम सबकी आदत नहीं थी फिर भी हम सब 'भूखा क्या नहीं करता' जीभ के स्वाद को छोड़ पेट की आग को बुझाने लगे। हमें पता ही न चला बहेलिया हमारे पास से कब चला गया और बस कब फिर चल पड़ी। अब हमें लगने लगा था कि बहेलिए में भी मानवता होती है। शायद उसने अपने रहते अपने जीवन का सदुपयोग न कर पाने के कारण, इस वृत्ति को अपनाया हुआ है। भूख शांत हो जाने के बाद दैहिक थकान और निंद्रा का दबाव बढ़ने लगा। हम सब न जाने कब सो गए।

मोटर गाड़ियों के पीं-पों के साथ आदमियों के चहल-पहल की आवाजों ने निंद्रा खोल दी तो लगा हम नए शहर के समीप आ पहुंचे हैं, सुबह होने वाली है आसमान से सूरज की किरणें धरती पर पड़ने लगी थी, अब बहेलिया पुनः बस की छत पर आया तो अहसास हो गया कि बस खड़ी है। इतने में उसने अपने खोमचे को पहले कपड़े से ढका फिर अपने सिर पर रख लिया। हम सब उजले-अंधियारे में स्याह से हो गए। धीरे-धीरे वह बस से उतर कर बढ़ते तेज कदमों से बहेलिया चलता जा रहा था, और हम सब खोमचे के अंदर, उसके सिर पर फुदकते रहे। थोड़ी भूख भी

अब हम पर सवार हो रही थी, इतने में एक शांत जगह पर पेड़ के नीचे हमारे खोमचे को रखकर बहेलियों ने मिट्टी की लुटिया का जुगाड़ बनाया या उसके पास पहले से लुटिया थी, इसका पता नहीं परंतु उसने उसमें पानी भर कर हम सब के बीच रख दिया, इस काम के लिए तो उस बहेलिए को उतना ही पुण्य मिला होगा, जितना प्यासे को पानी पिलाने का मिलता है।

भीड़ भरे बाजार में बहेलिए के साथ हम सब आ चुके थे, यहां पूरी तरह से कोलाहल था, यहां एक जगह खोमचा रखा गया, कपड़ा हटाया गया, अब लगा हम तो चिरई गांव में थे वहां तो सब आदमी गमछा पहनकर घूमा करते थे, कोई-कोई तो गांधी टोपी लगाकर यदा-कदा खेतों में दिखता था, यहां तो चारखानी लुंगी का माहौल है, होने को तो ये भी इनसान हैं, परंतु ये बहेलिया बिचौलिया इतनी दूर इन्हें बदनाम करने के लिए हमें क्यों ले आया है। इनके सिर पर तो गोल टोपी भी है, अब समझ आने लगा कि बिचौलिए ही मार-काट कराते हैं। बाजार भाव ऊंचा-नीचा कराते हैं। पर मेरी भाषा-बोली समझता कौन है, यहां के लोगों के हाव-भाव और बातचीत से समझ में आ गया कि हम लखनऊ के नक्खास में हैं। यह चिड़ियों का बाजार है। सुना है इस बार पितरपक्ष में कौए कम आए। इस तरह की बात करते हुए एक उल्लू दूसरे उल्लू से चर्चा कर रहा था। ये उल्लू बड़ी समझ रखते हैं, अब मैं समझ गया मुझे भी मंडी में बेचा जाएगा, इतने में बहेलिए ने अपने खोमचे को खाली करके मुझे बड़े पिंजरे में रख दिया। हम सब कई थे, थोड़ी देर में छोटे-छोटे पिंजरे आए। एक-एक करके एक पिंजरे में दो शुकों को बसेरा मिला। एक आदम-जात बच्चे के जिम्मे हमारे परों की कटाई दी गई। इस तरह से पंख काटे जाते थे कि पिंजरे में दीखने में अच्छा भी लगे, बाजार में कीमत भी अच्छी मिले और उस पिंजरे को खोल देने पर शुक उड़ भी न सके, हालांकि हमें यह मालूम था कि पंख बढ़ते हैं और फिर उड़ने लायक भी हो सकते हैं पर इसमें थोड़ा समय लगता है। एक के बाद एक करके हमारा भी यही हाल हुआ।

इतने में भगदड़ मचने की आवाज आई, कुछ पक्षियों को लकर लोग भाग रहे थे तो कुछ छोड़कर भाग रहे थे, हमने देखा कि कुछ सिपाही दौड़ाकर पक्षी बेचने वालों की धर-पकड़ कर रहे थे। इतने में एक सिपाही ने हमारा पिंजरा भी अपने कब्जे में ले लिया। उसके हाथ में दो या तीन पिंजरे आ चुके थे। मैं सोच में था, अब मेरा क्या होगा? कहते हैं जब दिन फिरते हैं तो सब बदलता ही चला जाता है पर कहीं अच्छे की एक आस भी बनी रह जाती है। अब हम हरे-लाल रंग की गाड़ी में पिंजरे सहित नई जगह आ पहुंचे, जगह थी बंदरिया बाग, मुझे क्या पता था कि हम सब अपनी खुशहाली के लिए यहां लाए जा रहे हैं।

यहां सभी पिंजरों को बारी-बारी से लाया गया, पक्षियों को साफ पानी में डुबोने के बाद कपड़ों से उनके गीलेपन को हटाकर बगीचे में उड़ने के लिए छोड़ दिया गया, परंतु हमारी स्थिति तो मुर्गियों जैसी हो गई थी पंख होते हुए भी हम उड़ नहीं सके क्योंकि कुछ समय पहले ही हमारे पंख काट दिए गए थे, अब ऐसा लगने लगा कि हम बिना पिंजरे के भी पिंजरे में हैं, अब लगा कि ईश्वर ने जो कुछ भी दिया है। हमें उसे सहेज कर रखना चाहिए उठना-बैठना भी देखकर करना चाहिए। हमने तो लालच से वशीभूत होकर अपना सब कुछ खो दिया। उसे वापस पा लेना दुश्कर है। यह तो हमारे संचित पुण्यों का फल है, जो हम इस स्थान पर हैं, परंतु यह हमारे लिए बिना पिंजरे का पिंजरा है, जहां हम अपने लालच का प्रायश्चित कर रहे हैं, यहां हमारी सेवा भी होती है इस चिड़ियाघर की प्रधान रेणु सिंह आती हैं, सबको देखती हैं, हम सबका उपचार करवाती हैं उनकी ममता हमारी पुष्टता है, मुझे कुछ ही दिनों में लगने लगा था कि अब मैं उड़ने लगा हूं, वह दिन अब दूर नहीं होगा, जब मैं ऊंची उड़ान भर लूंगा।

आज तो मैं बहुत दूर तक उड़कर वापस आया भी हूं। अब मुझे तो चिड़ियाघर से चिरई का गांव भी याद आ गया। मैं इस बंदरिया बाग से निकलकर उस गांव को जाने की सोचने लगा, तरई के मार्ग का चिंतन करने लगा, सोचता रहा अकेले ही जाऊंगा, अमरूद खाऊंगा वहां मेरा कोटर है, मेरा बचपन है मेरे संगी साथी हैं, मेरे उपासकजी हैं।

रात ही रात शुक तरई के मार्ग का स्मरण करता हुआ चिरई के गांव के लिए चल पड़ा, जब जहां जी चाहा ठहराव लेकर आगे बढ़ जाता। उषा प्रहर में आशापुर तक पहुंचने के बाद भटकाव सा लगने लगा, अब शुक को लगा कि पूरी तरह से दिन आ जाए तो बात बनेगी। यह वहीं एक पेड़ के मुंडेर पर बैठकर दिन की प्रतीक्षा करने लगा, पल-प्रतिपल भगवान भास्कर ने उसके रास्ते पर रश्मियां बिखेर दी वह गंतव्य की ओर चल पड़ा। उसे अमरूद के बगीचे भी दिखे। चिरई के गांव से चिरई नष्ट हो गई थी। फलों के बागों में कुछ और हो गया। साहूकारों आढ़तियों के अड्डे बन गए। उसका सब कुछ लुटता नजर आया। वह वहां कुछ दिनों तक उपासकजी को खोजता रहा। शुक को शांत चित्त उपासक जी न मिले। पता चला उनका बेटा सांसद हो गया। आशापुर से पहले पहाड़ियों में फलों की मंडी खुल गई। अब शुक सीता की रसोई की ओर चला गया। यह ऋषिपत्तन का मार्ग था। यहां कजरिया सेठ के फार्म के ऊपर बच्चे एक पिंजरे में अमरूद रखकर शुक को बुलाने के लिए हांका लगा रहे थे। मैंने सुन रखा था, बनारस शहर के साहूकार सावन के मेले में बहरी अलंग की मौज मस्ती के लिए ये कोठी बनाते हैं। उनके बच्चे शुक पकड़ कर ले जाते हैं, घर के बड़े-बूढ़े उन्हें राम-राम करना सीखाते हैं, ताकि जीवन के अंतिम समय यदि सेठ के घर में सभी के मुंह से रुपया-रुपया निकले तो कम से कम घर में एक जीव तो भगवान को याद कर ले, इसी उधेड़बुन में शुक ने विचार किया कि वापस चिड़ियाघर चला जाए परंतु जनम-भूमि तो काशी है साहूकार के पिंजरे में ही रह लें, जहां अंतिम सत्य राम-राम ही सही।

एम.आई.जी.–1/148, रुचिखंड–2
शारदा नगर, रायबरेली रोड, लखनऊ–226002

महानगरी

ललित शेखर

जब वह आया था
महानगरी में
अकेला था
उसके भी स्वप्न थे
और थी दुनिया
सरोबार खुशियों से
पिता की छाया में
तट पर दूर जहाजों और
पानी के रिसते अंधधारों में
सवारियां उतारती नावें
घूमता था धरती पर
ऋतुओं का चक्र
त्वचा के अहसास के साथ
उसका अतीत जबकि स्वयं वह
अक्सर प्रश्न करता है स्वयं से
बतौर न्यायालय और विधि
के अर्थतंत्र के वर्चस्व में
न्याय की दुहाई मांगती जनता
दिन पर दिन सड़कों पर
नीली बत्ती लगी
गाड़िया दौड़ रही थी
एक अपूर्व इच्छा
और नाविकों के जहाजों के कोने में
बरगद की नई कोपलें मेरी जमीन
में निकल आई हैं।
और तो क्षुब्ध अकेले में
जाने क्यों उसने कागज पर
एक पन्ना रंग दिया था
शब्दों और फूलों के मानिंद
सोचकर कागज और पैन
खुली स्याही की बोतल में
एक जीवन एक दुनिया
मायूस क्षणों की
आश्रय स्थल की
फिर एक बार।

सफरनामा

आज फिर जारी है
एक सफर
कविता का और मैं हूं
मौन वह भी
धूरे पर पड़े अखबार के
रद्दी कागज में
फिर एक क्रांति
ठिठाई से इस किताब की
पन्नों पर उलटता पलटता
मैं दौड़ पड़ा था सड़क पर
लगाता हुआ आवाज
फिर किया एक पिता ने
मानवता का मुंह काला
या एक आत्महत्या का
अखबाों में सुर्खियां बनजाता
और बलात्कार की शिकार
वह लौट आई थी चीरकर
पुनः स्मृतियों का गर्भ
उस नियति में थी स्तंभ भर एक
या साहित्यिकी एवं पत्रिका के
कार्यक्रम में खबर
छपी थी वह खबर
पुनः लोगों की मायूस
निगाहें और मेरा मन
आस आज भी जारी है
न्याय की मुहाई में
मेरे आलाकमान
न्याय और प्रतिकार से
हमारी आशाएं
दहशत भरी चाय व्यवस्था और
कड़क वर्दी और न्यायालय का
रसख
जीवन में एक अनूठा संवाद
लिए
इस नरम रज और सड़क
किनारे आहिस्ता आहिस्ता
चलता मैं
देख रहा था भविष्य
उस मिट्टी के लौदे से
बालक का
धरती और कलंकित थी
सभ्यता के नाम पर
तमाचा बन कर वह
प्रश्नानुकुल दृष्टि
और प्रत्युत्तर से दौड़ती
उस स्मृति में कविता एक
जो लिख रहा हूं
न्याय की दुहाई में

एफ-1, डी-27, न्यू कवि नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

विरज

सुरेश सक्सेना

गलियों कूंचों और सड़कों पर
मकानों के पिछवाड़े
कूड़ेदानों में हाथ डालती
रद्दी के चंद टुकड़े उठाने
कंधे पर एक बोरी ताने... वह लड़की

पैदा करके छोड़ दिया था
उसे फुटपाथ पर
अपना बोझा स्वयं उठाने

लुप्त हो चुकी थी उसके
बचपन की किलकारियां
शेष था बस—
अधनंगा शरीर, भूखा पेट
और जिंदगी की लाचारियां

अब जवान हो गई है
अपने उफनते यौवन को
अपनी फटी चुन्नी से
ठीक प्रकार ढक भी नहीं पाती है
तपती धूप में
चंद कागज के टुकड़ों के लिए
मीलों दूर निकल जाती है... वह लड़की

राह में अक्सर छींटा-कशी करते
युवक अधेड़ यहां तक कि बूढ़े
ललचाई नजर से देखते
कभी आहें भरते
पर उसके पैर कभी न रुकते, न थकते
बोरी में बराबर रद्दी भरती... वह लड़की

इस रद्दी के टुकड़े से क्या मिल जाता है
एक दिन रोक कर पूछा मैंने
रद्दी के टुकड़े नहीं यह है रोटी
अंतर केवल इतना है
तुम तलाशते हो बिखरी हुई
जिंदगी के टुकड़े
और हम रद्दी... बोली वह लड़की

न हमारे हाथ में कटोरा है
न हम प्यार, नौकरी या उपकार की
मांगते भीख
लगा कह रही हो, ओ संपन्न बाबू
हमसे ही कुछ सीख... बोली वह लड़की

उसके विवेकपूर्ण उत्तर से मैं
स्तब्ध रह गया
उसके छोटे से जीवन के अभावों
और अनुभवों ने शायद बहुत कुछ
कह दिया
उसने बोरी उठाई, कंधे पर जमाई
थोड़ा मुस्कराई और आगे चल दी... वह लड़की।

44, पंचशील पार्क, जी.टी. रोड,
साहिबाबाद, जनपद-गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.)

समय है गुमशुम

राकेश चक्र

असमय मुरझा रहे हैं
ये कुसुम
समय है गुमशुम

अस्तित्व के अभियान में
शमशान हो रहे घर
देव जैसी आत्माएं
अब हुई बेपर
शोर-भोर-पोर में
स्यंदन हुई शबनम

जंग फैली-गंग मैली
घट रही कल-कल
बाज और बाजीगरों की
अब बढ़ी हल-चल
संग ढुल-मुल हो गया
है बेमजा मौसम

अमरत्व की तू खोज में
निशि-रैन करता व्यर्थ
पुरखे कमा के रख गए
सब हो रहा है गर्त
बेशर्म बन गईं पीढ़ियां
आंखें हुईं पुरनम।

90-बी, शिवपुरी, मुरादाबाद-244001

कविता/गीत/गजल

चल बेटा, चल

अशोक 'अंजुम'

ओ मां
नीना कर रही थी
अब तुम कुछ काम नहीं करतीं
यहां तक कि
चार कदम पर लगे
म्युनिसपल्टी के नल से
चार बाल्टी पानी भी नहीं भरतीं

ओ मां
खाना बनाना तो
वैसे भी तुम्हारे वश का नहीं
क्योंकि
तुम्हारे हाथों में पड़ी ठेक के कारण
रोटियों की डिजायन बिगड़ जाती है
तुम्हें बनाने में भले न आती हो
लेकिन हमें
खाने में बहुत शर्म आती है

ओ मां!
बच्चों को तुम्हारा
किसी भी काम में हस्तक्षेप
कतई नहीं भाता है
देखा
इसीलिए कोई
तुम्हारे पास नहीं आता है

और हां
तुम्हारी खांसी
उफ्
टेलीविजन के सभी कार्यक्रमों का
गुड़ गोबर कर देती है
जान-बूझकर तभी खांसती हो
जब कोई
अच्छा कार्यक्रम चलता है
घर के एक-एक सदस्य को
तुम्हारा तब खांसना
बहुत खलता है

ओ मां
नीना कह रही थी
तुम पड़ौसियों से
चुगली करती फिरती हो
न जाने क्या-क्या भिड़ाती हो
अपनी धोती में लगीं
थेगली दिखा-दिखा कर
टसुए बहाती हो

ओ मां
शहर में एक आश्रम खुला है
जहां वृद्ध महिलाओं को
बड़ा आराम मिलता है
चलो तो बतलाओ
हं... हं... नीना कह रही थी
अगर मांजी बुरा न मानें
तो उन्हें वहां छोड़ आओ

यह सुन कर
मां की आंखों में
आंसू भर आए
उसने जुबान खोली
भर्राए गले से बोली
''शांत हो जा
कुलदीप शांत हो जा
अब और ज्यादा दिल न जला
अरे, चल बेटा, चल
तेरे इस घर से तो
वह अनाथालय भला!''

संपादक, अभिनव प्रयास, गली नं. 2, चंद्रविहार कॉलोनी (नगला डालचंद), क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

खोज रहा जमाना तुझको

अरुण एस. भटनागर

खोज रहा जमाना तुझको कब से
कभी अपना दीदार तो कराया होता
कसमें खाई हैं लोगों ने होने की रूबरू तुझसे
उनके इस दावे पर ऐतबार तो कराया होता

सबके हाथों में है अपना-अपना आइना
दिखा रहे सबको वो शक्ल ओ सूरत तेरी
बेवजा जिद सी मची हुई है इस जहां में
किसके आइने में, सबसे आला है सूरत तेरी

पर क्यूं तू? हर आइने में अलग सा दिखता है
क्यों नहीं अपने जलाल से इन्हें रूबरू करता
क्यों डाला हुआ इन सबको रूहानी भरम में
क्यों नहीं अपनी हकीकत से बाबस्ता करता

तेरी कायनात में इस जमीं का है मामूली सा वजूद
फिर भी हम सब इसी ख्वाब में जीते हैं
जानते हैं तुझको मुकम्मल से केवल हम हीं
आसमां को मुट्ठी में छुपाने का भरम रखते हैं

कैसे होगा इन नादानियों से छुटकारा
कब रूबरू होंगे हम सब हकीकत से
कब होंगे इन बेमानी बातों से बेजार
दिखेगी हर आइने में कब,
एक सी सूरत तेरी!!

आयकर आयुक्त, देहली-V

नव वर्ष का इंतजार

निरुपमा भटनागर

नया साल! मुबारक हो
मुबारक हो
मुबारकों की मियाद नहीं
हर तरफ से गूंजती ये आवाज
टी.वी. मुहल्ले आस पास
फोन से
पर दो चार दिन गुजरते-गुजरते
पुराना हो चला ये भी
हर साल की तरह
पर, न बेहुदगियों, बदतमीजियों
बदसूरत कर्मों में रुकावट
आई, और देखते-देखते
आम वर्ष हो गया ये भी
यही तो आजादी के बाद से
अब तक का दौर है
कहीं कुछ देर के लिए लगता है
थम सी जाती है जिंदगी
और, कहीं शर्मसार हो चुप रह जाती है
जिंदगी
और कहीं, चुपके से आकर उससे
मौत गले मिल जाती है
और यूं नया साल पुराना हो चलता है
हर बार की तरह
फिर नए साल के आगमन की तैयारी
और यही सिलसिला आजादी के बाद से
इस देश में है जारी
न नारे बचा पाएंगे इस सबको
न कानून, न बातें, न जाम, जुलूस, न दफा 144
रुक सकेगा ये सिलसिला तभी
जब हर मां अपने पैदा हुए बेटे की जन्मघुट्टी में
ये पिलाएगी
तू एक बहन, भाभी या मां का बेटा नहीं
जिस देश में तू जन्मा
बहुत सी बहनों
का भार लेने की जिम्मेदारी के साथ आया है
तुझे जन्मघुट्टी में इसी
संस्कार की मिठास पिला रही हूं
तभी हर बेटा समाज की
नींव को
मजबूत कर सकेगा
और हमसे हर वर्ष को
और बेहतर बनाने की
होड़ में
नववर्ष का इंतजार रहेगा।

प्रधानाचार्य, रेडक्रास द्वारा संचालित स्कूल
(हेनरी डूनेन्ट पब्लिक स्कूल झिलमिल)

बेटियां माहताब होती हैं

डॉ. प्रीति

बेटियां माहताब होती हैं
घर की पूरी किताब होती हैं
इनकी खुशबू को तुम महकने दो
बेटियां तो गुलाब होती हैं।

हमें मुट्ठियों में बंद मत करना

हमको मुट्ठियों में बंद मत करना
हम तो खुशबू हैं हवाओं में महक जाएंगे
हमें तुम ताल-तलैया भी मत समझ लेना
हम तो नदियां हैं लहरों पर मचल जाएंगे
सुनो हमारे पंख काटने वालों
हम तो चिड़ियां हैं जहां जाएं चहक जाएंगे
हमको अंधेरी गुफाओं में कैद मत करना
हम तो जुगनू हैं अंधेरों में चमक जाएंगे
हमें तुम मोम की गुड़िया भी मत समझ लेना
हम तो परियां हैं क्या यूं ही पिघल जाएंगे
हमारे रास्ते कांटों से भरे होंगे तो भी
हम तो गिर-गिर के उठेंगे और संभल जाएंगे।

4/151 विशाल खंड
गोमती नगर, लखनऊ

पुस्तक-समीक्षा

कथाकार कमलेश्वर से परिचित करवाता मूल्यवान ग्रंथ

डॉ. आशा शर्मा

''विचार, दृष्टि और सत्य से प्रदीप्त प्रभामंडल द्वारा कमलेश्वर ने अभूतपूर्व सफलताओं का मार्ग प्रशस्त किया। साहस और ईमानदारी उनके लेखन की बुनियाद है। इसी बुनियाद पर अपनी भाषिक संरचना द्वारा एक नई अर्थवत्ता देने वाले कमलेश्वर ने समय के साथ नित नए कीर्तिमान गढ़े।'' फ्लैप पर उक्त शब्द संजोए 'कथाशिल्पी कमलेश्वर' शीर्षक से प्रकाशित समीक्षक महावीर अग्रवाल का ग्रंथ हिंदी-जगत के शीर्षस्थ कथाकार स्वर्गीय कमलेश्वर के अंतरंग व्यक्तित्व और संपूर्ण रचना कर्म से परिचिति करवाने वाला मूल्यवान ग्रंथ है, यह मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकती हूं।

छत्तीसगढ़ के दुर्ग नगर से प्रकाशित 'साक्षेप' पत्रिका के संपादक, समीक्षक, व्यंग्यकार और नाट्य-शिल्पी महावीर अग्रवाल ने अपने इस ग्रंथ में 'लीक से हट कर' सर्वथा अलग रंग-ढंग से यशस्वी कथाकार कमलेश्वर के जीवन और रचनाधर्मिता का विश्लेषण-विवेचन करते हुए 'कमलेश्वर' को अमृत बना दिया है, यही इस ग्रंथ की सबसे बड़ी देन है।

समीक्षक महावीर अग्रवाल ने 'संस्कृतिः साहित्य' शीर्षक से पांच 'साक्षात्कार' संजोते हुए कमलेश्वर के चिंतन को वाणी दी है। यहां 'कहानी', 'उपन्यास', 'रंगमंच' और 'लोक' पर कमलेश्वर का बेबाक चिंतन हमें मिलता है। 'पत्रकारिता' शीर्षक से चार 'साक्षात्कार' हैं, जिनमें कमलेश्वर मुखरता से उपस्थित हुए हैं।

'स्मृति' शीर्षक से लिखे तीन आलेखों में महावीर अग्रवाल ने कथाकार कमलेश्वर के अंतरंग और अनछुए प्रसंग देकर सर्वथा विलक्षण दृश्य उपस्थित किए हैं– ''कथाशिल्पी कमलेश्वर ने अपनी कलम के साथ समझौता नहीं किया। विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहने वाले उनके निष्कम्य स्वाभिमान की कहानियां हिंदी समाज लगातार सुनता रहा है।'' (पृष्ठ 100)

महावीर अग्रवाल के इन तीन आलेखों में कमलेश्वर के संघर्षों और अदम्य जिजीविषा को देखा जा सकता है।

समीक्षक महावीर अग्रवाल के इस मूल्यवान ग्रंथ 'कथाकार कमलेश्वर' के 'प्रतिश्रुति' शीर्षक खंड में संकलित कुल सात आलेखों में वे साक्षात्कार हैं, जो कमलेश्वर से समय-समय पर श्री महावीर ने देवेन्द्र सत्यार्थी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, कृष्णा सोबती, नामवर सिंह, दुष्यंत कुमार, तनवीर हबीब, विनोद कुमार शुक्ल के बारे में लिए थे। इन साक्षात्कारों के माध्यम से कथाकार कमलेश्वर की अध्ययनशीलता के साथ ही उदारमना होने का प्रमाण भी मिल जाता है। डॉ. नामवर सिंह के विषय में कमलेश्वर दो टूक कह देते हैं–''वाचिक पंरपरा के झुनझुने पर हमारा साहित्य समाज झूम रहा है, तो बहुत खुशी की बात है। लोग पढ़ना-लिखा छोड़ कर सुनें नामवरजी को और बजाएं ताली! सच तो यह है महावीरजी, यह जो नामवरजी की नई वाचिक परंपरा है, यह उनका आत्म विज्ञापन है।'' (पृष्ठ 127)

ऐसी बेलाग और बेलौस बात क्या कोई और व्यक्ति डॉ. नामवर सिह के लिए कहने की हिम्मत कर सकता है आज?

इस ग्रंथ का एक महत्त्वपूर्ण खंड है– ''कमलेश्वर की 'कलम' का कमाल'', जिसमें डॉ. महावीर अग्रवाल के छह आलेख हैं। इस खंड में उनके द्वारा कथाकार कमलेश्वर की कालजयी कृति 'कितने पाकिस्तान' पर प्रख्यात् साहित्यकारों के विचार हैं। डॉ. नामवर सिंह की टिप्पणी उल्लेखनीय है–''मुझे यह उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' नहीं जमा। केनवास बड़ा जरूर है, लेकिन बहुत बेतरतीब है। कौन सा पात्र क्या और क्यों कहना चाहता है? यह भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता। कुल मिला कर मुझे उपन्यास पसंद नहीं आया।'' (पृष्ठ 150)

इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता मुझे यही लगी है कि पत्रकार-समीक्षक डॉ. महावीर अग्रवाल के 'साक्षात्कार' प्रामाणिक और सामयिक होने के साथ-साथ कमलेश्वर के 'अंतर्मन' और व्यापक चिंतन का सजीव

दर्पण बन गए हैं। कथाकार कमलेश्वर के बहुचर्चित उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' पर इन साक्षात्कारों में जो चिंतन व्यक्त हुआ है, वह निश्चय ही हिंदी समीक्षा जगत की बेजोड़ उपलब्धि कही जा सकती है।

'कथा शिल्पी कमलेश्वर' ग्रंथ के 'संस्कार, संवदेना' शीर्षक खंड में डॉ. महावीर अग्रवाल के तीन साक्षात्कार सचमुच कमलेश्वर की संवेदनशीलता से पाठक को रूबरू करा देते हैं। ''मां का यह वरदान सबको नहीं मिलता'' शीर्षक साक्षात्कार में कमलेश्वर ने कहा था—''चुनौतियों का सामना करना मैंने अपनी मां से ही सीखा। जिंदगी और अनुभव की घटनाओं और प्रसंगों को याद करता हूं तो उठते-बैठते यही विचार मेरे मन में आता है कि मां का यह वरदान बहुत कम लोगों को मिलता है। इस दृष्टि से मैं अपने आपको भाग्यशाली मानता हूं। मेरी मां ने मुझे ऐसे संस्कार दिए जिनके बल पर मैंने कठिन परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारी।'' (पृष्ठ 177) यह साक्षात्कार 'सर्जना' पत्रिका में सन् 2008 में छपा था।

डॉ. महावीर अग्रवाल के इस ग्रंथ के 'विमर्श' खंड में संकलित चार साक्षात्कारों में पाठकगण कथाकार कमलेश्वर के सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व का परिचय पाते हैं। 'दलित जीवन', 'आत्मकथा', 'आलोचना' और 'स्त्री' को लेकर कमलेश्वर का विमर्श इन चारों आलेखों का प्राण-तत्त्व बन गया है, जो सचमुच लाजवाब है।

कमलेश्वर के 'दूरदर्शन और फिल्म' के अनुभव विचित्र रहे हैं, जिन्हें डॉ. महावीर ने बड़े मनोयोग से संजोया है। इस ग्रंथ की एक और विशेषता है 'पत्रों की खुशबू' शीर्षक से संकलित बेजोड़ पत्र, जिनमें 'खामोश अभिव्यक्ति' कथाकार कमलेश्वर के जाने-अनजाने चिंतन का अनायास परिचय करवा देती है।

निःसंदेह, समीक्षक-पत्रकार डॉ. महावीर अग्रवाल का ग्रंथ 'कथाकार कमलेश्वर' पठनीय और संग्रहणीय बन गया है। मुद्रण अत्यंत आकर्षक और निर्दोष है। ग्रंथ स्वागत योग्य है।

पुस्तक : कथाशिल्पी कमलेश्वर

लेखक : महावीर अग्रवाल

प्रकाशक : श्री प्रकाशन, ए-14, आदर्श नगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

मूल्य : 1000 रुपए

शब्द

महीलाल कैन

कौन कहता है
शब्द बोलते हैं
यदि बोलते शब्द
तो करते विरोध, बहिष्कार
अपने सदियों से चले आ रहे
गलत प्रयोग
अशुद्ध उच्चारण का
समाज में गलत अर्थ में
प्रचलित रूप में - साकार शब्द का
परेशान सा रहा
मनीषियों के शब्दकोश में
शुद्र, अंत्यज, दलित—'शब्द'
मनुवादियों के ही क्यों हैं
शब्द तो सब के होते हैं
समता का भाव बोते हैं
शब्द सिर्फ बोलते ही नहीं
ऐसी प्रयोगधर्मिता पर
रोते हैं
शब्दकर्मी—सावधान रहना
'शब्द' अंगारे भी होते हैं
'शोले' भी औ' फटते भी हैं।

23, मोती बाग गांव, नई दिल्ली-110021

पुस्तक-संमीक्षा

असुरक्षित मन को धैर्य देती पुस्तक

बल्लभ डोभाल

आपकी पुस्तक 'यथार्थ से संवाद' मिलने के बाद मैं रात देर तक इसे पढ़ता गया, जैसे मोक्ष की इच्छा करने वाले मुमुक्ष-जन मनोयोग से गीता का पारायण करते हैं। वर्तमान व्यवस्था की विकृति और विडंबनाओं से मुक्ति पाने की कामना सबके मन में है, ऐसे में यह पुस्तक किसी धर्मग्रंथ से कम नहीं लगती। मेरी मान्यता है कि सत्य को पूरी तरह जान लेना ही मोक्ष है। पुस्तक में सत्य से अवगत करवाया है, इसके बाद कुछ भी जानने की जरूरत नहीं रह जाती। गीता में श्रीकृष्ण ने भी धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य और सत्य-असत्य का विवेचन ही तो किया है।

देर बाद इस बात की खुशी हुई कि कोई लेखक तो ऐसा है, जिसने अपने मौलिक चिंतन, धैर्य और साहस के साथ कलम की धार पैनी की है। वरना आज के लेखक, बुद्धिजीवी तो नजरों के आगे गुजरते यथार्थ को दफन करने का ही काम कर रहे हैं। सच को देखकर इनकी आंखें मुंद जाती हैं। इनके लिए सच बोलना, लिखना, सुनना एक बड़ा गुनाह हो गया है। सच यही है कि हमारी आजादी आज झूठ, फरेब, दिशाहीनता, अनुशासनहीनता, मूल्यहीनता की जद में है। ऐसे में सारे नियम-कानून, विधान-संविधान और जनतंत्र, सभी कुछ छल-कपट और झूठ के पर्याय बन चुके हैं। तब अत्रि ऋषि के पुत्र आचार्य आत्रेय पुनर्वसु की यह उक्ति याद आती है—'मिथ्या भाषण से बढ़कर कोई पाप नहीं। जहां सामाजिक स्तर पर मिथ्या भाषण होता है उस राष्ट्र को देवता छोड़ जाते हैं और रोग-व्याधियां उस राष्ट्र का विनाश कर डालते हैं।'

आज इस व्यवस्था ने हमें विनाश के कगार पर बैठा दिया है। आदमी से लेकर नेता, मंत्री, प्रधानमंत्री सभी में झूठ बोलने की होड़ लगी है।

पैंसठ वर्ष की इस आजाद-व्यवस्था ने आदमी के भीतर इनसानियत के साथ-साथ कला, साहित्य, संस्कृति के सारे स्रोत सुखा दिए हैं। मन के साथ आत्मा तक की हत्या करने पर मजबूर कर रखा है। आप जैसे कुछ लोगों के पास कुछ कहने को अभी शेष है, लेकिन भविष्य में दूर तक अंधेरे की आशंका को देखते हुए कहने का मन नहीं होता। आजादी के बाद हमारे रहनुमाओं, नेता, शासक-प्रशासकों ने ऐसे विष-बीज बो डाले, जिनकी जड़ें काफी गहरे जा चुकी है और आने वाली दो पीढ़ियों तक जो जहरीली फसलें ही उगाते रहेंगे। मुझे नहीं लगता कि ऐसे में कुछ भी बच पाएगा।

मेरे असुरक्षित, डरे हुए संतप्त मन को इस पुस्तक से धैर्य मिला है। इसके लिए लेखक की कलम को बहुत-बहुत धन्यवाद!

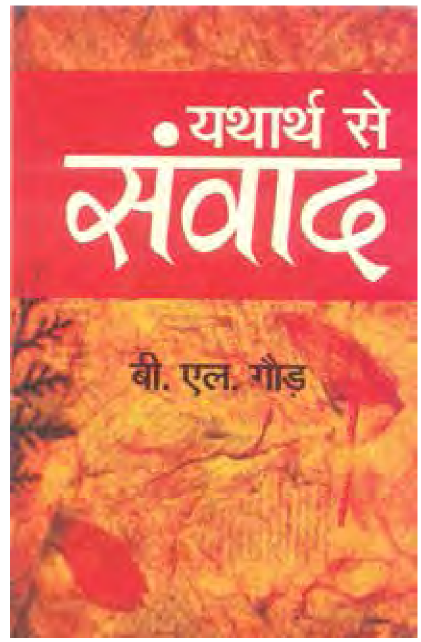

पुस्तक : यथार्थ से संवाद

लेखक : बी. एल. गौड़

प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

मूल्य : 400 रुपए

खजुराहो नृत्य समारोह

शशिप्रभा तिवारी

भारतीय शास्त्रीय नृत्य की सदियों की समृद्ध परंपरा रही है। नृत्य में पारंगत होने के लिए कलाकार लगन से गहन प्रशिक्षण, निरंतर अभ्यास, दीर्घ साधना करते हैं। इसके बाद ही वह खजुराहो जैसे प्रतिष्ठित नृत्य समारोहों में शिरकत कर पाते हैं। मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग, उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत एवं कला अकादमी और मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् के संयुक्त प्रयास से खजुराहो नृत्य समारोह आयोजित किया गया। नवगति, नवलय, ताल छंद नव का प्रतीक खजुराहो नृत्य समारोह 20 फरवरी को मंदिर प्रांगण में शुरू हुआ। यह नृत्य समारोह 20 फरवरी से 26 फरवरी तक आयोजित था।

मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले के खजुराहो में चंदेल राजाओं द्वारा बनाए गए प्रेम और आस्था के प्रतीक विश्व प्रसिद्ध मंदिर के पृष्ठभूमि में बने मंच पर यह समारोह आयोजित होता है। सन् 1974 ईस्वी में शुरू हुए, खजुराहो नृत्य समारोह का यह चालीसवां वर्ष है। समारोह का उद्घाटन करते हुए, मध्य प्रदेश के संस्कृति एवं पर्यटन मंत्री सुरेंद्र पटवा ने कहा कि संस्कृति विभाग लोक और शास्त्रीय दोनों नृत्य रूपों के संरक्षण, प्रोत्साहन और प्रचार-प्रसार के लिए बराबरी से प्रयत्नशील है। विश्व विख्यात खजुराहो के मंदिर हमारी धार्मिक और कला परंपरा के अद्भुत साक्ष्य हैं। इन धरोहरों को बचाए रखना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। मध्यप्रदेश शासन अपनी जिम्मेदारी के प्रति सजग और सचेत है।

पद्मश्री सम्मान से सम्मानित भरतनाट्यम नृत्यांगना गीता चंद्रन के नृत्य से खजुराहो नृत्य समारोह का आगाज हुआ। उन्होंने शिव चोकनाकर कौतुवम से अपने नृत्य का आगाज किया। यह राग मालिका और

अल्पना नायर ओडिशी नृत्य

मिश्र चापू ताल में निबद्ध थी। उनकी दूसरी प्रस्तुति गाविंद वंदना थी। रचना 'ओम नमो विश्वरूपाय विश्वेश्वराय' में विष्णु और कृष्ण के रूपों का विवेचन था। बसंत के इस ऋतु में उन्होंने कवि दामोदर गुप्ता और महाकवि कालिदास के ऋतु संहार को आधार बना

नृत्य महोत्सव का छठा दिवस

कर नृत्य रचना बसंत ऋतु पेश किया। इसमें बसंत आगमन पर कामदेव और रती के साथ प्रकृति के सौंदर्य का मोहक चित्रण था। नृत्यांगना गीता चंद्रन ने कालिदास की रचना 'सजयति रतीमुख चुंबन भ्रमर' में नायिका रती के शत् कमलसम सुंदर मुख का निरूपण बेहद संजीदा तरीके से किया। उनके नृत्य से नृत्य समारोह की एक सशक्त शुरूआत हुई।

विगत कुछ सालों से खजुराहो नृत्य समारोह में युगल और त्रयी नृत्य प्रस्तुतियों को खास तौर पर शामिल किया जा रहा। इसी क्रम में समारोह के पहले दिन ओडिशी नृत्यांगना संचिता बनर्जी और भरतनाट्यम नृत्यांगना दक्षिणा वैद्यनाथन ने युगल नृत्य प्रस्तुत किया। उन्होंने मंगलाचरण, अर्धनारीश्वर, उड़िया गीत 'राधा राणी संगे नाचे मुरलीपाणी' और तिल्लाना पेश किया। समारोह में अरुणा मोहंती के शिष्य-शिष्याओं ने रामायण पर आधारित नृत्य रचना 'रस' और 'वंदे मातरम्' प्रस्तुत किया। गुरु गंगाधर प्रधान की नृत्य रचनाओं को अरुणा मोहंती ने सामूहिक नृत्य के रूप में परिकल्पित किया, जो गुरु की परंपरा को विस्तार देने का एक अच्छा प्रयास कहा जाएगा। युवा कलाकारों ने अपनी सूझ-बूझ से सीता स्वयंवर, सीता हरण, जटायु मोक्ष, सेतु निर्माण, राम-रावण युद्ध आदि प्रसंगों की व्याख्या पेश की, उसमें विभिन्न रसों का अच्छा समागम प्रतीत हुआ।

चंदेल राजाओं के अद्भुत स्थापत्य व ऐश्वर्य के प्रतीक खजुराहो के मंदिर के पृष्ठभूमि में बने मंच पर समारोह के दूसरे दिन सुजाता नायर संजय ने मोहिनीअट्टम नृत्य पेश किया। उन्होंने वरणम 'हदयरागम् रामम् मम् श्रृणुनि' से अपनी प्रस्तुति आरंभ की। इसमें उन्होंने अभिनय के जरिए सीता स्वयंवर और शबरी प्रसंग का चित्रण किया। कवि क्षेत्रैया के तेलुगु पद्म में नायिका के भावों को दर्शाया। यह राग सौराष्ट्र और आदि ताल में निबद्ध था। नायिका अपनी सहेली से कहती है कि जब भी मैं कृष्ण के अंतरंग होती हैं। एक चिड़िया आकर मेरी तंद्रा भंग कर देती है। नृत्यांगना सुजाता ने अभिनय के जरिए भावों का विवेचन मोहक अंदाज में किया। उन्होंने मलयालम लोरी गीत 'तंबी' पर आधारित अगली प्रस्तुति पेश की। इसमें वात्सल्य रस का सुंदय सुयोग था।

खजुराहो नृत्य समारोह के दूसरे दिन की दूसरी पेशकश नृत्यत्रयी थी। इसे ओडिशी नृत्यांगना निवेदिता महापात्र, कैरोलिना पदा और अभिनय नागज्योति ने पेश किया। तीन नृत्यांगनाओं की इस समूह ने वास्तव में मर्म को समझकर सार्थक नृत्य किया। उनकी पहली पेशकश त्रिमूर्ति थी। इसमें सत्-चित्त-आनंद स्वरूप ब्रह्मा-विष्णु-महेश के ऊर्जा का एकत्रीकरण तीनों नृत्यांगनाओं ने एक साथ अपने नृत्य के जरिए दिखाया। यह राग विभास और ताल मालिका में निबद्ध थी। दूसरी पेशकश नृत्त थी। इसमें देश पल्लवी, वृंदावनी सारंग में निबद्ध तिल्लाना और मयूरभंज छऊ की तकनीकी पक्ष का संयोग

पद्मजा रेड्डी एवं ग्रुप द्वारा कुचिपुडी नृत्य

था। वहीं अंतिम प्रस्तुति में ओडिशी नृत्यांगना निवेदिता ने अष्टपदी 'पश्यति दिशि-दिशि' में वासकसज्जा नायिका, कुचिपुडी नृत्यांगना अभिनय नागज्योति ने स्वाधीनभतृका नायिका और कैरोलिना पदा ने कृष्ण के भावों को छऊ नृत्य में दर्शाया। इसकी परिणति राधा-कृष्ण के मिलन के प्रतीक रास नृत्य से हुई।

मणिपुरी नृत्य प्रीति पटेल और साथियों ने पेश किया। उन्होंने सूर्य महिमा और मानव जीवन में अग्नि के महत्त्व को रेखांकित करते हुए, नृत्य रचना 'कोरऊमंगलम्' पेश किया। इसमें मणिपुरी की प्राचीन शैली—लयहरोबा, नई शैली—संकीर्तन, थांगटा और पुंगचालम का मनोरम संयोजन था। सूर्य की स्तुति 'अमृतं विश्वजन्यम् विश्वानर सविता', अग्नि स्तुति और शांति पाठ के जरिए नृत्य का समायोजन किया गया था। थांगटा के ताकौसाबा शैली के प्रयोग से नृत्य में ओज का प्रदर्शन मोहक था। इसके अलावा, कलाकारों ने आग के प्रयोग के साथ नायाब अंग-संचालन और संतुलन पेश किया। इससे प्रीति पटेल के नृत्य प्रदर्शन में रोमांच के साथ श्रद्धा का भाव सहज ही उमड़ पड़ता है।

खजुराहो नृत्य समारोह में 22 फरवरी को युवा कथक नर्त्तक विशाल कृष्ण ने शिव परण पर आधारित शिव-स्तुति से नृत्य आरंभ किया। उन्होंने पंडित सुखेदव महाराज की रचना 'डिमिक-डिमिक डमरू बाजे, कैलाश शिखर पर शंभू नाचे' में शिव के आंनद स्वरूप को दर्शाया। तीन ताल में नटवरी कथक नृत्य पेश करते हुए विशाल ने बनारस घराने का खुला नृत्य पेश किया। उन्होंने अपनी गुरु सितारा देवी और महान नर्त्तक पंडित गोपीकृष्ण के अंदाज में तिहाई, परण, चक्रदार तिहाइयों और टुकड़ों को प्रस्तुत किया। उन्होंने कृष्ण, मयूर, मयूर के दाना चुगने व बारिश में भीगने के अंदाज को परण में पेश किया। सितारा देवी की रचना मशीन गन परण को उन्होंने खासतौर पर पेश किया। विशाल ने कवित्त—'जटाजूट गंगा झलकत' में शिव के आनंद तांडव की झलक को पेश किया। उन्होंने कथक नृत्यांगना अलकनंदा देवी के अंदाज में पैर का काम दादरा ताल में पीतल की थाली पर दर्शाया। वास्तव में, विशाल के नृत्य में ओज, संपूर्णता, चमक और अपार संभावना झलकती है।

ओडिशी नृत्यांगना विंदु जुनेजा ने ओडिशी नृत्य शैली में नर्मदा परिक्रमा की परिकल्पना करके एक नई पहल की है। उन्होंने इस नृत्य रचना में मध्यप्रदेश की जीवन-धारा नर्मदा भक्ति, आस्था, सौंदर्य, सांस्कृतिक धरोहर के प्रतीक रूप में चित्रित किया। यह नृत्य रचना अमृतलाल बेगड़ व अनिता त्रिवेदी की रचनाओं, नर्मदा अष्टकम्, निमाड़ी व मालवी गीतों में पिराई गई थी। विंदु इस नृत्य रचना को पुराना किला अनन्य नृत्य समारोह में पेश कर चुकी हैं। उस प्रस्तुति में उन्होंने सजीव संवाद के जरिए नृत्य को पिरोया था। इससे नृत्य और प्रभावकारी प्रतीत हुआ था। नर्मदा को नायिका के रूप में चित्रित करते हुए, उन्होंने अभिसारिका और प्रगल्भा नायिका के तौर पर दिखाया। लोकगीतों 'रेवा के तीर पे मंगल छाया' और 'स्वर्णिम धारा सहस्रबहे'

का प्रयोग प्रसंगानुकूल लगा। विंदु के साथ कल्याणी व वैदेही फगरे ने अच्छा नृत्य पेश किया।

नृत्यांगना अनीता शर्मा ने अपने साथियों के साथ असाम के भक्ति रस को प्रवाहित किया। उन्होंने शंकर देव की रचना कृष्ण वंदना, अभिनय में माधव देव की रचना में कृष्ण व उनके गोपी साथियों की कथा और उमा-रुद्र संवाद को पेश किया। सत्रिय नृत्यांगना अनीता शर्मा के नृत्य में बेहतरीन सामंजस्य और लयात्मक गतियों का प्रयोग नजर आया।

खजुराहो नृत्य समारोह की चौथी शाम यानि 23 फरवरी को कथक व उज्बेक नृत्य की युगलबंदी पेश की गई। कथक नृत्यांगना समीक्षा शर्मा, धीरेंद्र तिवारी और बख्तियार जॉन उज्बेक व साथी कलाकारों ने शिरी-फरहाद की कहानी को कवित्त 'झिझिकत झुकत चंद्र चपला' व 'छिप गया सूरज बाहर रह गई लाली', ठुमरी 'अलबेली नार', 'सरगम', 'तराना' व बुल्ले शाह की रचना 'तेरे इश्क नचाया करके थैया' के जरिए पिरोया गया। कथक-भरतनाट्यम-ओडिशी नृत्य-त्रय को विद्‌यगोरी अडकर, महत्ती कन्नन और वीथिका मिस्त्री ने पेश किया। यह पेशकश ध्रुपद 'हास विलास नंद नंदन', 'गंगाधर जटाधर' व 'ज्योति नैनन सों' पर आधारित थी। इस प्रस्तुति को त्रयी की बजाय एकल कहना बेहतर होता। युवा कलाकारों को बहुत सोच-समझकर या किसी वरिष्ठ कलाकारों के मार्गदर्शन में ऐसे प्रयोग करना उचित रहता। क्योंकि डागर बंधुओं के समय कुमुदिनी लाखिया जैसे कलाकारों ने ध्रुपद की बंदिशों पर नृत्य कर चुकी हैं।

भरतनाट्‌यम नर्त्तक वैभव आरेकर और साथी नृत्यांगनाओं की प्रस्तुति मनमोहक रही। परंपरागत भरतनाट्‌यम के साथ उन्होंने मराठी अभंग को अपनी पेशकश में शामिल किया, जिससे परंपरा में नवीनता का अहसास पैदा हुआ। उन्होंने शिव स्तुति 'शंकर शिव शंकर गंगाधर', अर्धनारीश्वर, संत एकनाथ की अभंग 'एक आरोहणा नंदी, एक गरुड़ स्कंद', 'महिषासुरमर्दिनी' व तिल्लाना पेश किया। उनकी प्रस्तुति सहज और सारगर्भित थी। सभी नृत्यांगनाओं और नर्त्तकों का आपसी तालमेल, अंग संचालन, हस्त मुद्राओं का रख-रखाव सुनियोजित और संतुलित था।

विशाल कृष्ण

दरअसल, खजुराहो नृत्य समारोह महज एक नृत्य समारोह भर नहीं है। यहां विभिन्न कलाओं का संगम होता है। समारोह के मंच

की सज्जा अनूठी थी। पश्चिम मंदिर समूह के स्थापत्य और नमूने के प्रतिरूप मंच को मंदिर के तोरण, द्वार, स्तंभ और चबूतरों से सुसज्जित किया गया था। यह सज्जा और आकृति ऐसा भान करवा रही थी, मानों यह मंच नहीं बल्कि, दर्शक मंदिर के प्रांगण और चबूतरों पर ही नृत्य कर रहे हों और वह मंदिर के गर्भ-गृह और परिक्रमा पथ से बाहर निकल कर नृत्य कर रही हूं। इसकी परिकल्पना उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत एवं कला अकादमी के असिस्टेंट डायरेक्टर राहुल रस्तोगी और जनजातीय संग्रहालय के आर्ट डायरेक्टर चंदन भट्टी ने की थी। समारोह के दौरान लाइट डायरेक्शन का काम अनूप जोशी ने बहुत ही सुचारु ढंग से किया।

कथक नृत्यांगना उमा डोगरा की शिष्याएं गीतांजलि शर्मा व इंद्राणी मुखर्जी ने युगल नृत्य पेश किया। 25 फरवरी की शाम उन्होंने गणेश वंदना से नृत्य आरंभ किया। उनकी यह प्रस्तुति राग बागेश्वरी और एक ताल में निबद्ध थी। उन्होंने तेरह मात्रा के दुर्गा ताल में शुद्ध नृत्त पेश किया। दुर्गा ताल की परिकल्पना उमा डोगरा ने अपने गुरु पंडित दुर्गा लाल की स्मृति में किया है। इस अंश में गीतांजलि और इंद्राणी ने कथक की तकनीकी बारीकियों को पेश करते हुए, उठान, थाट, आमद, तत्कार, परण, परमेलू और लयदार तैयारी को दर्शाया। उन्होंने आनंद की पराकाष्ठा को प्रेम और भक्ति के रस के जरिए चित्रित किया। इसके लिए उन्होंने मीराबाई के पद 'दुखन लागे नैन' और बंदिश 'सांवलिया मन भाया' का चयन किया। द्रुत लय में तत्कार और जुगलबंदी से अपनी प्रस्तुति को विराम दिया।

समारोह की इस छठी शाम ओडिशी नृत्यांगना कस्तूरी पटनायक और साथी कलाकारों ने ओडिशी नृत्य पेश किया। उनकी परंपरागत प्रस्तुति का आगाज थेई घरनाट से हुआ। इसमें ओडिशी की यात्रा को दर्शाया गया। इसमें महारी, गोतीपुआ, बंध, प्राचीन व आधुनिक ओडिशी की तकनीकी पक्ष का समावेश था। ओडिशी की इस पेशकश में कवि गदाधर की रचना 'सुंदरी हेली की संधि हेला रे' पर कस्तूरी पटनायक ने अभिनय पेश किया। हंसध्वनि पल्लवी और उड़िया गीत 'मारे वण धारे' को कलाकारों ने सामूहिक रूप से पेश किया। उड़िया गीत राग शंकराभरणम और एक ताली में निबद्ध था। इसके अलावा, पद्मजा रेड्डी व साथियों ने कुचिपुडी और श्री नृत्य प्राजना के कलाकारों ने ओडिशी नृत्य पेश किया।

ओडिशी नृत्यांगना अल्पना नायक ने ओडिशी नृत्य पेश किया। समारोह के पांचवीं शाम यानी 24 फरवरी को अल्पना ने अपने नृत्य का आगाज मंगलाचरण से किया। महाकवि कालिदास की रचना 'माणिक्य वीणा मुपला लयंति' में देवी सरस्वती की वंदना थी। उन्होंने इसके विस्तार में उड़िया गीत 'माता सरस्वती निर्मल वरणे' को शामिल किया। उन्होंने कवि सालवेग की रचना 'आहे नील शैल' पर अभिनय पेश किया। अल्पना नायक का नृत्य सहज और आकर्षक था।

सत्रिय और कथक का संयोजन समारोह की अगली पेशकश थी। असम के कलाकारों की यह प्रस्तुति बहुत ही संतुलित और सुघड़ थी। मरामी मेदी, मेघरंजनी, दीपज्योति, दीपांकर और साथियों की प्रस्तुति का आरंभ नृत्य संगम से हुआ। यह सत्रिय गुरु और संत शंकर देव की रचना 'कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय' पर आधारित थी। इसमें कथक और सत्रिय नृत्य का संयोग अच्छा था। नृत्यांगना मेघरंजनी ने कथक शैली में शिव वंदना पेश की। यह श्लोक 'विभूति भूषण सर्वगरल शशिधर शिवशंकर' और शिव तांडव स्त्रोत के अंश पर आधारित थी। कथक और सत्रिय नृत्य शैली में शंकर देव की कीर्त्तन गुहा पर आधारित दशावतार थी। इसमें विष्णु के दस अवतारों को बेहद मनोरम अंदाज में कलाकारों ने दर्शाया। इस शाम की खास पेशकश असीम बंधु भट्टाचार्य और साथियों की प्रस्तुति घुंघरू की आत्मकथा थी। कथक नृत्य शैली में प्रस्तुत नृत्य रचना में नाद और घुंघरू के उद्भव, विकास, परिवर्तन और नृत्य में इसके महत्त्व को उद्घाटित किया गया। असीम बंधु की इस प्रस्तुति में संवाद, संगीत और गीत के जरिए बहुत सुंदर तरीके से घुंघरू के साथ कथक नृत्य के विकास को दर्शाया गया।

समारोह के अंतिम शाम पर्यटक केंद्र में एक सभागार में कार्यक्रम संपन्न हुआ। 26 फरवरी को कुचिपुडी नृत्यांगना शांता रति ने गणपति स्त्रोतम और तिल्लाना पेश किया। ओडिशी नृत्यांगना सुरूपा सेन और बिजयिनी सत्पथी ने अर्धनारीश्वर के रूप को विभक्त में दिखाया। जबकि, उनकी दूसरी पेशकश जयदेव की अष्टपदी पर आधारित थी। समारोह का समापन कथक और मयूरभंज छऊ के समागम नृत्य रचना महारास से हुआ। कथक नृत्यांगना मैत्रेयी पहाड़ी और साथियों की इस पेशकश में पूर्व रास, अनुराग-विराग, रास और मोक्ष की परिकल्पना थी।

खजुराहो नृत्य समारोह के दौरान नेपथ्य-भारत की आत्मा ओडिशा प्रदर्शनी, आर्ट-मार्ट-ललित कलाओं का मेला और हुनर आयोजित था। नेपथ्य में जहां एक ओर ओडिशी नृत्य के विकास को मूर्ति, आभूषण, वेश-भूषा और चित्रों के जरिए दिखाया गया था। वहीं आर्ट-मार्ट में देश भर के कलाकारों के चित्रों और मूर्तियों को प्रदर्शित किया गया था। इसके साथ हुनर में कपड़ों की बुनाई और छपाई की प्रक्रिया को संयोजित किया गया था।

यहां कलाकार कपड़ों पर ब्लॉक पेंटिग की तकनीक को लोगों के सामने करके दिखा रहे थे। इन कलाकारों को समर्पण और लगन से काम करते देखना एक अलग अनुभूति और सुख दे रहा था। आर्ट-मार्ट एक राष्ट्रीय आर्ट कॉन्क्लेव के तौर पर आयोजित था। इसमें प्रतिभागी चित्रकारों ने पहाड़ी, राजस्थानी और मधुबनी लघु चित्र शैलियों के चित्रकारी की विधा को सीखा। समारोह के पहले दिन संस्कृति और पर्यटन मंत्री सुरेंद्र पटवा ने मध्य प्रदेश के चित्रकारों को विभिन्न सम्मानों से सम्मानित किया। इसमें शामिल कलाकार थे—रजनी घनेवार, उपासना सारंग, दिलशाद, हिमांशु जोशी, सुनीता प्रजापति, उदयचंद गोस्वामी, अर्चना सिंह, सजंय प्रजापति, पापिला मन्ना और महेशपाल गोबरा।

'शब्द व्यापार बन गए' लोकार्पित

डॉ. विवेक गौतम

समारोह में बाएं से–शिक्षाविद् डॉ. बी.एन. सिंह, लेखक शिवचरन सिंह 'पिपिल', सजग समाचार के संपादक शिव सचदेवा, वरिष्ठ कवि-साहित्यकार लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक-भाषाविद् प्रो. केशरीलाल वर्मा, कवि-लेखक बी.एल. गौड़, अतिरिक्त आयुक्त कृष्ण कुमार सिंह तथा कवि-साहित्यकार डॉ. विवेक गौतम।

हिंदी भवन सभागार में उद्‌भव साहित्यिक संस्था के तत्वावधान में प्रसिद्ध कवि-लेखक शिवचरन सिंह 'पिपिल' की नवीनतम कृति 'शब्द व्यापार बन गए' तथा सामाजिक विषयों पर तीन अन्य कृतियों 'आधुनिक भारत में बाल श्रमिक व्यथा कथा एवं निदान', 'दलित उत्पीड़न उपचार और कानूनी संरक्षण' तथा राष्ट्रीय व्यवस्था में दलित उत्पीड़न एवं कानून' का लोकार्पण मुख्य अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीशंकर वाजपेयी तथा समारोह के अध्यक्ष केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक एवं वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार के चेयरमैन प्रो. केशरी लाल वर्मा ने किया।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में कवि-लेखक बी.एल. गौड़, 'सजग समाचार' के संपादक शिव सचदेवा तथा मुरादाबाद मंडल के अतिरिक्त आयुक्त कृष्ण कुमार सिंह थे।

'सजग' प्रकाशन से छपी शिवचरन सिंह 'पिपिल' की किताब 'शब्द व्यापार बन गए' तथा अन्य तीन कृतियों के विषय में अपना वक्तव्य देते हुए लक्ष्मीशंकर वाजपेयी ने कहा कि आज के समय में कविता-गीत लिखना और उनका प्रकाशन बड़ी बात है। लोक साहित्य में भी मुख्य धारा की साहित्य के साथ-साथ लगातार काम हो रहा है। इनकी परिचायक शिवचरन 'पिपिल' की कतिवाएं हैं।

इस अवसर पर उपस्थित साहित्य प्रेमियों को संबोधित करते हुए समारोह के अध्यक्ष प्रो. केशरी लाल वर्मा ने कहा कि लेखक ने कविताओं के साथ-साथ दलित एवं वंचित वर्ग के लोगों की पीड़ा और संत्रास को भी अपनी लेखनी में स्वर दिया है। सामाजिक विषयों पर निर्भीकता से लिखना, ईमानदारी से लिखना अच्छी बात है और इस परंपरा का निर्वाह शिवचरन सिंह 'पिपिल' ने किया है।

साहित्यकार-कवि तथा उद्‌भव संस्था के राष्ट्रीय महासचिव डॉ. विवेक गौतम के संचालन में बोलते हुए कवि-लेखक बी.एल. गौड़ ने कहा कि शिवचरन सिंह 'पिपिल' की किताबों में चिंतन और संवेदनशीलता भरपूर दिखाई देती है और वे गहन रूप से समाज के दलित शोषित लोगों की स्थिति पर लेखन कर रहे हैं।

'सजग समाचार' के संपादक शिव सचदेवा ने लेखक को 73 वर्ष की अवस्था में भी उनकी जीवंतता, सक्रियता एवं रचनात्मकता के लिए बधाई दी। अतिरिक्त आयुक्त कृष्ण कुमार सिंह ने भी पूर्व उप-श्रम आयुक्त शिवचरन सिंह 'पिपिल' के कवि रूप की सराहना की। समारोह में लेखक राजन पाराशर ने अपने विचार रखे और अंत में धन्यवाद शिक्षाविद् डॉ. बी.एन. सिंह ने किया।

इस अवसर पर लेखिका ममता किरण, शोभना मित्तल व वीना बंसल के साथ-साथ रामचंद्र बडोनी व अमोल प्रचेता सहित अनेक गणमान्य लोग उपस्थित थे।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता
....
....
....
....

पत्रिका भिजवाने का पता
....
....
....
....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष................	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं..
दिनांक..................................
रु./US$...................................... बैंक...भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....
नाम..
पद..
दिनांक...

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पाँच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनाञ्चल (हिन्दी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिन्द (अरबी), और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑंद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरु व टैगोर की रचनाएँ परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल है। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिन्दी, अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गये हैं।

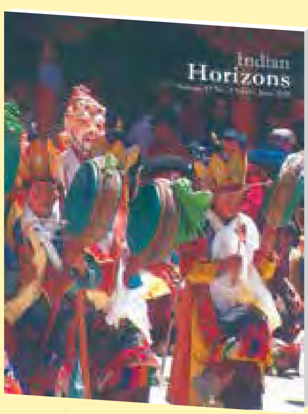

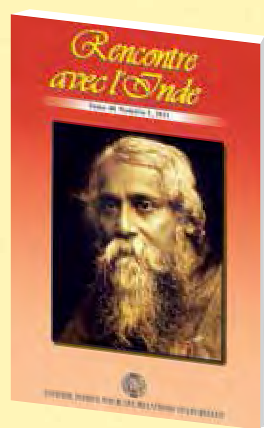

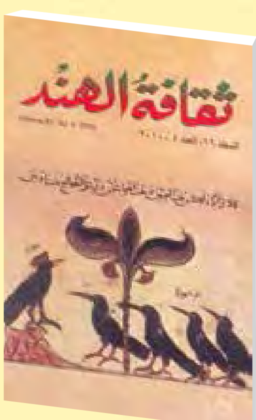

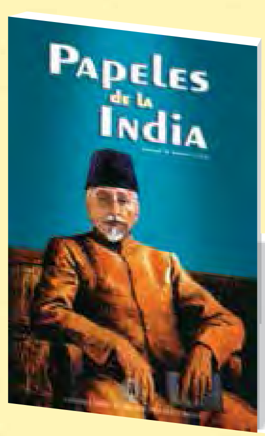

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

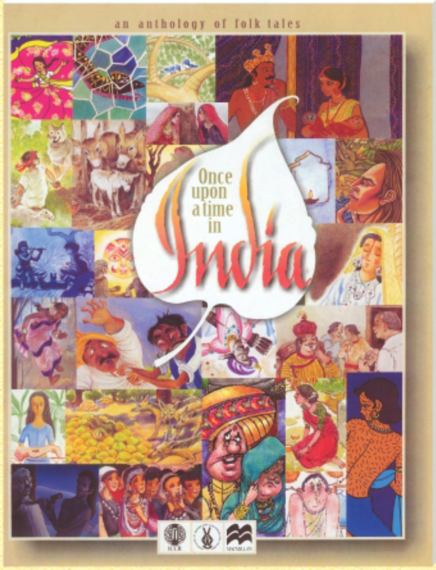

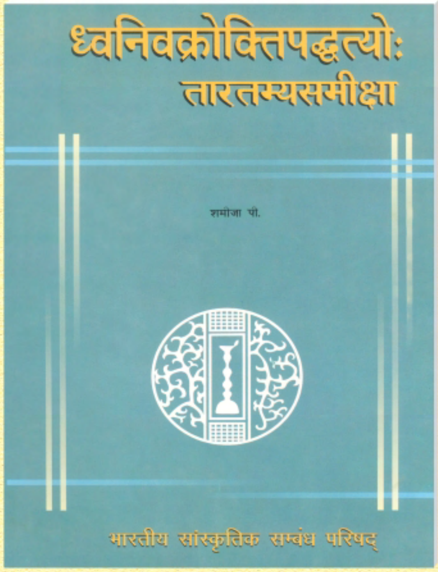

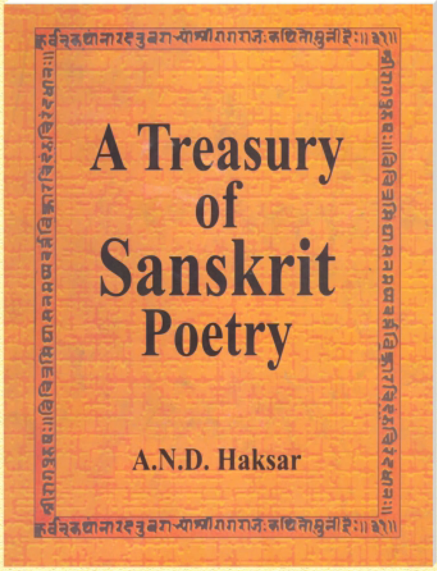

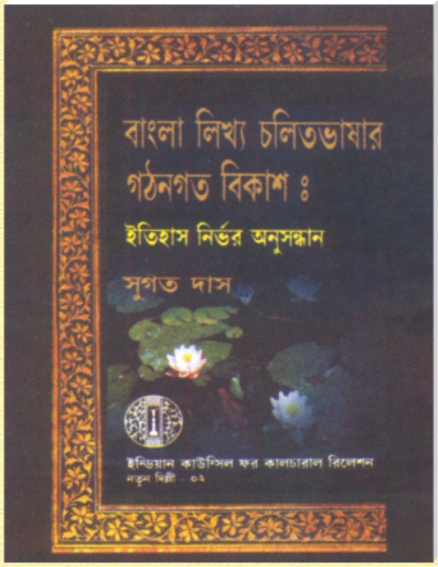

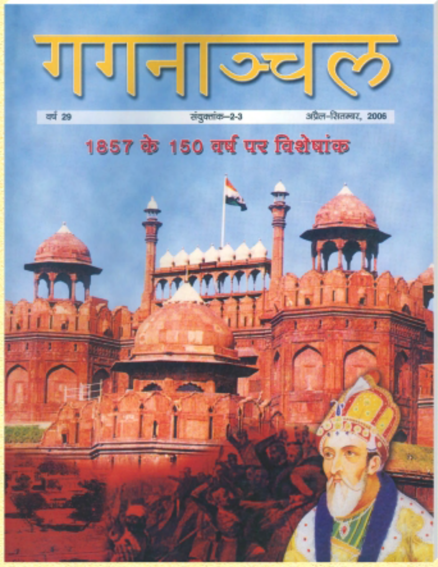

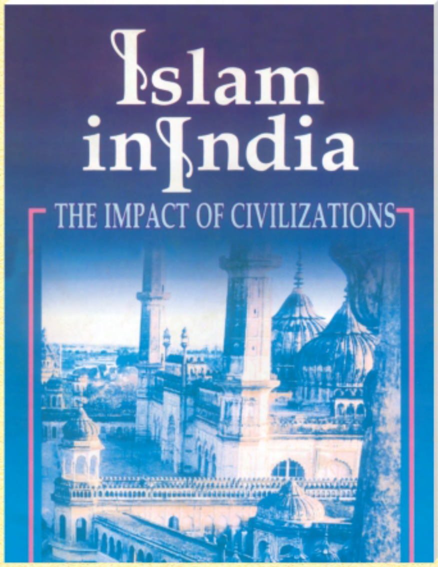

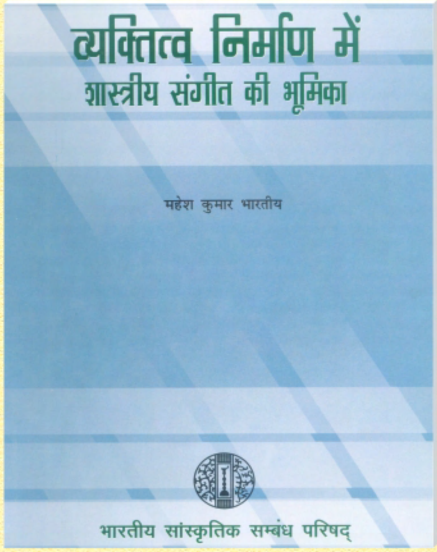

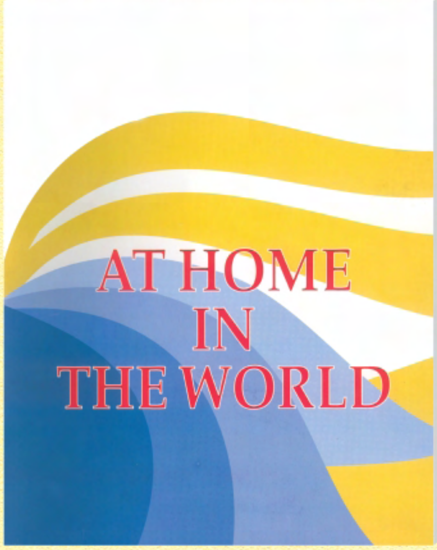

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

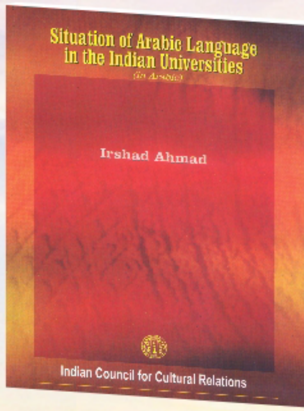

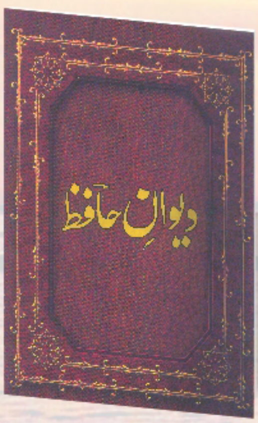

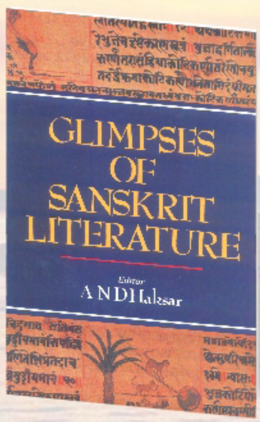

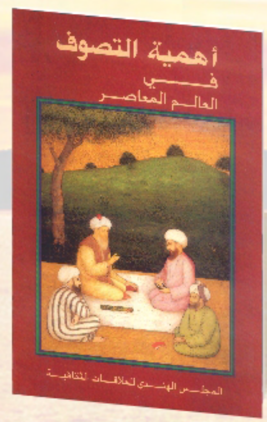

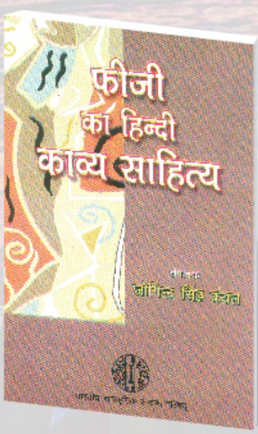

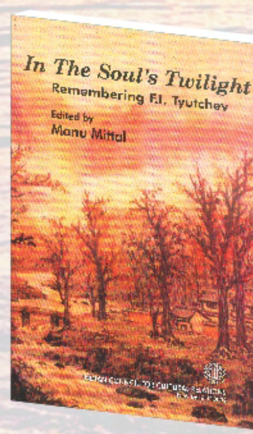

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccrindia.net